स्नातकोत्तर

हिन्दी-शिक्षण कार्य-शिविर
१९६४

परामर्शदाता

डॉ० रामकुमार वर्मा

डॉ० विजयेन्द्र स्नातक

प्रस्तुतकर्ता

डॉ० जगदीश गुप्त
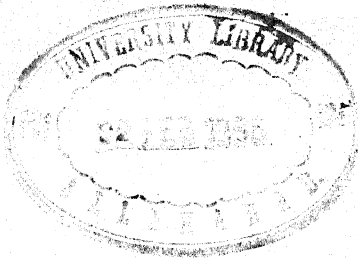
'विश्वविद्यालय अनुदान आयोग' के तत्वावधान में हिन्दी-विभाग

प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित

अनुक्रम

परिशिष्ट—२

प्रवर्तन-लेख

परिशिष्ट—३

परिशिष्ट—४

परिशिष्ट—५

परिशिष्ट—६

वक्तागण

(अंक गोष्ठी-संख्या के द्योतक हैं, उ=उद्‌घाटन-समारोह, स=समापन समारोह)

१. डॉ० अंबाशंकर नागर (अहमदाबाद)
उ, १, २, ३, ४, ६, ८, ११

२. पं० उमाशंकर शुक्ल (प्रयाग)
उ, ९

३. प्रो० ए० चन्द्रहासन (त्रिवेन्द्रम)
१, २, ४, ५, ७, ८

४. प्रो० एस० सी० देव (प्रयाग)
१

५. डॉ० कमलाकान्त पाठक (नागपुर)
उ, १, २, ९

६. श्री कल्याणमल लोढ़ा (कलकत्ता)
४, ६, ८

७. डॉ० केशरीनारायण शुक्ल (गोरखपुर)
उ, ३, ४, ५, ८

८. डॉ० केशवचन्द्र सिनहा (प्रयाग)
११

९. प्रो० गुरुप्रसाद टण्डन (उज्जैन)
उ, १, २, ६, ९, १०, स

१०. डॉ० गोपीनाथ तिवारी (गोरखपुर)
१, २, ५, ११

११. डॉ० गोवर्धननाथ शुक्ल (अलीगढ़)
६

१२. डॉ० जगदीश गुप्त (प्रयाग)
उ, १०, स

१३. डॉ०जगन्नाथ तिवारी (जम्मू और कश्मीर)
१, २, ३, ५

१४. डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव (लखनऊ)
१, २, ३, ४, ५, ७, ८

१५. डॉ० देवराज उपाध्याय (उदयपुर)
४, ५, ८. ११

१६. डॉ० नगेन्द्र (दिल्ली)
८, ११. स

१७. श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त (प्रयाग)
१०, ११

१८. डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल (कानपुर)
८

१९. डॉ० बच्चन सिंह (वाराणसी)
१०, ११

२०. डॉ० भालचन्द्र तैलंग (औरंगाबाद)
१, ७, ९

२१. श्री माताबदल जायसवाल (प्रयाग)
३, ७

२२. डॉ० रघुवंश (प्रयाग)
३, १०. ११, स

२३. श्री रमानाथ शर्मा (प्रयाग)
७

२४. डॉ० राजनारायण मौर्य (पूना)
३, ७, ९

२५. प्रो० राधाकृष्ण मुदलियार (धारवाड़)
उ, ७

२६. डॉ० रामकुमार वर्मा
उ, ३, ४, ६, ८, ११

२७. डॉ० रामनिरंजन पाण्डेय (हैदराबाद)
उ, १, २, ४, ६

२८. डॉ० रामलाल सिंह (सागर)
६, ७, ९, १०

२९. डॉ० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' (जोधपुर)
२, ४, ५, ८, १०, ११

३०. डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी (प्रयाग)
४, ११

३१. डॉ० रामसिंह तोमर (शान्ति-निकेतन)
१

३२. डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय (प्रयाग)
२

३३. श्री वसन्त अनन्त गद्रे (बम्बई)
७, ९

३४. डॉ० विजयपाल सिंह (तिरुपति)
५

३५. डॉ० विजयेन्द्र स्नातक (दिल्ली)
६, ११, स

३६. डॉ० विनयमोहन शर्मा (कुरुक्षेत्र)
४

३७. डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव (भागलपुर)
उ, २, ४, ५, ७, ९, १०

३८. पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (गया)
६

३९. डॉ० शैलकुमारी (प्रयाग)
११

४०. डॉ० श्रीकृष्णलाल (वाराणसी)
१, ८, ११ स

४१. डॉ० सत्यदेव चौधरी (दिल्ली)
१०, ११

४२. डॉ० सावित्री सिनहा (दिल्ली)
८, १०

४२. श्री सुमित्रानन्दन पंत (प्रयाग)
५, ६, १०

४३. डॉ० हरवंशलाल शर्मा (अलीगढ़)
५, ७

४४. डॉ० हरिहरनाथ टण्डन (आगरा)
३, ८

पूर्वकथन

स्वातन्त्र्योत्तर भारत में 'विश्वविद्यालय अनुदान आयोग' (U. G. C.) की स्थापना और उसकी सार्थक सक्रियता से, भारतीय विश्वविद्यालयों के उच्चस्तरीय शैक्षणिक जीवन में एक नये युग का आरंभ हुआ है जिसके प्रभाव का अनुभव विभिन्न विश्वविद्यालयों में व्यापक स्तर पर प्रत्यक्ष रूप में किया जाने लगा है। प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग द्वारा प्रस्तावित एवं आयोजित स्नातकोत्तर हिन्दी-शिक्षण सम्बन्धी कार्य-शिविर (Workshop on Post Graduate Studies in Hindi) उक्त आयोग के कार्य-क्रम के अन्तर्गत उसी की सहायता से सम्पन्न हुआ। देश के उन विश्वविद्यालयों में से जिनमें स्नातकोत्तर हिन्दी-शिक्षण की व्यवस्था है, बहुतों के प्रतिनिधि कार्य-शिविर में भाग लेने के लिए आये और कुछ अपवादों को छोड़कर शिविर के अंत तक उपस्थित रहे। कश्मीर से केरल, और कलकत्ते से अहमदाबाद तक लगभग पूरे भारतवर्ष का प्रतिनिधित्व एक साथ सुलभ हो सका, फलतः देश के बहुसंख्यक विश्वविद्यालयों के हिन्दी पाठ्य-क्रमों की विविधता अपने अनेकमुखी रूप में ऐसे विचार का आधार बन सकी जिसमें सम्बद्ध विशेषज्ञों के अभिमत का लाभ सम्यक् रीति से उठाया जा सका। ६ अक्तूबर से १२ अक्तूबर १९६४ तक एक सप्ताह में, प्रथम और अन्तिम विशेष समारोहों के अतिरिक्त १२ गोष्ठियाँ शोध और स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम की विषय-व्यवस्था से सम्बन्धित विविध समस्याओं को लेकर आयोजित की गयीं जिनमें आमन्त्रित प्रतिनिधियों तथा उपस्थित विद्वानों ने गंभीर विचार-विनिमय किया। प्रस्तुत प्रतिवेदन में उस समस्त वैचारिक चर्चा को व्यवस्थित रूप में समाविष्ट करने का उपक्रम किया गया है। वक्तव्यों का संक्षेप करने में इसका ध्यान रक्खा गया है कि मुख्य बात, जहाँ तक हो, अपेक्षित संदर्भ के साथ स्पष्टतया सामने आ सके। गोष्ठियों में हुई परिचर्चा के सही रूप तक कई आलेखों के सहारे ही पहुँचना संभव हुआ। संक्षिप्तीकरण के बाद भी यह वास्तविकता का यथेष्ट बोध करा सकेगा ऐसी आशा है।

वास्तविक स्थिति की विविधता एवं अनेकरूपता तभी लक्षित हो पाती है जब सजगतापूर्वक तुलनात्मक दृष्टि अपनायी जाय। सभी विश्वविद्यालयों में जहाँ हिन्दी का स्नातकोत्तर शिक्षण होता है, कुछ न कुछ निजी विशेषता मिलती है। प्रतिवेदन में इस पक्ष को उभार कर सामने रखने की चेष्टा की गयी है। परिशिष्ट भाग में पाठ्यक्रमों के विश्लेषण के साथ पाठ्यक्रमों को भी समाविष्ट कर लिया गया है जिससे स्थिति अधिक स्पष्ट हो सके, तथा स्वतन्त्र रीति से भी, वस्तुपरक ढंग से विचार किया जा सके। इतने पाठ्यक्रमों को एकत्र करना स्वयं एक दुष्कर कार्य था जिसे सम्पन्न करने में अनेक उपायों का सहारा लेना पड़ा। प्रयाग विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार आफ़िस ने इसमें बड़ी सहायता की। वही विश्वविद्यालय जिनकी ओर से सहयोग नहीं मिला, पाठ्यक्रमों की सूची में आने से रह गये हैं। विचार-विनिमय में पाठ्य-क्रम के वैविध्य

की चर्चा करते हुए इस सामग्री का संदर्भ बहुधा दिया गया इसीलिए उसे प्रतिवेदन का अनिवार्य अंग मान कर प्रस्तुत किया गया है। जो लोग शिविर में परिस्थितिवश नहीं आ सके वे भी सारे विचार-विनिमय को इसके सहारे सही परिप्रेक्ष्य में देख सकें इसलिए भी पाठ्य-क्रमों का समावेश उपयुक्त समझा गया है। उनकी वास्तविक संख्या ३२ है मुद्रित क्रमांक ठीक न होने का मुझे खेद है। शिविर में भाग लेने या न ले पाने वाले विद्वानों द्वारा जो सुझाव प्रस्ताव और लेख विचारार्थ हमें प्राप्त हुए उन्हें भी विभिन्न परिशिष्टों के रूप में प्रतिवेदन में समाविष्ट कर लिया गया है। लेखों को अविकल रूप से देना संभव नहीं हो सका क्योंकि वे प्राय: विस्तृत निबन्ध के रूप में भेजे गये थे। उनका सार-संक्षेप उनके वैचारिक महत्व को दृष्टि में रखकर ही किया गया है अन्यथा उन्हें इस प्रतिवेदन में सर्वथा न रख पाने का मानसिक कष्ट उठाना पड़ता और लेखकों के प्रति भी अन्याय होता। श्रमपूर्वक तैयार किया गया सहायक-ग्रंथों का विश्लेषण स्थानाभाव के कारण ही नहीं दिया जा सका। परिशिष्ट-२ के रूप में जो प्रवर्तन-लेख दिये गये हैं वे पूरे के पूरे छापे गये हैं। इनमें से कुछ लेख प्रवर्तकों द्वारा स्वयं संशोधित परिवर्धित भी किये गये हैं जिससे मौखिक रीति से व्यक्त किये गये उनके विचार भी समाविष्ट हो सके हैं। गोष्ठियों की रिपोर्ट में कुछ ऐसे विचार भी मिल सकते हैं जो प्रवर्तन-लेखों में न आ सके हों किन्तु जिन्हें प्रवर्तकों ने गोष्ठियों में व्यक्त किया हो और वे नोट कर लिये गये हों। इस दृष्टि से गोष्ठियों का विवरण पूरक होकर अतिरिक्त उपयोगिता रखता दिखायी देता है। यदि किसी के विचार समुचित रूप में प्रतिवेदन में न आ सकें हों या उनके प्रस्तुतीकरण में कोई त्रुटि हो गयी हो तो मैं उसके लिए पहले से ही क्षमाप्रार्थी हूँ। गोष्ठियों में विशेषज्ञों द्वारा व्यक्त किये विचार निश्चय ही मूल्यवान हैं और उनसे पाठ्य-क्रम के अनेक पक्षों पर उपयोगी प्रकाश पड़ता है।

हिन्दी के स्नातकोत्तर-शिक्षण के साथ शोध की समस्याओं को उठा लेना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत हुआ क्योंकि विश्वविद्यालयों और उनसे सम्बद्ध विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग के द्वारा जो शिक्षण की योजनाएँ बनायी जाती हैं, उनमें शोध-कार्य पर विशेष बल दिया जाता है। डॉ० रामकुमार वर्मा का विचारपूर्ण प्रवर्तन-लेख तथा समापन-समारोह में शोध तथा अन्य विषयों के सम्बन्ध में व्यक्त किये गये अनुभवपूर्ण सुझाव विशेष महत्व रखते हैं। उनका अन्तर्विश्वविद्यालयी स्तर पर शोध-कार्य के समीकरण एवं नियमन का प्रस्ताव मेरी दृष्टि में अवश्य ही क्रियान्वित करने योग्य है। यह कष्ट-साध्य कार्य आयोग की विशेष सहायता से ही संभव हो सकता है। इसके अतिरिक्त जो बातें निष्कर्ष रूप में आगे उभर कर आयीं वे निम्नलिखित हैं—

- जहाँ तक संभव हो एकरूपता रक्खी जाय किन्तु उस पर आग्रह उचित नहीं है। केवल समरूपता वांछनीय है परन्तु उसको भी विश्वविद्यालयों की विद्या-सभाओं की नियमावली को ध्यान में रख कर ही लाना अपेक्षित है।
- आठ प्रश्न-पत्रों की योजना सामान्य रीति से मान्य एवं उपयुक्त है। जहाँ एम० ए० में आठ से अधिक या कम प्रश्न-पत्र हों वहाँ समरूपता के पक्ष में पुनर्विचार अपेक्षित है। आठ से अधिक प्रश्न-पत्र भी संभव हैं और कहीं-कहीं व्यावहारिक रूप में प्रचलित भी हैं।

- स्नातकोत्तर पाठ्य-क्रम में अध्ययन तथा अध्यापन के स्तर के समानीकरण पर विशेष बल देना अत्यन्त आवश्यक है, यह कार्य विभिन्न संदर्भों में दो प्रकार से संभव है।
    १. विश्वविद्यालय विशेष के विभिन्न विषयों के स्तर-संदर्भ में एकरूपता लाकर
    २. अन्तर्विश्वविद्यालयी स्तर-संदर्भ में समरूपता लाकर
- स्तरोन्नयन की दिशा में अधिक प्रयत्न अपेक्षित है जो इन उपायों के द्वारा घटित हो सकता है।
    १. ग्रंथों के प्रामाणिक संस्करणों का प्रकाशन
    २. पाठ्य-क्रम के साथ अधुनातन आधिकारिक ग्रंथ-सूची का समावेश
    ३. अखिल भारतीय ख्याति के विद्वानों की व्याख्यान-मालाओं का वार्षिक आयोजन
    ४. विभागीय पुस्तकालयों की स्थापना तथा उनके उपयोग की समुचित व्यवस्था

पूर्वमुद्रित एवं निर्धारित कार्य-क्रम में, निजी कठिनाइयों के कारण कुछ प्रवर्तकों के न आ सकने अथवा उनके आने की तिथि में व्यतिक्रम होने से, आवश्यकतानुसार कहीं-कहीं परिवर्तन करना पड़ा तथा सभापतित्व और प्रवर्तन करने के लिए सम्मानित अतिथियों से बिना अपेक्षित समय दिये ही निवेदन करना पड़ा। उन्होंने उसे सौजन्यपूर्वक निरपवाद स्वीकार किया अतः उनकी इस कृपा के लिए मैं विशेष आभारी हूँ। मेरे निवेदन पर डा० विनयमोहन शर्मा ने उद्घाटन गोष्ठी की अध्यक्षता स्वीकार करके शिविर को प्रतिष्ठा प्रदान की और मुझे भी अनुगृहीत किया। पं० सुमित्रानंदन पंत का 'आधुनिक काव्य और आलोचना' विषयक गोष्ठी के सभापति रूप में जो अप्रत्याशित योगदान प्राप्त हुआ उससे शिविर गौरवान्वित हुआ है इसमें संदेह नहीं। स्वयं न आ सकने पर भी जिन्होंने अपने लिखित सुझाव, प्रस्ताव और शुभकामनाएँ भेज कर कृतार्थ किया उनका योग भी अविस्मरणीय है। ऐसे व्यक्तियों में श्रद्धेय डॉ० धीरेन्द्र वर्मा का नाम सर्वोपरि है, जिन्होंने मेरे इस प्रथम अनुभव को सफल बनाने के निमित्त मुझे अपने उत्तरदायित्व के प्रति पहले से ही सचेत कर दिया था। वे शिविर में सम्मिलित नहीं हो सके इसका मुझे हार्दिक खेद है। उन्हीं दिनों आगरे में डॉ० माता प्रसाद गुप्त द्वारा आगरा विश्वविद्यालय के अपने पाठ्यक्रम को लेकर एक संगोष्ठी हो रही थी, उसी के कारण डॉ० गुप्त भी नहीं आ सके। पर उनका वह विचारपूर्ण निबंध मुझे तुरन्त प्राप्त हो गया था जो अब उस संगोष्ठी के 'कार्य-विवरण' में प्रकाशित हो चुका है। प्रस्तुत प्रतिवेदन में अन्य निबन्धों के साथ उसका भी सार-संक्षेप सम्मिलित कर लिया गया है, क्योंकि कई दृष्टियों से उसमें कही गयी बातें महत्वपूर्ण हैं। जो प्रस्तावित विषय चर्चित होने से रह गये उनको इस प्रकार विचारार्थ प्राप्त निबंधों में प्रायः उठा लिया गया है। अतएव उनमें व्यक्त विचारों को समाविष्ट कर लेने से कुछ दूर तक उस अभाव की पूर्ति भी हो गयी है। 'प्राचीन तथा आदिकालीन साहित्य' पर आयोजित तीसरी गोष्ठी डॉ० रामसिंह तोमर के प्रस्ताव और सक्रिय सहयोग से ही संभव हो सकी।

यों तो प्रतिनिधि भेजने वाले सभी विश्वविद्यालयों का सद्भावपूर्ण सहयोग शिविर को प्राप्त हुआ परन्तु डॉ० नगेन्द्र के सौजन्य से दिल्ली विश्वविद्यालय का जितना अधिक सहयोग मिला उतने की आशा नहीं थी अतः मैं उनका तथा उनके सहयोगियों का हृदय से आभार

मानता हूँ। डॉ० सावित्री सिन्हा ने इतिहास-गोष्ठी का प्रवर्तन करके, डॉ० सत्यदेव चौधरी ने काव्यशास्त्र के विषय में विशेष प्रवर्तन करके तथा डॉ० विजयेन्द्र स्नातक ने लगातार दो गोष्ठियों का एक साथ प्रवर्तन करके अपनी अजस्र सद्भावना से मुझे निश्चय ही कृतकृत्य कर दिया। जो विद्वान् प्रतिनिधि मेरे आग्रह पर दूर-दूर से कष्ट उठाकर आये मैं उन सभी के प्रति अपना आभार पुनः प्रकट करता हूँ।

इसमें संदेह नहीं कि शिविर के आयोजन का मुझको पहले से कोई अनुभव नहीं था। मेरा मार्ग-दर्शन विभागाध्यक्ष डॉ० रामकुमार वर्मा के उस अगाध विश्वास और डॉ० हरदेव बाहरी के सत्परामर्श ने किया जो मुझे निर्बाध उपलब्ध होता रहा। शिविर की बहुचर्चित सफलता के श्रेय के वास्तविक अधिकारी वे ही हैं और हैं विभाग के वे वरिष्ठ और कनिष्ठ सहयोगी जिन्होंने समितियों में रह कर अपनी कर्मठता का पूरा परिचय दिया। पं० उमाशंकर शुक्ल ने कार्य व्यस्त होते हुए भी अनेक अतिथियों का स्वागत-भार लेकर मुझे कुछ हल्का किया अतः उनके प्रति सहज विनत हूँ। डॉ० राजेन्द्र कुमार वर्मा ने दक्षिणबाहु बन कर कठिन परिस्थितियों को सरल बनाया, वे मेरे स्नेह के पात्र हैं। मेरे शोध-छात्रों में रमाकान्त मिश्र ने कार्यालय का सुचारु संचालन करके, श्रीराम वर्मा ने गोष्ठियों के प्रतिवेदन को विवेक और श्रम के साथ संक्षिप्त करके, श्रीनिवास तिवारी ने दायित्व के साथ अर्थ का लेखा रख कर, प्रमोद कुमार सिन्हा ने प्रूफ-संशोधन का कार्य सम्हाल कर तथा प्रेमकान्त टंडन ने कुशलता और तत्परता से आवास व्यवस्था को अधिकाधिक अनुकूल बनाकर और अन्य अनेक रूपों में योग देकर जो विशेष योग्यता और आत्मीयता का परिचय दिया है वह मुक्त आशंसा की अपेक्षा रखता है। कुछ लेखों को संक्षिप्त करने में अशोक रस्तोगी ने अस्वस्थ होते हुए भी सहायता की, जो कम प्रशंसनीय नहीं है। अनुक्रम को क्षेत्रपाल ने सुव्यवस्थित रीति से तैयार किया है।

अन्य शोध-छात्रों में रक्षा भल्ला और उर्मिला जैन ने अप्रतिहत गति से चलने वाले भाषणों को यथासंभव पूरी तरह नोट करके तथा गणपति भट्ट ने 'आयोग' के पास भेजने के लिए पूरे प्रतिवेदन का अंग्रेजी संक्षेप तैयार करके जो उपयोगी और आवश्यक कार्य किया है, उसके लिए उनकी जितनी भी सराहना की जाय कम है। उन्होंने शीघ्रलिपिक के अभाव का अनुभव ही नहीं होने दिया। कुलदीप कपूर ने कार्यक्रम नियत समय तक छपवाने तथा ब्लाक बनवाने में विशेष सहायता की। उपकुलपति महोदय और रजिस्ट्रार तथा उनके कार्यालय एवं लेखा-विभाग तथा अपने विभागीय से शिविर सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति में मुझे बराबर सहयोग मिलता रहा। गंगानाथ झा छात्रावास के अधिकारियों ने अतिथियों के निवास के लिए छात्रावास के उपयोग की सुविधा देकर तथा श्री हरिमोहन दास टंडन ने वाहन की व्यवस्था करके एक बड़ी कठिनाई दूर कर दी। मैं इन सभी के सहयोग की भावना का आदर करता हूँ।

'प्रयाग रंगमंच' की ओर से डॉ० सत्यव्रत सिन्हा ने नाट्य प्रस्तुति करके कार्य-क्रम को सांस्कृतिक समृद्धि प्रदान की और आगत अतिथियों का रंजन किया। इसी तरह 'लोकभारती' की ओर से हिन्दी की पुस्तकों की एक प्रदर्शनी हिन्दी-भवन में ही आयोजित की गयी जिससे बहुत से प्रतिनिधि लाभान्वित हुए। शिविर दोनों के प्रति आभारी है।

समापन गोष्ठी में यह निश्चय हुआ था कि मैं डॉ० रामकुमार वर्मा तथा डॉ० विजयेन्द्र स्नातक के परामर्श से प्रतिवेदन का अन्तिम रूप तैयार करूँ और उसे प्रकाशित करा दूँ। मैंने कुरुक्षेत्र में पाण्डुलिपि दिखा कर डॉ० स्नातक एवं डॉ० वर्मा दोनों की सहमति प्राप्त कर ली थी। डॉ० वर्मा से बाद की स्थितियों में भी परामर्श प्राप्त होता रहा। प्रस्तुत रूप में यह प्रतिवेदन दोनों परामर्शदाताओं के समर्थन के साथ प्रकाशित हो रहा है।

इसके प्रकाशन में शिविर के लिए प्राप्त नौ हजार रुपये के अनुदान में से जो राशि शेष बची वह बहुत कम प्रतीत हुई। अतः 'आयोग' से एक हजार के अतिरिक्त अनुदान का प्रस्ताव किया गया। 'आयोग' ने उसे शीघ्र स्वीकार करके जो विशेष सहायता दी है उसी का फल है कि यह वर्तमान रूप में आप तक पहुँच सका है।

मुझे विश्वास है कि यह प्रतिवेदन स्नातकोत्तर हिन्दी पाठ्य-क्रम एवं शोध की समस्याओं के संदर्भ में पर्याप्त उपादेय सिद्ध होगा।

२३-४-६६ — जगदीश गुप्त

हिन्दी-विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय — **निदेशक, कार्य-शिविर**

उद्घाटन समारोह

स्थान : विजयनगरम हाल
दिनांक : ६.१०.६४
समय : ३ से ६ बजे

अध्यक्ष

- डॉ० विनयमोहन शर्मा — कुरुक्षेत्र

स्वागताध्यक्ष

- डॉ० बलभद्रप्रसाद — प्रयाग

विभागाध्यक्ष

- डॉ० रामकुमार वर्मा — प्रयाग

निदेशक

- डॉ० जगदीश गुप्त — प्रयाग

वक्ता

- डॉ० केशरीनारायण शुक्ल — गोरखपुर
- डॉ० अम्बाशंकर नागर — अहमदाबाद
- डॉ० गुरुप्रसाद टण्डन — उज्जैन
- प्रो० राधाकृष्ण मुदलियार — कर्नाटक
- डॉ० रामनिरंजन पाण्डेय — हैदराबाद
- डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव — भागलपुर
- डॉ० कमलाकान्त पाठक — नागपुर
- पं० उमाशंकर शुक्ल — प्रयाग

स्नातकोत्तर हिन्दी-शिक्षण-कार्य-शिविर का उद्घाटन-समारोह निराला के 'वरदे, वीणावादिनि वर दे' सरस्वती-वन्दना-गीत के साथ प्रारम्भ हुआ।

उपकुलपति डॉ० बलभद्र प्रसाद ने कहा : मैं हिन्दी के इन विद्वानों का स्वागत करता हूँ। हिन्दी के विषय में मेरे कुछ विचार हैं। वे सही हैं या नहीं, इसका निर्णय आप ही कर सकेंगे। विद्यार्थियों का यह विचार कि हिन्दी में एम० ए० करना सरल है, ग़लत है। बहुत दिनों तक हिन्दी की पढ़ाई एम० ए० में नहीं होती थी। अंग्रेज़ी एम० ए० के आधार पर बाद में हिन्दी एम० ए० का कोर्स बना। इसीलिए कुछ लोगों की धारणा है कि हिन्दी की एम० ए० परीक्षा आसान है।

इंग्लैण्ड में अंग्रेज़ी के साथ फ्रेंच आवश्यक है। इसीलिए मेरी दृष्टि में बी० ए० तक एक अन्य भारतीय भाषा का अध्ययन उचित है।

आज यूरोप हमसे आगे है। हम उससे सीखते हैं। इसलिए एम० ए० के विद्यार्थियों को यूरोपीय साहित्य का अध्ययन लाभदायक है।

शोध-छात्र को अपने विषय का ज्ञान तथा अन्य विषयों का भी ज्ञान होना चाहिए। उनका स्तर एम० ए० के छात्रों जैसा नहीं होना चाहिए। पी-एच० डी० को एम० ए० से आसान समझने की भूल कुछ लोगों की तरह शोध-छात्र को नहीं करनी चाहिए।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने उपकुलपति के आशीर्वाद के बाद हार्दिक स्वागत करते हुए कहा कि हिन्दी के शोध-कार्य तथा पाठ्यक्रम पर विचार करने का यह उपयुक्त अवसर है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की सहायता से स्नातकोत्तर अध्ययन-शिविर का आयोजन हुआ है, जिससे बहुत लाभ होगा।

स्नातकोत्तर छात्रों की समस्याएँ जटिल हैं। विशेषतः हिन्दी में। अतः आवश्यक है कि छात्र ऐसे तैयार हों, जिनसे हिन्दी की अवहेलना न प्रतीत हो। हिन्दी का पाठ्यक्रम इस प्रकार नियोजित हो, जिससे भाषा और साहित्य के सम्बन्ध में अधिकाधिक जानकारी हो सके। यह उपादेय स्थिति है, जिसमें अनेक विश्वविद्यालयों के प्राध्यापक मिल कर समस्या का हल कर सकें, योजना बना सकें, जिससे पाठ्यक्रम में सामान्यीकरण, मानीकरण और समीपीकरण जैसी मुख्य समस्याएँ न रह जायँ; उनका समाधान हो जाय। यह इसलिए भी आवश्यक है कि हिन्दी का ज्ञान प्राप्त करना सरल नहीं है, क्योंकि उसकी बहुत-सी दिशाएँ हैं।

दूसरी समस्या है शोध की, जिसमें शोध के स्तर पर विचार करना है, निष्कर्ष प्रस्तुत करने की चेष्टा पर बल देना है।

इस शिविर के लिए सौभाग्य की बात है कि विविध विश्वविद्यालयों के विभागाध्यक्षों और वरिष्ठ अध्यापकों की उपस्थिति में प्रयाग के संगम तीर्थ में यह आयोजन सेतु का कार्य करेगा। दक्षिण के अध्यापकों की कठिनाइयाँ भी ऐसे शिविर में हल होंगी।

मैं आशा करता हूँ कि षष्ठ-दिवसीय यह आयोजन हिन्दी पाठ्यक्रम एवं शोध की समस्याओं के निराकरण में सहायक होगा।

निर्देशक डॉ० जगदीश गुप्त ने बताया कि प्रयाग विश्वविद्यालय में हिन्दी अध्यापन का आरम्भ बहुत बाद में सन् १९२४ में हुआ। विश्वविद्यालय की स्थापना (सन् १८८७ ई०) से लेकर १९२२ तक हिन्दी की शिक्षा की व्यवस्था नहीं थी। हिन्दी और स्नातकोत्तर शिक्षा की व्यवस्था सन् '२४ के बाद हुई।

शिविर का आयोजन विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग के अन्तर्गत हो रहा है। इसमें ९ हज़ार का अनुदान प्राप्त हुआ है, जो कम है। हमने प्रयत्न किया है कि अधिक से अधिक विद्वान् इसमें भाग ले सकें।

इस समय भारत में विश्वविद्यालयों की संख्या ५६ है, जिनमें १७ में स्नातकोत्तर कक्षाओं में हिन्दी-शिक्षण नहीं होता। ३९ विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम मँगाये गये थे। १२ विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम जिनमें से नहीं मिल सके हैं। २७ विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम आ गये हैं। इन पर विचार करना है।

इस प्रकार का अखिल भारतीय प्रयत्न प्रथम बार हो रहा है।

भारतीय हिन्दी परिषद् के तत्वावधान में इस प्रकार की समस्याएँ उठायी गयीं, लेकिन ये समस्याएँ भारतीय हिन्दी परिषद् में मुख्य स्थान नहीं ग्रहण कर पायीं। और आनुषंगिक रूप में वे अन्ततः उपेक्षित रह गयीं।

पाठ्यक्रमों के अनुशीलन से प्राप्त परिणामों के अनुसार लिखित प्रश्न-पत्रों की संख्या कम से कम ६ और अधिक से अधिक ९ है। प्रयाग और गोरखपुर विश्वविद्यालयों में दोनों वर्ष मौखिक परीक्षा होती है। संख्या-सूची की दृष्टि से प्रयाग विश्वविद्यालय की पत्र-संख्या सर्वाधिक है। कुछ विश्वविद्यालयों में विकल्पों की संख्या ७ या ८ है, कुछ में १ या २ और कुछ में एक भी नहीं। इस विभेद का कारण स्पष्ट है कि एकरूपता पर बल नहीं दिया गया क्योंकि सभी विश्वविद्यालय स्वयं नीति निर्धारित करते हैं। पर राष्ट्र एक है; स्तर एक है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का कर्तव्य है कि क्षेत्रीय सीमाओं के बाद भी एकरूपता के लिए प्रेरणा दे। एकरूपता और स्तर-साम्य एक नहीं है। भेद तब भी रहता है।

प्रायः विश्वविद्यालयों में इस समय विषय-विभाजन में भी एकरूपता नहीं है। कहीं-कहीं प्राचीन हिन्दी साहित्य नहीं पढ़ाया जाता। मगध में मध्यकालीन साहित्य का अध्ययन होता है। मराठवाड़ा में ऐसा भी नहीं है। पंजाब में मध्यकालीन साहित्य नहीं पढ़ाया जाता। भाषा-विज्ञान कलकत्ता में है ही नहीं, क्योंकि वहाँ भाषा-विज्ञान का एक अलग विभाग है।

शिक्षा में विज्ञान एक समस्या पैदा करता है। यदि साहित्य की मूल वस्तु ही नष्ट हो जाय, विद्यार्थी अन्तरात्मा ही न समझे, तो व्यर्थ है। साहित्य विज्ञान से भिन्न वस्तु है। साहित्य का शिक्षण वही उपादेय है, जो केन्द्रीय एवं मूलभूत समस्या को सामने रख सके।

डॉ० केसरीनारायण शुक्ल की दृष्टि में पाठ्यक्रमों का ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक पक्ष भी है। व्यक्तिगत रूप से इसका अनुभव पहले सितारे-हिन्द ने किया था। इसके बाद कलकत्ता

विश्वविद्यालय में लाला सीताराम का ध्यान गया। फिर काशी विश्वविद्यालय के श्याम सुन्दरदास तथा रामचन्द्र शुक्ल ने इस ओर प्रयास किया। किन्तु प्रश्न आज भी बना है। अच्छा होता, हम बी० ए० के पाठ्यक्रम को भी ले सकते। बी० ए० में सामान्य परिचय मात्र अपेक्षित है।

आज हिन्दी का प्रसार उन क्षेत्रों में भी है, जहाँ हिन्दी बोलचाल की भाषा नहीं है। अतः विभिन्न स्थानों की स्थिति के अनुसार वहाँ की समस्याएँ हैं।

पाठ्यक्रम के साथ अध्यापन तथा पठन की समस्याएँ भी हैं। आज का पाठ्यक्रम जिस ओर ले जाता है, उस पर भी विचार करना पड़ेगा। अतीत और भविष्य की ओर भी ध्यान देना होगा। मानकीकरण के साथ क्षेत्रीय विविधताएँ भी रहेंगी।

डॉ० अम्बाशंकर नागर के विचार से अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के अध्यापन तथा स्नातकों के पाठ्यक्रम की समस्याएँ भिन्न हैं। क्योंकि वहाँ आरम्भ से हिन्दी नहीं पढ़ायी जाती। हिन्दी भाषी क्षेत्रों में प्रथम कक्षा से ही हिन्दी पढ़ायी जाती है, पर अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में बी० ए० तक भी ऐसा नहीं है। अतः भाषा की वहाँ कठिनाई है। वहाँ प्राचीन साहित्य के पढ़ाये जाने की समस्या भी उठ रही है। प्राचीन कविताएँ कितनी पढ़ायी जायँ ? डिंगल, अवधी, ब्रजभाषा की कविताएँ पढ़ायी जायँ या नहीं ? जब तक विद्यार्थी अपनी पूरी साहित्यिक परम्परा से परिचित नहीं होगा, केवल खड़ी बोली साहित्य का परिचय अपर्याप्त है।

पश्चिम भारत के विश्वविद्यालयों में ६+२=८ प्रश्नपत्र होते हैं। एक इतर भाषा भी होती है।

क्षेत्रीय अनुसन्धान की ओर मैं विद्वानों का ध्यान आकृष्ट कराना चाहता हूँ। क्षेत्रीय अनुसन्धान या तुलनात्मक अध्ययन उपादेय है या नहीं? यह भी ध्यातव्य है कि अकेले गुजरात से लगभग ३०० हिन्दी कवि प्राप्त हुए हैं। ऐसी स्थिति में क्षेत्रीय अनुसन्धान तथा तुलनात्मक अध्ययन के नियोजन एवं स्तर रक्षा के लिए प्रयत्न होना चाहिए, यह मेरा प्रस्ताव है।

पी-एच० डी० के विषयों में अक्सर पुनरावृत्ति होती है। इससे कठिनाई बढ़ती है। समय का अपव्यय भी होता है। विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग का इस सम्बन्ध में केन्द्रीय शोध-संस्थान का रूप हो, ऐसा आयोजन करना चाहिए, जिससे सूचना मिलती रहे कि कहाँ, किस विषय पर काम हो रहा है।

हिन्दी के बढ़ते हुए प्रभाव और बढ़ती हुई समस्याओं के कारण इस कार्य-शिविर का आयोजन आवश्यक है।

डा० गुरुप्रसाद टण्डन ने इस प्रयास का अभिनन्दन किया। उनके अनुसार यह बात कई वर्षों से हमारे सम्मुख है कि स्नातकोत्तर कक्षाओं के हिन्दी पाठ्यक्रमों में समानता लायी जाय और दक्षिण भारत के सन्दर्भ में उनका विशेषीकरण भी किया जाय। राजभाषा होने से यह समस्या उठी कि दक्षिण भारत में हिन्दी का स्तर कैसा हो और उत्तर भारत से उसका सम्बन्ध कैसे बना रहे। मेरे सामने यह प्रश्न भी है कि निबंध के स्थान पर प्रबन्ध क्यों रखा जाता है। मौखिक परीक्षा का औचित्य भी एक समस्या है, क्योंकि इसमें अनधिकारी छात्र अधिक अंक पा जाते हैं। शोध-प्रबन्धों के विषयों के निर्धारण के सम्बन्ध में घोर अराजकता है। विश्वविद्यालय अपने

उत्तरदायित्व का निर्वाह नहीं कर पाते। समुचित विचार और उचित निर्देशन के अभाव में शोध-प्रबन्ध उत्कृष्ट नहीं हो पाते। हम निष्कर्षों को किस प्रकार अन्य विश्वविद्यालयों में लागू कर सकेंगे, यह भी एक समस्या है। एक ही विषय पर कई विश्वविद्यालयों में शोध होना अच्छा नहीं कहा जा सकता। हिन्दी का स्तर अन्य भाषाभाषियों के समक्ष ऊँचा उठाना है, जिससे हमें लज्जित न होना पड़े। कई विश्वविद्यालयों में चार प्रश्नपत्र और एक थीसिस पर एम० ए० की डिग्री मिल जाती है। छात्रों की कठिनाइयों की दृष्टि से पाठ्यक्रम में सरलीकरण करना भी एक समस्या है, हम कहाँ तक इसे सरल करते जायँगे! निष्कर्ष निकालना सरल है, लागू करना मुश्किल।

श्री राधाकृष्ण मुदलियार ने कहा : हमें अतीत, वर्तमान और भविष्य तीनों के साहित्य को पढ़ाना चाहिए। बिना अतीत के वर्तमान बनता है क्या? बिना वर्तमान के हमारा भविष्य बनता है क्या? भाषा एक दिन में बनती है क्या? कर्नाटक विश्वविद्यालय में प्राचीन, मध्य, आधुनिक युगों का साहित्य है; भाषा-विज्ञान, निबन्ध, आलोचना सब कुछ है।. . .शोध-कार्य के विषय में प्रयत्न किया जाय कि पूर्वाग्रहपूर्ण वातावरण न रहे। भारत में सांस्कृतिक एकता नहीं है क्या? तब उसके लिए प्रयत्न होना नहीं चाहिए क्या? कर्नाटक में बारह लोग शोध-कार्य कर रहे हैं। सबका विषय तुलनात्मक है। कन्नड़ और हिन्दी साहित्य की तुलना।

डॉ० रामनिरंजन पाण्डेय की मान्यता थी कि एक विषय पर कला के क्षेत्र में सौ बार शोध सम्भव है, विज्ञान में अवश्य एक ही बार हो सकती है। पर मौलिक ढंग से समस्याओं को लेना होगा। केवल एप्रोच भिन्न होना चाहिए। एक ही विषय पर दो शोध-प्रबन्ध फिर तैयार हो सकते हैं। आजकल अन्य विषयों में अनुसन्धाताओं में मौलिक प्रवृत्ति नहीं होती और इस हीन भावना के कारण उनमें अधिक डॉक्टर नहीं बनते। यदि अन्य विषयों की भाषा हिन्दी हो, तो उनमें भी अधिक डॉक्टर होंगे। हिन्दी में अधिक अनुसन्धान-कार्य होने का कारण है। अनुसन्धान का माध्यम अपनी ही भाषा है। अन्य विषयों में अनुसन्धान कम इसलिए हो रहा है कि माध्यम अंग्रेज़ी है। अधिक डाक्टरों का होना भयप्रद नहीं है। स्नातकोत्तर परीक्षाओं के पाठ्यक्रम का स्तर निश्चित होना चाहिए। प्रत्येक विधा और प्रत्येक युग की स्थिति का ज्ञान आवश्यक है। स्नातकोत्तर स्तर-समान होना चाहिए, क्योंकि उस समय तक अहिंदी भाषी विद्यार्थी को भी हिन्दी भाषा पूरी तरह आ जाती है।

साहित्य हमेशा से सम्बद्ध वस्तु है, इसलिए उसका सम्यक् ज्ञान भी आवश्यक है।

डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव ने बताया कि जिस क्षेत्र से मैं आ रहा हूँ, वहाँ से कुछ समस्याएँ उठायी जा रही हैं। मैथिली क्षेत्र वाले मैथिली को एक अलग भाषा मानते हैं, जिससे कई समस्याएँ उठ जाती हैं। सम्पूर्ण भारत में हम हिन्दी को व्यापक कर रहे हैं, अतः इसका स्तर सर्वमान्य होना चाहिए। किन्तु सभी जनपदीय क्षेत्रों में कुछ समस्याएँ आ रही हैं। ज्यों-ज्यों अन्य भारतीय भाषाएँ विकसित हो रही हैं, त्यों-त्यों हमारी समस्याएँ बढ़ती जा रही हैं। मैथिली के विकास के साथ विद्यापति हिन्दी के कवि नहीं रह जायँगे।

ऊँचे स्तर पर विश्वविद्यालयों को विभिन्नता के लिए क्या छूट देनी चाहिए? इसमें मैं

स्वतन्त्रता का हामी हूँ। हाँ, स्तर ऊँचा और एक हो। भागलपुर में यह भी प्रश्न उठाया जा रहा है कि क्यों न अंग्रेज़ी भी हिन्दी में पढ़ायी जाय।

पाठ्यक्रम का स्तर दक्षिण वालों को ध्यान में रखते हुए समान रखना चाहिए।

हिन्दी के बढ़ते हुए शोध-कार्य को देखकर भयभीत नहीं होना चाहिए। उससे हिन्दी का लाभ होगा। कुछ नियन्त्रण अवश्य होना चाहिए और हिन्दी के माध्यम से ही सभी विषयों को पढ़ाना चाहिए।

डॉ० कमलाकान्त पाठक के अनुसार प्रत्येक विश्वविद्यालय की अपनी विशेषताएँ हैं। कुछ विशेषज्ञ हैं। इसलिए पाठ्यक्रम के विशेषीकरण की बात भी उठती है। वैसे साहित्य का मूल तत्व आस्वादनीयता है। किन्तु समानीकरण एवं विशेषीकरण की भी समस्या है। हिन्दी में एम० ए० का पाठ्यक्रम सारे भारत में एक होना चाहिए। किन्तु कठोर एकरूपता वाले विचार में उदारता की आवश्यकता है। इसलिए विशेषीकरण की प्रवृत्ति के साथ-साथ कुछ ऐसा आयोजन होना चाहिए कि विद्यार्थी को साहित्य के सभी पक्षों का ज्ञान प्राप्त हो। साहित्य का विश्लेषण-परक अध्ययन होना चाहिए। साहित्य में आस्वादनीय पक्ष का उद्‌घाटन होना चाहिए। सामान्य-तया विशेषज्ञों को ध्यान में रखकर भी पाठ्यक्रम निर्धारित होना चाहिए। अन्ततः यह सत्य है कि पूर्ण एकरूपता पाठ्यक्रम में सम्भव नहीं है।

अध्यक्ष डॉ० विनयमोहन शर्मा ने शिविर की दो प्रमुख समस्याएँ बतायीं—(१) पाठ्य-क्रम की समस्या और (२) शोध की समस्या। उन्होंने दक्षिण और उत्तर के पाठ्यक्रम में समानता या असमानता को भी प्रश्नवत् बताया और दक्षिण में केवल खड़ी बोली या अन्य बोलियों के पढ़ाने के विषय में विद्वानों को प्रश्नशील बताया। उन्होंने आगे कहा—उत्तर के एक विद्वान् ने कहा कि मैथिली भाषा में विद्यापति को समोया जाय, पर यह प्रश्न बँगला भाषियों की ओर से भी उठाया जाता है। राजस्थानी भाषा में भी यही समस्या रही है। खड़ी बोली हिन्दी की यह परम्परा रही है कि मैथिली और राजस्थानी को पृथक् नहीं रखना चाहिए।

विगत वर्ष आगरा संस्थान ने प्रश्न उठाया था कि दक्षिण में खड़ी बोली ही स्नातकों को पढ़ायी जाय या प्राचीन साहित्य भी पढ़ाया जाय? डॉ० धीरेन्द्र वर्मा का मत है कि हिन्दीभाषी क्षेत्रों में भी खड़ी बोली को ही मुख्यता दी जानी चाहिए। डा० सक्सेना ने भी यह प्रश्न उठाया था। मेरा मत है कि प्राचीन कवियों को हम हिन्दी के पाठ्यक्रम से अलग नहीं कर सकते। मैं तो उर्दू कविता भी पाठ्यक्रम में सम्मिलित करना चाहता हूँ। क्योंकि उर्दू हिन्दी की शैली है। काशी विश्वविद्यालय में निर्णय किया गया है कि उर्दू कवियों को भी रखा जाय। यह प्रयत्न अभिनन्दनीय है।

मौखिक परीक्षा में परीक्षकों को सच्चाई से काम लेना चाहिए। इससे छात्रों पर ज्यादती नहीं हो सकेगी। प्राध्यापक कमज़ोर हो सकते हैं, मौखिक परीक्षा स्वयं अनुपादेय नहीं।

शोध एक ही विषय पर विभिन्न दृष्टियों से हो सकता है।

डा० नागर ने कहा कि प्रत्येक क्षेत्र में क्षेत्रीय साहित्य है, यह महत्वपूर्ण है। अतः आवश्यकता है कि क्षेत्रीय साहित्यों पर कार्य किया जाय।

निजी तौर पर हुए शोध-कार्य अधिक चिन्तनपूर्ण होते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि उचित शोध-विद्यार्थियों का चुनाव हो। इसके लिए कुछ प्राध्यापक एसे भी हो सकते हैं, जो केवल शोध-कार्य में अपना समय व्यतीत करें।

प्रयाग विश्वविद्यालय एवं हिन्दी विभाग की ओर से पं० उमाशंकर शुक्ल ने विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग एवं आगत प्रतिनिधियों को धन्यवाद दिया।

गोष्ठी के अन्त में उपकुलपति महोदय एवं आमन्त्रित अतिथियों के साथ सभी प्रतिनिधियों ने जलपान के आयोजन में भाग लिया।
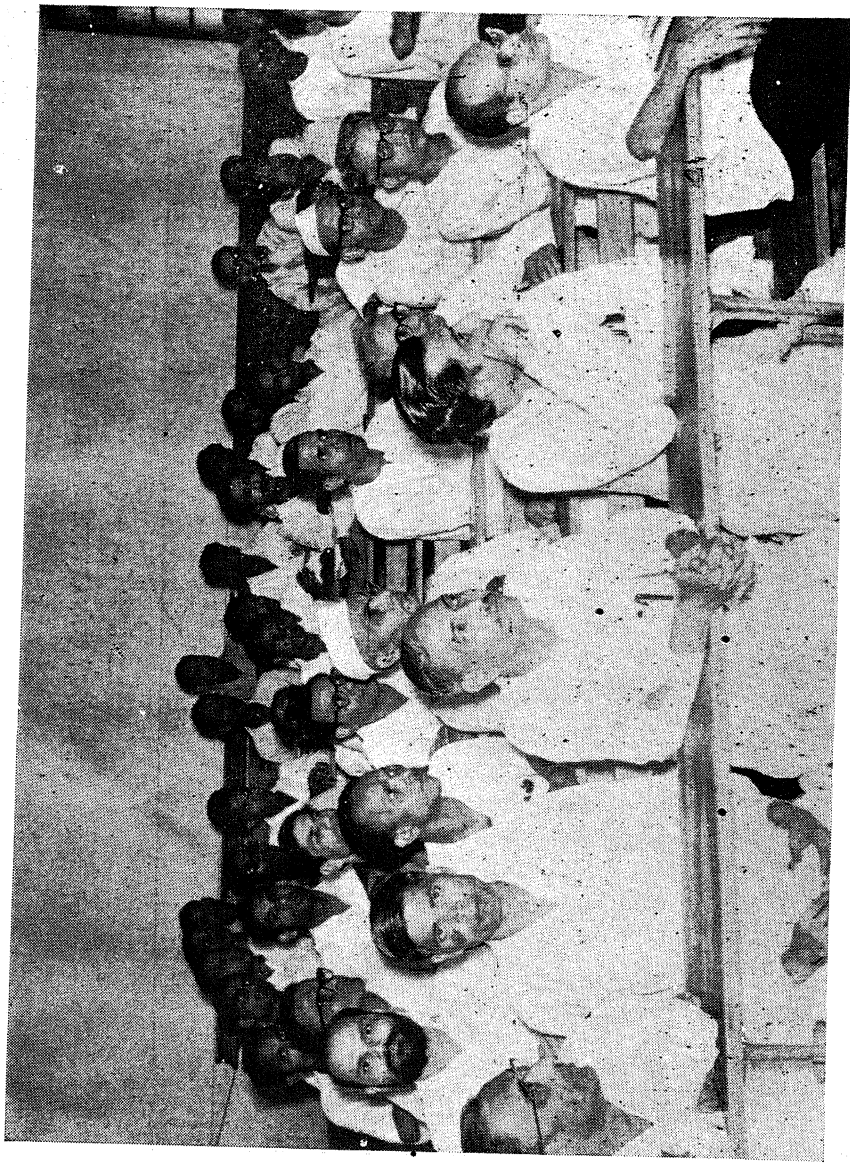
गोष्ठी चित्र--१

बाँये से दाँये--डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, डॉ० विजयपालसिंह, डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव, डॉ० अम्बाशंकर नागर, डॉ० श्रीकृष्णलाल डॉ० रामनिरंजन पाण्डेय, डॉ० कमलाकान्त पाठक, डॉ० बच्चन सिंह तथा अन्य प्रतिनिधि

डाक्टर रामकुमार वर्मा ने विषय का प्रवर्तन करते हुए कहा—हिन्दी साहित्य का इतिहास अपूर्ण है, क्योंकि पूरे देश में बिखरी हुई सामग्री की पूरी खोज नहीं हो सकी है।

आज का विषय शोध नहीं, शोध की समस्याएँ है। प्रयाग विश्वविद्यालय में पिछले बत्तीस वर्षों से शोध-कार्य होता आ रहा है। शोध-कार्य किसी विश्वविद्यालय में कम और किसी में अधिक हो रहा है। किन्तु सक्रियता से अधिक शोध के धरातल का महत्व है। इसलिए शोध के स्तर के गिरने की अपेक्षा शोध की समस्याओं पर विचार करना अधिक आवश्यक है।

इन समस्याओं की चार कोटियाँ हैं: (१) विश्वविद्यालय सम्बन्धी, (२) पाठ्यक्रम सम्बन्धी, (३) पुस्तकालय सम्बन्धी और (४) विषय तथा निर्देशक सम्बन्धी।

(१) बहुत से विश्वविद्यालय हिन्दी क्षेत्रीय हैं और बहुत से अहिन्दी क्षेत्रीय। फलत: शोध के दृष्टिकोण में भी अन्तर है। इस अन्तर के साथ-साथ हिन्दी के प्रति आज भी अनेक स्थानों पर स्वस्थ दृष्टिकोण नहीं है। परिणामत: अधिकारियों द्वारा जैसी सुविधा और सहायता हिन्दी शोध के लिए प्राप्त होनी चाहिए, वैसी प्राप्त नहीं हो रही है। हिन्दी प्राध्यापकों को सुविधा प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिए। इसके लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की संयोजन-समिति से सहायता प्राप्त करनी चाहिए।

आज शोध-विद्यार्थियों की आर्थिक स्थिति दयनीय है। इसके लिए छात्र-वृत्तियों का समुचित प्रबन्ध आवश्यक है। इससे शोध-कार्य का स्तर नीचा हो रहा है। इसी कारण पाण्डुलिपियों का क्रय करके संपादन अथवा संग्रह का कार्य नहीं हो पा रहा है।

मेरी दृष्टि में हिन्दीतर क्षेत्रों के विश्वविद्यालयों में साहित्य की अपेक्षा भाषा सम्बन्धी विषयों पर शोध अथवा क्षेत्र विशेष की भाषा और साहित्य से हिन्दी भाषा और साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन अधिक लाभप्रद है।

(२) शोध का विद्यार्थी शोध के रीति-विधान से अपरिचित होता है। न तो वह अपनी रुचि को महत्ता दे पाता है और न सामग्री के चयन के विषय में कोई विधान जानता है। दिल्ली विश्वविद्यालय ने इसीलिए पूर्व पी-एच० डी० के कोर्स की व्यवस्था की है। कहीं-कहीं एम० ए० उत्तरार्द्ध में निबन्ध प्रश्नपत्र के विकल्प में विद्यार्थी शोध-प्रबन्ध ले लेते हैं और एम० ए० के पाठ्यक्रम के साथ शोध के रीति-विधान से किसी प्रकार परिचित हो जाते हैं। निबन्ध का प्रश्न पत्र सुरक्षित रखते हुए विशेष विषय के अन्यान्य विकल्पों में एक विकल्प शोध-रीति-विधान का भी होना चाहिए।

(३) पुस्तकालय में ऐसे कर्मचारी होने चाहिए, जो शोध-विद्यार्थी का विषय समझ कर तत्सम्बन्धी समस्त सामग्री का विवरण दे सकें; उन्हें अलग-अलग अनुभागों (सेक्शन्स)

में बँटी हुई पुस्तकों और निर्देश-ग्रन्थों की सूची दे सकें और शोध-छात्रों की सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची बनवा सकें। पत्रिकाओं में प्रकाशित विषयवार सूची भी होनी चाहिए।

(४) विषय की समस्या हम अन्तर्विश्वविद्यालय के सन्दर्भ में भी सोच सकते हैं। इसके लिए आवश्यक है कि विभागाध्यक्षों की एक समिति हो, जिसकी एक बैठक सत्रान्त में हो। वर्ष भर की शोध-रिपोर्ट प्रत्येक विभाग द्वारा प्रस्तुत हो, और उपलब्धियों पर एक सम्मिलित परिपत्र प्रकाशित किया जाय।

शोध-छात्रों के लिए उपयोगी तथा आवश्यक है कि वे पिटे हुए विषय न लें; न ही उनका विषय आसंदिक (Armchair Subject) हो।

प्रायः निदेशक शोध-विषय से पूर्ण परिचित नहीं होते। उनके पास समय की भी पर्याप्त कमी होती है। वस्तुतः निदेशक को विशेषज्ञ होना चाहिए।

विचार-विनिमय

अनन्तर **डॉ० श्रीकृष्ण लाल** ने अपने विचार व्यक्त किये——शोध-प्रबन्ध की परम्परा काशी विश्वविद्यालय से चली। विद्यार्थियों को पहले अनिवार्य रूप से शोध-प्रबन्ध लेखन की सुविधा दी जाती थी। शोध-प्रबन्ध पहले एम० ए० में अनिवार्य था। बाद में उसे वैकल्पिक कर दिया गया। प्रायः विद्यार्थी अंकों पर अधिक ध्यान देते हैं अतः चुने हुए विद्यार्थियों की समस्या खड़ी हुई। चयन का मापदण्ड अंक हो नहीं सकते।

एक कठिनाई संख्या-वृद्धि के कारण उत्पन्न हो गयी है कि बहुत से विषयों से सम्बन्धित प्रबन्ध एक अध्यापक नहीं देख पाता। और आज के शोध-विद्यार्थी में शोध के प्रति वस्तुतः रुचि भी नहीं है। यदि अध्यापक के पास चार-छः विद्यार्थी हों, तो कोई कठिनाई न हो। शिक्षण-कार्य से किंचित् अवकाश मिलने पर ही निर्देशक शोध-छात्रों का उचित निर्देशन कर सकेगा। वस्तुतः कमेटियों में निर्देशकों का आधा समय चला जाता है। निर्देशक के पास बिना पर्याप्त समय के शोध का स्तर ऊँचा नहीं उठ सकता। इसके लिए या तो विद्यार्थियों की संख्या कम की जा सकती है या अध्यापकों की संख्या बढ़ायी जा सकती है।

शोध-विद्यार्थी को जितना आर्थिक संकट है, उससे कम संकट पुस्तकालयों में प्राप्त सामग्री का नहीं है। दोनों में सुधार अपेक्षित है।

डॉ० रामसिंह तोमर की दृष्टि में——वस्तुतः शोध-कार्य के निर्देशन के सन्दर्भ-में शोध सहायक (Research assistants) रखने की नितान्त आवश्यकता है।

प्रत्येक विश्वविद्यालय के लिए यह असम्भव अवश्य है, तो भी सभी विषयों के लिए पुस्तकालय बनाये जाने चाहिए। यदि ऐसा सम्भव न हो, तो पृथक्-पृथक् विशेष धारा से सम्बन्धित पुस्तकालय की योजना बन सकती है। साहित्य के अतिरिक्त उस काल की कलात्मक वस्तुओं का संग्रह भी हो, तो अच्छा है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ के रूप में हिन्दी की बोलियों का एक तुलनात्मक शब्द-कोश इस सन्दर्भ में नितान्त आवश्यक है।

डॉ० गोपीनाथ तिवारी के विचार से आजकल ऐसे-ऐसे विषयों से सम्बन्धित शोध-प्रबन्ध देखने में आ रहे हैं, जिनसे हिन्दी साहित्य में विशेष योगदान होता दिखायी नहीं देता। छात्राएँ परिस्थितिवश बाहर न जा सकने के कारण हो रहे शोध-विषय या हो चुके शोध-विषय लेती हैं। कभी-कभी छात्रों को भी अनचाहे विषय देने पड़ते हैं। कभी-कभी छात्र और निर्देशक की दूरी ही शोध-प्रबन्ध के स्तर को गिरा देती है। समय की इतनी कठिनाई है कि बहुत से शोध-प्रबन्ध बिना देखे ही चले जाते हैं। निर्देशक के पास भी समय का अभाव है। फिर शोध-छात्रों की योग्यता का कोई मापदण्ड नहीं है। वस्तुत: शोध-छात्र और निर्देशक का चुनाव—दोनों से ही स्तर ऊँचा हो सकता है। शोध के क्षेत्र में प्रवेश पर अब कुछ अंकुश लगाना चाहिए। शोध आरम्भ करने से पूर्व छः महीने का पाठ्यक्रम होना चाहिए, जिससे शोध-छात्र शोध के रीति-विधान से परिचित हो सकें।

प्रो० एस० सी० देव ने पाश्चात्य देशों के शोध-कार्यों का हवाला देते हुए जर्मनी के एक विश्वविद्यालय का उल्लेख किया, जो केवल शोध-प्रबन्ध लिखवाता है और उसी की उपाधि भी देता है। अमेरिकन यूनिवर्सिटी ने यह नियम बना लिया था कि जो अध्यापक पढ़ाने आयेगा, उसको दो वर्ष तक जर्मनी के उस विश्वविद्यालय में रहना पड़ेगा, जहाँ सेमिनार की योजना होती थी। यह योजना बाद में बनायी गयी थी और उस सेमिनार में एक विषय का चुनाव करके कार्य करना होता था।

हिन्दी और अन्य विषयों में भी कच्चे शोध-प्रबन्ध आ रहे हैं। हिन्दी के शोध-प्रबन्ध शीघ्र प्रकाश में आ जाते हैं, जब कि अन्य विषयों के ऐसे शोध-प्रबन्ध प्रकाश में कम आते हैं।

उन्होंने खेदपूर्वक आगे कहा—शोध-प्रबन्ध भारी-भरकम क्यों बना दिये जाते हैं? योरप में भी ऐसा होता है लेकिन वहाँ दोनों पद्धतियाँ मिलती हैं। उचित यह है कि अध्ययन करके, समस्त सामग्री का उपयोग करके बिना उद्धरण दिये अपने मौलिक विचार शोध-प्रबन्ध में व्यक्त किया जाय।

फ्रांस में एक शिक्षण-संस्था है, जहाँ एक विषय का विद्वान् अपने विषय में शोध-कार्य करने के अतिरिक्त उस विषय से सर्वथा भिन्न विषय में भी शोध-कार्य करता है तब उसे उपाधि दी जाती है। आज के युग में वैशिष्ट्य का यह दुहरा बोध अत्यन्त आवश्यक एवं उपादेय है।

डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव के दृष्टिकोण से कुछ विद्यार्थी सामग्री का संकलन तो कर सकते हैं, लेकिन उसके उपयोग की क्षमता उनमें नहीं होती। वे श्रम करने में समर्थ होते हैं किन्तु शोध-प्रबन्ध लिखने में असमर्थ होते हैं। अतएव लिखित और मौखिक रूप से शोध के विद्यार्थी की परीक्षा अत्यावश्यक है, जिससे उसके मानसिक धरातल का ठीक-ठीक ज्ञान हो सके। इसके लिए छोटे-छोटे शोध-पत्र लिखवाये जा सकते हैं। इस व्यावहारिक पद्धति के आश्रय से शोध के लिए ऐसे विद्यार्थियों के चयन में भी सुविधा हो सकती है, जो वस्तुत: शोध की मौलिक क्षमता रखते हैं। जो पुराना और निश्चित तरीक़ा अंकों के आधार पर शोध-कार्य प्रदान करने का है, उससे यह तरीक़ा अधिक सार्थक और उपयोगी है।

शोध-कार्य के लिए एक तो वे विद्यार्थी आते हैं, जिनके पास कोई काम नहीं होता।

इनका ज्ञान और शक्ति कई मानों में अधकचरी होती है। ऐसे ही विद्यार्थियों के बीच निर्देशक की शक्ति बिखरी रहती है।

यह सत्य है कि ज्ञान के क्षेत्र में निर्देशक विधाता नहीं होता; सर्वज्ञानी नहीं होता; किन्तु उसे 'जानने' की आवश्यकता को महसूस करना चाहिए। अक्सर एक विशिष्ट लेख या विशिष्ट विषय के अध्यापन के आधार पर उक्त विषय का निर्देशन सौंप दिया जाता है। यह अनुचित है और विषय की विशिष्ट जानकारी के अभाव में इसीलिए शोध-स्तर के निम्नगामी बनाने के सबसे बड़े दोषी निर्देशक हैं। अक्सर निर्देशक फुटकर समय में शोध-विद्यार्थी की ओर प्रवृत्त होता है। अतः निर्देशक जिस विषय का विशेषज्ञ हो, उसी का निर्देशन करे। जब शोधकों की संख्या कम थी, तब मूल ग्रन्थों का अनुशीलन अधिक होता था। पर अब आलोचनात्मक ग्रन्थों से ही काम चला लिया जाता है। इस तरह के 'शार्ट-कट' से भी शोध का स्तर गिरा है।

विभिन्न विषयों के विशेषज्ञ विभिन्न विश्वविद्यालयों में हैं। अतः दूसरे विश्वविद्यालयों से प्राध्यापक निर्देशन करें और वहाँ जाकर करें, तो अधिक लाभप्रद स्थिति हो सकती है। इसके लिए प्रबन्ध भी होना चाहिए।

डॉक्टर अम्बाशंकर नागर के अनुसार आज शोध-ग्रन्थों का आकार बढ़ता जा रहा है। पर उपलब्धि अनुदिन कम होती जा रही है। इसलिए आज शोध-प्रविधि की पूरी शिक्षा अनुसन्धित्सु को देनी नितान्त आवश्यक हो गयी है। बिना इसके प्रवेश नहीं मिलना चाहिए। इस प्रकार की रोक द्वारा शोध की अनेक समस्याएँ स्वतः हल हो जायँगी। ऐसी परीक्षा से पूर्व रूप-रेखा भी प्रस्तुत की जानी चाहिए।

जिस विश्वविद्यालय में जिस विषय का विशेषज्ञ हो, उसी विश्वविद्यालय में उसी विशेषज्ञ के निर्देशन में उक्त विषय पर शोध-कार्य होना चाहिए।

क्षेत्रीय अनुसन्धान के सम्बन्ध में कई पुस्तकों की, निजी अनुभव के आधार पर की गयी खोजों का हवाला देते हुए उन्होंने तुलनात्मक अध्ययन तथा क्षेत्रीय अनुसन्धान पर बल दिया। इस प्रकार के अध्ययन के लिए उन्होंने अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में उक्त कार्य करने-कराने पर ज़ोर दिया।

शोध-प्रबन्धों की निम्नलिखित स्थिति पर रोक लगाने के लिए उन्होंने थीसिस के 'सबमिट' करने पर अंकुश लगाने का भी सुझाव दिया। यदि निर्देशक तथा परीक्षक को उपाधि देने की विवशता का बोध ही हो, तो कम से कम उसके प्रकाशन की इजाज़त न दी जाय, जिससे गिरते हुए स्तर में कमी आ सके। निर्देशक को कम से कम शिक्षा की सुविधा देकर अधिक से अधिक निर्देशन में तत्पर रहने के लिए मुक्त छोड़ दिया जाय।

डॉ० रामनिरंजन पांडेय ने अपने निर्देशन सम्बन्धी विवरणों का ज़िक्र किया, जिसमें अनेक कठिनाइयाँ (जैसे पोथियों की इंग्लैण्ड स्थित फ़िल्में मँगाने में पड़नेवाली झंझट आदि है।) आयीं, जिसका अनुसन्धित्सु की भलाई के लिए साहस के साथ सामना करने से ही कुछ बन सकता है। उन्होंने दक्षिण के—विशेषकर उस्मानिया के—अनुसन्धित्सुओं के विषय में कहा कि वे संकल्प लेकर कार्य करने आते हैं। किन्तु तो भी अनुसन्धाता को बहुत अधिक सतर्क रहने की

आवश्यकता है क्योंकि लाख संकल्प के पश्चात् भी उसका सामग्री-संकलन बिना सतर्कता के दोषपूर्ण हो सकता है।

साहित्य की अपेक्षा भाषा सम्बन्धी अनुसन्धानों के आधिक्य पर उन्होंने ज़ोर दिया। यद्यपि भाषा-विज्ञान के अलग-अलग विभागों में उनके विषयों पर शोध-कार्य होना उनकी दृष्टि में अधिक श्रेयस्कर है।

डॉ० भालचन्द्र तैलंग ने आंचलिक विषयों पर छोटे-छोटे कार्य-शिविरों के रूप में पंच-वर्षीय योजनाओं के स्तर पर कार्य करने का सुझाव दिया। ये कार्य विश्वविद्यालय के ही कार्य माने जायँ और उक्त कार्यकर्ता को शोध की उपाधि दी जाय। ऐसा न होने के कारण लोग अक्सर कहते पाये जाते हैं कि हिन्दी वालों ने आंचलिक बोलियों पर अत्याचार किया है।

शोध-कार्यों के लिए एक वार्षिकी प्रकाशित की जाय, जिसमें सभी शोध विद्यार्थियों के विषय का पूर्ण परिचय हो। उन्होंने निबन्ध का विरोध करते हुए प्रबन्ध-लेखन पर बल दिया।

डॉ० जगन्नाथ तिवारी की दृष्टि से शोध के मुख्य अंग परीक्षक ही स्तर को सबसे अधिक गिराने वाले हैं। इसका मुख्य कारण है कि परीक्षकों की नियुक्ति के समय पर्याप्त पक्षपात बरता जाता है। कुछ परीक्षक तो ऐसी परीक्षाओं के मठाधीश हैं और मुँहदेखी और मनमानी करते हैं। अतः निष्पक्ष परीक्षकों की नियुक्ति आवश्यक है।

श्री ए० चन्द्रहासन ने शोध के, नयी दिशाओं में अग्रसर होने पर बल दिया और विज्ञान विषय लेकर स्वतन्त्र रूप से हिन्दी में कार्य करने वाले को पी-एच० डी० डिग्री देने पर ज़ोर दिया। इससे विज्ञान की अच्छी और महत्वपूर्ण पुस्तकें भी हो जायँगी और एक कमी दूर हो जायगी।

निम्नस्तरीय शोध-प्रबन्ध उनके विचार से न प्रकाशित किये जायँ, क्योंकि इससे परीक्षक निर्देशक तथा विश्वविद्यालय सभी की प्रतिष्ठा कम होती है।

डॉ० कमलाकान्त पाठक के ख़याल में विस्तार के साथ-साथ शोध की समस्या बढ़ी है। विस्तार में भी ऊँचाई की अपेक्षा है। आर्थिक मूल्य जुड़ जाने से वस्तु का स्तर गिर जाता है। यदि सांस्कृतिक मूल्य को आर्थिक मूल्य से अलग किया जा सके, तो स्तर गिरने की स्थिति न होगी।

आज शोध-प्रबन्ध की उपस्थिति के समय उसकी मौलिकता और नव्यता विचारणीय है। क्योंकि प्रबन्ध आकर-ग्रन्थों की सूची नहीं है; न ही उसका महाकार ही कोई महत्व रखता है। चूंकि साहित्य के अन्तर्गत शोध एवं समीक्षा दोनों हैं, अतः इन दोनों में अन्तर करना भी आवश्यक है।

श्री गुरुप्रसाद टंडन ने शोध-कार्यों के गिरते हुए स्तर, अमौलिकता तथा विवेकहीनता के उदाहरण ब्रजभाषा से सम्बन्धित किसी शोध-प्रबन्ध से पेश किये और कहा—आज मेधावान विद्यार्थियों के चुनने का प्रश्न है। शोध आलोचना नहीं है। इसलिए मूल-ग्रन्थों के अध्ययन के बाद सम्पूर्ण प्रविधि का पूर्ण उपयोग करते हुए शोध करणीय है।

एक विश्वविद्यालय में एक विद्यार्थी जिस विषय पर शोध कर रहा है, उसी विषय पर दूसरे विश्वविद्यालय में दूसरा विद्यार्थी शोध कर रहा है। यह पुनरावृत्ति कभी-कभी थोड़े अन्तर

के साथ एक ही विश्वविद्यालय में देखी गयी है। यह स्थिति नितान्त चिन्ताजनक है। यहाँ तक कि जीवित साहित्यकार पर भी शोध-कार्य हो रहे हैं, जो उचित नहीं प्रतीत होता।

प्रवर्तक डॉ० वर्मा ने इसके बाद समग्र भाषण-माला का सार प्रस्तुत किया :—

१. निर्देशक को शिक्षण-कार्य से छूट मिलनी चाहिए, क्योंकि अध्यापन का भार अधिक होने से उसका प्रभाव सभी पक्षों पर पड़ता है। अतः अधिकारियों से उसके लिए निवेदन करना चाहिए।

२. पुस्तक-सूची की ओर भी अधिकारियों का ध्यान आकृष्ट करना चाहिए। इसके लिए उचित होगा कि अध्यापक और अध्यक्ष स्वयं अपने-अपने विषयों की पुस्तक-सूची पुस्तकालय में जाकर बनायें।

३. यह भी आवश्यक है कि निर्देशक के चुनाव और शोध-छात्र के प्रवेश पर अंकुश लगाया जाय।

४. शोध से पूर्व उसके रीति-विधान की जानकारी के लिए छः महीने तक शोधार्थी अध्ययन करे अथवा एम० ए० में उसका एक वैकल्पिक विषय हो—शोध का रीति-विधान। इस परीक्षा से पूर्व रूप रेखा प्रस्तुत करने की डॉ० नागर की बात भी विचारणीय है, किन्तु इसकी व्यावहारिकता अधिक विचारणीय है।

५. भालचन्द्र तैलंग का शोध-कार्य-शिविर (Research-Project) का सुझाव भी महत्वपूर्ण है।

६. साथ ही वार्षिकी का प्रकाशन आवश्यक है और उसमें प्रति वर्ष का सभी विश्व-विद्यालयों का शोध सम्बन्धी सभी प्रकार का विवरण प्रकाशित होना चाहिए।

७. आंचलिक बोलियों में शोध होना चाहिए।

८. श्री गुरुप्रसाद टण्डन ने जो आवृत्ति का प्रश्न उठाया है, वह महत्वपूर्ण है और नितान्त अनुपेक्षणीय है।

९. डॉ० तोमर ने शोध-सहायक की बात कही, वह उपयोगी एवं सार्थक है।

१०. श्री जगन्नाथ तिवारी ने जो परीक्षकों के निष्पक्ष चुनाव या निष्पक्ष परीक्षकों के चयन की धारणा प्रस्तुत की, वह भी आवश्यक है।

११. क्षेत्रीय भाषाओं में जो अनुसन्धान हो रहे हैं, वे कवियों के आधार पर न होकर प्रवृत्तियों के आधार पर हों, तो स्तर गिरने की गुंजाइश न रहेगी।

१२. वर्ष में यदि एक बार भी सब लोग मिल सकें, तो अनेक समस्याओं का हल हो सकेगा। इसके लिए समिति की स्थापना उपयुक्त है। विद्यार्थियों की आर्थिक स्थिति के हल की नितान्त आवश्यकता है। आयोग के पास इसके लिए एक प्रस्ताव भेजना उचित है, जिससे वे अधिक से अधिक छात्र-वृत्ति दें।

अध्यक्ष डॉ० **केशरीनारायण शुक्ल** ने अन्त में अपने भाषण में कहा :—

स्वर्गीय बीरबल साहनी के शब्दों में 'इस चीज को आप ध्यान में रखिए कि यह पी-एच० डी० की उपाधि आपके शोध-कार्य का आरम्भ है, अन्त नहीं।'

आज शोध की कई कोटियाँ हैं : कुछ लोग मात्र उपाधि के लिए यह करते हैं; कुछ ही लोग हैं, जो अध्ययन के लिए यह कार्य सर पर लेते हैं।

आर्थिक समस्याएँ, जिनका सम्बन्ध स्तर की गिरावट, नौकरी का लोभ, शोधार्थी की ग़रीबी आदि से है, इस गोष्ठी में नहीं सुलझायी जा सकतीं। यह काम समाज और सरकार का है।

परीक्षक निष्पक्ष बनें; उन्हें चुना जाय, यह कैसे सम्भव है, जब हम ही आप सब कुछ हैं। यदि स्वयं हम-आप निष्पक्ष नहीं हैं, तो चुनेंगे कैसे और कौन निष्पक्ष होगा! **(तालियाँ)**

आज शोध-विषयों की सीमा नहीं है। लेकिन स्तर पर ध्यान अधिक ज़रूरी हो गया है।

●

गोष्ठी

दिनांक : ७.१०.६४
समय : सायं ३ से ६ बजे

विषय : गद्य साहित्य

प्रवर्तक

- डॉ० श्रीकृष्णलाल वाराणसी

अध्यक्ष

- डॉ० देवराज उपाध्याय उदयपुर

वक्ता

- डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव भागलपुर
- डॉ० अम्बाशंकर नागर अहमदाबाद
- डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव लखनऊ
- डॉ० गुरुप्रसाद टण्डन उज्जैन
- डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय प्रयाग
- डॉ० गोपीनाथ तिवारी गोरखपुर
- डॉ० कमलाकान्त पाठक नागपुर
- डॉ० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' जोधपुर
- प्रो० ए० चन्द्रहासन केरल
- डॉ० रामनिरंजन पाण्डेय हैदराबाद
- डॉ० जगन्नाथ तिवारी जम्मू और कश्मीर

प्रवर्तक डा० **श्रीकृष्णलाल** ने गद्य का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा कि हम केवल खड़ी बोली के गद्य साहित्य का अध्ययन करते हैं। आज हम जिसे गद्य कहते हैं, वह नीरस नहीं है, तो रसात्मक भी नहीं है।

गद्य की विविध विधाएँ हैं। पाठ्यक्रम में गद्य-साहित्य के विविध रूप ही रखे जाते हैं और नाटक, आलोचना, कहानी तथा निबन्ध रूपों में विश्वविद्यालयों में प्रायः गद्य के चौथे रूप निबन्ध को ही प्रश्रय मिलता है। पूर्वोक्त तीन रूपों की उपेक्षा हो जाती है।

नाटक अपने में स्वतन्त्र विधा है। वह न गद्य है, न पद्य। क्या हम गद्य के विविध रूपों में नाटक को रख सकते हैं?

उपन्यास एक विस्तृत साहित्य है। पर पाठ्यक्रम में उसको भी उचित स्थान नहीं। शिवाजी महिला विश्वविद्यालय, पूना विश्वविद्यालय और मराठवाड़ा विश्वविद्यालय में गद्य के दो प्रश्नपत्र हैं। पूरे एक प्रश्नपत्र में प्राचीन गद्य के रूप में दक्खिनी को स्थान दिया गया है। परिणामतः काव्य के लिए प्रश्नपत्र-संख्या कम है।

हमारा गद्य-साहित्य लगभग दो सौ वर्षों का है। इसलिए उसे पाठ्यक्रम में कुछ विशेष स्थान देना चाहिए। इस सम्बन्ध में मेरे कुछ सुझाव हैं:

(१) भाषा-विज्ञान अनिवार्य प्रश्नपत्र है। उसके अन्तर्गत राजस्थानी, ब्रज, मैथिली, प्राचीन खड़ी बोली आदि के भाषाशास्त्रीय अध्ययन के लिए ५० अंक रख लें, तो अध्ययन में सुविधा होगी।

(२) यदि नाटक और रंगमंच के अध्ययन के लिए अलग स्थान रखें, तो इसके साथ न्याय होगा। इस सम्बन्ध में यह भी हो सकता है कि निबन्ध के प्रश्नपत्र में ५० अंक रंगमंच और नाटक के लिए रख लिये जायँ।

(३) सभी विश्वविद्यालयों में विकल्पों में कुछ विशेष प्रश्नपत्र होते हैं। विशेष प्रश्न-पत्र में गद्य-साहित्य को अधिक महत्व दिया जा सकता है। यह ध्यातव्य रहे कि चण्डीगढ़ में कथा-साहित्य विशेष प्रश्नपत्र के रूप में है।

(४) गद्य के प्रश्नपत्र में पुस्तकें बहुत अधिक हो जाती हैं। इतने बड़े साहित्य के होने पर चयन का प्रश्न भी उठता है। ग्रन्थ के ऐतिहासिक महत्व पर भी ध्यान देना पड़ता है। किसी युग का प्रतिनिधित्व करनेवाली पुस्तकों को रखना पड़ता है। फिर पुस्तकों का मापदण्ड क्या है? नाटक या उपन्यास की कलात्मकता देखें, सामाजिक पक्ष या सांस्कृतिक पक्ष देखें? जैसे 'सेवा-सदन' या 'शेखर : एक जीवनी' का ऐतिहासिक महत्व है।

निबन्धों के विषय में भी ऐसे ही सैद्धान्तिक प्रश्न उठते हैं। इस प्रकार इनके चुनाव में बड़ी सावधानी की आवश्यकता है।

(५) गद्य के अवतरण जैसी व्याख्या के लिए विद्यार्थियों को दिए जाते हैं, उससे भी परीक्षार्थियों को बड़ी कठिनाई होती है। मेरा अनौपचारिक सुझाव है कि इस तरह की व्याख्या प्रश्नपत्र से हटा दी जाय, तो विद्यार्थियों और परीक्षकों—दोनों का लाभ होगा। व्याख्या के लिए ४० अंक रख दिये जाते हैं। यदि कम अंक रखे जायँ, तो आलोचनात्मक प्रश्नों के लिए अधिक स्थान मिल जायगा।

डा० **वीरेन्द्र श्रीवास्तव** के शब्दों में गद्य के प्रश्नपत्र में खड़ी बोली गद्य जहाँ से प्रारम्भ होता है, वहीं से गद्य को महत्व देना चाहिए।

इतिहास के प्रश्नपत्र में गद्य के ऐतिहासिक पक्ष का अध्ययन किया जाना उचित ही है।

डा० **अम्बाशंकर नागर** की दृष्टि से पश्चिमी विश्वविद्यालयों में हिन्दी के पाँच प्रश्नपत्र हैं। अतः गद्य को विशेष स्थान देना कठिन है। अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के विश्वविद्यालयों में हिन्दी के प्रश्नपत्र बढ़ाने की सुविधा मिलनी चाहिए। गुजरात विश्वविद्यालय में हिन्दी में गद्य का आधा प्रश्नपत्र ही होता है, जहाँ हिन्दी के केवल छः प्रश्नपत्र हैं। व्याख्या का अंश पिछले वर्ष से आरम्भ हुआ। पर इस पर कई प्रश्न उठे। व्याख्या दो तरह की हो सकती है। एक सन्दर्भ सहित, दूसरी केवल व्याख्या। व्याख्या को इन दो भागों में बाँटा जा सकता है।

डा० **देवकीनन्दन श्रीवास्तव** की धारणा के अनुसार अध्यापन की दृष्टि से भी कुछ प्रश्नपत्र रहते हैं। व्याख्येय अंशों में जो समय देना पड़ता है, उससे अध्यापकों को कठिनाई पड़ती है। और काव्य में शास्त्रीय सिद्धान्तों की व्याख्या अधिक हो पाती है।

गद्य-अवतरणों की व्याख्या इस दृष्टि से अपेक्षित है। इसके माध्यम से विद्यार्थियों का ज्ञान गद्य की विधाओं के सम्बन्ध में कुछ हो सकता है। हम यह भी जान सकते हैं कि वह किसी विशेष अंश से क्यों प्रभावित है। सरल से सरल वाक्यांश व्याख्या के लिए दिया जा सकता है। एक दृष्टिकोण यह भी हो सकता है कि विद्यार्थियों को व्याख्या के आने-न-आने के सम्बन्ध में न बताया जाय। परीक्षक चाहे पूछे, कम पूछे या न पूछे। गद्य के अवतरणों को व्याख्या का नाम न देकर आलोचनात्मक अध्ययन और गद्य-शैली के सौन्दर्य की संज्ञा दी जा सकती है।

गद्य-साहित्य को एक से अधिक प्रश्नपत्र नहीं दिया जा सकता।

डॉ० **गुरुप्रसाद टण्डन** ने सुझाव दिया कि विशेष कवि के अध्ययन के अन्तर्गत नाटक को भी स्थान देना उत्तम होगा। साहित्य की विशालता में यह सम्भव नहीं कि गद्य के लिए दो प्रश्नपत्र रखे जायँ।

हमारा यह प्रस्ताव है कि हिन्दी साहित्य का इतिहास अलग न रख कर प्रत्येक प्रश्नपत्र के साथ उसे रख लें। जैसे प्राचीन हिन्दी साहित्य और उसका इतिहास, आधुनिक काव्य तथा उसका इतिहास; गद्य साहित्य एवं उसका इतिहास आदि।

व्याख्या का अंश गद्य के प्रश्नपत्र में हमें अवश्य रखना चाहिए। अंक चाहें तो कम कर सकते हैं। निबन्ध के प्रश्नपत्र में एक निबन्ध साहित्य के विषय से और एक भाषा सम्बन्धी प्रश्नों को लेकर होता है। पाठ्यपुस्तकों को छोड़ने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। इसलिए व्याख्या के लिए अंक कम कर देने पर विद्यार्थी पाठ्यपुस्तक बिल्कुल ही छोड़ देगा।

डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने कहा : आधुनिक समस्याओं का समाधान गद्य के माध्यम से ही हो सकता है। काव्य अब इस रूप में सक्षम नहीं रह गया है। काव्य की तुलना में गद्य का विस्तार कम है। यह स्थिति हिन्दी में ही नहीं; अन्य साहित्यों में भी है। पठनीय गद्य-साहित्य लगभग १०० वर्षों का है।

मेरे विचार से उपन्यास और कहानी से व्याख्या नहीं पूछनी चाहिए। क्योंकि कहानी कला की दृष्टि से पढ़ी जाती है, व्याख्या की दृष्टि से नहीं। कहानी-उपन्यास से व्याख्या पूछना विद्यार्थी के साथ अन्याय है। मेरा मत है कि उपन्यास-कहानी गद्य के प्रश्नपत्र में रहें अवश्य, पर उनमें से व्याख्या न पूछी जाय। केवल निबन्ध से व्याख्या पूछी जानी चाहिए।

गद्य के प्राचीन रूपों ब्रज, राजस्थानी आदि को पाठ्यक्रम में निर्धारित करना व्यर्थ है, क्योंकि उनमें साहित्यिक सौन्दर्य का अभाव है। उनसे विद्यार्थियों की बुद्धि की परीक्षा सम्भव नहीं। इसलिए उसे इतिहास में पढ़ाया जा सकता है।

हिन्दी के प्रतिमानीकृत (Standard) पाठ्य-क्रम में क्षेत्रीय भाषाओं के गद्य को स्थान नहीं देना चाहिए। इससे अन्य भाषा-भाषी विद्यार्थियों को कठिनाई होगी।

किस विधा को स्थान मिलना चाहिए, यह प्रश्न भी उठा करता है। इस दृष्टि से विविध पक्षों को स्थान मिलना चाहिए और खड़ी बोली गद्य के अर्वाचीन साहित्य तक को ग्रहण करना चाहिए।

व्याख्या के अंश तथा उसके लिए अंक कम नहीं होने चाहिए। किन्तु पाठ्यपुस्तकों को अधिक महत्व अवश्य देना चाहिए।

डा० गोपीनाथ तिवारी की राय में दृष्टि का विस्तार करना ही हमारा उद्देश्य होता है। इसी कसौटी को ध्यान में रख कर गद्य के प्रश्नपत्र को रखना चाहिए।

गद्य के प्रश्नपत्र में व्याख्या के लिए कठिनाई होती है। इसलिए व्याख्या के लिए बहुत अधिक अंक नहीं रखने चाहिए। पाठ्यपुस्तकों के अध्ययन के बिना सम्यक् आलोचना नहीं प्रस्तुत की जा सकती।

प्रस्तुत प्रश्नपत्र में प्रतिनिधित्व करनेवाली रचनाएँ ही रखी जा सकती हैं। आजकल निबन्धों को छोड़ने की बात कही जाती है, पर निबन्ध से ही लेखक की साहित्यिक अनुभूति का पता चलता है। अतः निबन्ध के स्थान पर नाटक या प्राचीन साहित्य को रखने के पक्ष में मैं नहीं।

उन्होंने डॉ० वार्ष्णेय के विचारों से सहमति व्यक्त करते हुए राजस्थानी, ब्रज आदि प्राचीन गद्य को गद्य के प्रश्नपत्र में स्थान न देने पर बल दिया। उनकी दृष्टि में प्राचीन गद्य का भाषा-विज्ञान के अन्तर्गत उसी दृष्टिकोण से अध्ययन होना चाहिए।

डॉ० कमलाकान्त पाठक ने बताया कि नागपुर में नाटक एक अलग प्रश्नपत्र है। वहाँ नाटक अथवा कथा-साहित्य अलग एक विकल्प है।

भाषा की सरलता अथवा कठिनता के आधार पर ही व्याख्या निर्धारित नहीं की जा सकती। व्याख्या के उपन्यास आदि के अंश भाषा की दृष्टि से आसान होकर भी चरित्र पर प्रकाश डालते हैं।

विद्यार्थी मूल ग्रन्थ पढ़े, इसके लिए आवश्यक है कि व्याख्यात्मक प्रश्न रहें। अंक कम किये जा सकते हैं।

डॉ० रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' के अभिमत से आज तक हिन्दी में अलंकृत गद्य का नितान्त अभाव है। आज का गद्य कलात्मक रूप में कला का बहिष्कार है। प्रसाद या लक्ष्मीनारायण मिश्र जैसे अच्छे गद्य लिखने वालों का आज अभाव है। इसलिए विचारणीय यह है कि वह एम० ए० के पाठ्यक्रम में रखने लायक है या नहीं ?

श्री ए० चन्द्रहासन ने कहा : हम चाहते हैं कि खड़ी बोली को अधिक महत्व दिया जाय। विद्यार्थियों को आधुनिक साहित्य से वंचित रखना उचित नहीं। क्योंकि इससे वे आधुनिक लेखकों और उनकी कृतियों से एकदम अपरिचित होंगे।

मैं इस पक्ष में हूँ कि व्याख्या पर प्रश्न पूछे जायँ, जिससे विद्यार्थी पाठ्य-ग्रन्थों से न बच सकें।

डॉ० रामनिरंजन पांडेय की दृष्टि में गद्य के प्रश्नपत्र में भी व्याख्या वाला अंश रहना चाहिए।

गद्य संवेदनात्मक होने पर सरल हो जाता है। विचारात्मक गद्य की व्याख्या कठिन होती है। नाटक को गद्य कहा जाय या पद्य ? वह श्रव्य और दृश्य दोनों है।

भाषा-विज्ञान का अलग विभाग खुलने पर भी भाषा-विज्ञान का प्रश्नपत्र नहीं हटाना चाहिए। क्योंकि हिन्दी के विद्यार्थी को उसका सामान्य ज्ञान होना आवश्यक है।

अन्त में **श्री जगन्नाथ तिवारी** ने व्यंग्य करते हुए कहा—इतिहास, आलोचना, भाषा-विज्ञान और निबन्ध के पर्चे को गद्य माना जाय या पद्य। मेरी दृष्टि में पूरे पाठ्यक्रम में पद्य ही कम है।

व्याख्या के आधार पर ही मैं तो परीक्षार्थी की योग्यता की जाँच करता हूँ। गद्य की व्याख्या अपेक्षाकृत पद्य से कहीं अधिक कठिन होती है क्योंकि विद्यार्थी को उसमें निहित विचार-धारा को स्पष्ट करना होता है।

सभापति डॉ० **देवराज उपाध्याय** ने वक्ताओं के मतों का विवरण प्रस्तुत करते हुए विषय का समापन किया।

●

३

गोष्ठी

दिनांक : ८-१०-६४

समय : प्रातः ९ से १२ बजे

विषय : प्राचीन तथा आदि कालीन साहित्य

प्रवर्तक

- डॉ० रामसिंह तोमर शान्तिनिकेतन

अध्यक्ष

- डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव भागलपुर

वक्ता

- डॉ० रामकुमार वर्मा प्रयाग
- डॉ० केशरीनारायण शुक्ल गोरखपुर
- डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव लखनऊ
- डॉ० जगन्नाथ तिवारी जम्मू और कश्मीर
- डॉ० राजनारायण मौर्य पूना
- डॉ० अम्बाशंकर नागर गुजरात
- श्री माताबदल जायसवाल प्रयाग
- डॉ० रघुवंश प्रयाग
- डॉ० हरिहरनाथ टंडन आगरा

डॉ० रामसिंह तोमर ने प्रवर्तन करते हुए कहा: मध्यदेश की भाषा ही केन्द्रीय भाषा रही है। उसी की प्रवृत्तियाँ मापदण्ड रही हैं।

इसी सन्दर्भ में उन्होंने यह भी बताया कि देश-काल के बदलते हुए आयामों में भी सभी भाषाओं की गतिविधियाँ एक रही हैं। इस बदलते हुए आयाम अथवा परम्परा के ज्ञान के लिए प्राचीन तथा आदिकालीन हिन्दी वाङ्मय का अध्ययन नितान्त आवश्यक है। डॉ० तोमर ने अपभ्रंश, ब्रज तथा अवधी के विषय में चर्चा करते हुए उक्त पूर्ववर्ती साहित्य की ऐतिहासिक महत्ता पर बल दिया। उन्होंने इसीलिए रासो-साहित्य के कतिपय अंशों को पारस्नातक कक्षाओं में रखने पर ज़ोर दिया और सभी विश्वविद्यालयों में उनके अध्ययन को उपयोगी बताया।

विचार-विनिमय में भाग लेते हुए डॉ० गुरुप्रसाद टंडन ने कहा: हिन्दी साहित्य के इतिहास के विकसित होने के साथ-साथ क्रमशः विविध प्रकार की साहित्यिक सामग्री राजस्थान, गुजरात आदि स्थानों में उपलब्ध होती गयीं। इन उपलब्धियों के फलस्वरूप हमें अपनी दृष्टि में परिवर्तन करना आवश्यक है।

राहुल सांकृत्यायन ने सं० ८०७ से हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ माना। श्यामसुंदरदास तथा रामचंद्र शुक्ल ने सं० १०५० वि० से माना। पर विद्यापति का समय प्रायः आदिकाल की समाप्ति पर था। इसीलिए प्रारम्भ की समस्या के साथ-साथ कवि विशेष को उक्त-उक्त काल में रख पाने की समस्या अभी तक जटिल बनी हुई है।

आदिकाल से सम्बद्ध बोलियों के साहित्य को निष्कासित नहीं किया जा सकता। परम्परा की दृष्टि से तद्युगीन रचनाओं को लेना ही होगा और साहित्य के स्तर पर ग्रहण करना होगा। इसी प्रकार चंद्रधर शर्मा गुलेरी द्वारा कही गयी 'पुरानी हिन्दी' की कुछ रचनाओं को पाठ्यक्रम में रखना चाहिए। छोटे दायरे में सीमित न होकर बोलियों के साहित्य को भी स्थान देना आवश्यक है।

हम देखते हैं कि दक्षिण के विद्यार्थी हिन्दी खड़ी बोली के साथ तो समन्वय कर पाने में समर्थ होते हैं, किन्तु अवधी आदि के साहित्य में कठिनाई का अनुभव करते हैं। अतः पाठ्यक्रम के निर्धारण के समय यह समस्या भी विचारणीय है।

डॉ० रामकुमार वर्मा की दृष्टि में दक्षिण भारत को लेकर यह प्रश्न थोड़ा उलझ गया है, अतः विशेष विचारणीय है। दक्षिण से आवाज उठी कि हमें महज़ खड़ी बोली का साहित्य चाहिए। यदि हम गहराई से विचार करें, तो इसकी जड़ें बहुत गहरे में मिलेंगी। भाषाओं को लेकर जब राजनीति नहीं बरती जाती थी, तब हमारे अतीत में सूर, मीरा, तुलसी, कबीर के पद उत्तर भारत से दक्षिण भारत तक बड़ी आसानी से पहुँच जाते थे। आज भी ये कवि दक्षिण वालों के लिए जाने-माने सुपरिचित हैं। तब क्यों यह आवाज़ उठायी जाती है?

आज का साहित्य पश्चिम के प्रभाव में सारी परम्परा से काट दिया गया है। किन्तु नवीन

साहित्य को सम्पूर्णतया उपादेय मान लेने पर भी क्या परम्परा को छोड़ा जा सकता है ? मैं समझता हूँ, ब्रज, अवधी आदि से सम्बन्ध छोड़ देने पर खड़ी बोली अधिक दिनों तक नहीं रह सकेगी।

सांस्कृतिक अभिव्यक्ति उन बोलियों में है, जो समकालीन होकर गूँजती रही हैं। अब तक ऐसी अन्य बोलियों को, जिनसे भाषा की कड़ियाँ बनती हैं, उचित स्थान नहीं दिया जायगा, हिन्दी की महान् परम्परा तब तक स्थायी नहीं होगी।

भावात्मकता एकता की दृष्टि से ब्रजभाषा गुजराती-मराठी के अधिक नजदीक है। यदि सांस्कृतिक दृष्टि से इस देश की निष्ठा को सुरक्षित रखना है और भावात्मक एकता को बनाये रखना है, तो एम० ए० के विद्यार्थियों को इस विशिष्ट परम्परा से परिचित कराने की अपेक्षा है। क्योंकि केवल खड़ीबोली के साहित्य से सारे देश को कम से कम आज की परिस्थिति में नहीं बाँध सकते। यह प्रश्न अवश्य है कि खड़ीबोली तथा अन्य बोलियों का कितना-कितना साहित्य हो। मैं एम० ए० में साहित्य की इन सभी परम्पराओं का प्रतिनिधित्व चाहता हूँ, जो आदिकालीन साहित्य में हैं। समस्त भाषाओं की कड़ियाँ यदि विद्यार्थी समझ जायँगे, तो उत्तर भारत की भाषा समझने में कठिनाई न होगी।

डॉ० केशरीनारायण शुक्ल के विचार से आदिकाल के नामकरण की समस्या भी है और आदिकाल का कितना साहित्य निर्धारित किया जाय, इस पर भी विचार कर लेना समीचीन है।

नामकरण लेखक या प्रवृत्ति आदि के आधार पर किया जा सकता है। अंग्रेजी साहित्येतिहास में नामकरण व्यक्तियों, प्रवृत्तियों तथा कालक्रम के आधार पर तीनों प्रकार से किया गया है। और संधियाँ तो हर काल में होती हैं, क्योंकि प्रवृत्तियाँ एकाएक नहीं सो जाती।

पाठ्यक्रम निर्धारण में युग की सीमा का निर्धारण करना पड़ेगा। चूँकि अपभ्रंश के विकास से ही नवीन आर्यभाषाएँ शुरू होती हैं, इसलिए उस मूल स्रोत तक जाना होगा, जहाँ से इन बोलियों का विकास आरम्भ होता है।

एक प्रश्न है कि अनेक विश्वविद्यालयों में पालि-संस्कृत आदि हैं। तब अपभ्रंश में भी पूर्व या उत्तर युग की सीमा निर्धारित करनी होगी।

मध्ययुग के साहित्य को समझने के लिए भी अपभ्रंश का परिचय आवश्यक है। यह अलग समस्या है कि वीरगाथाकाल की सामग्री उपलब्ध करना मुश्किल है: उस सामग्री की प्रामाणिकता भी संदिग्ध है।

साहित्य का इतिहास वस्तुतः उसकी भाषा से शुरू होता है। और समय-समय पर विभाषाओं की भी समस्या उठा करती है।

हिन्दी केवल अवध या ब्रज का बोध नहीं कराती, अपितु वह समुच्चय-बोधक है। हमें यहाँ यह भी समझ लेना चाहिए कि भाषा का परिवर्तन समय के साथ होता रहता है। पर प्रत्येक परिवर्तन के साथ कोई न कोई सांस्कृतिक और राजनीतिक कारण हुआ करता है। किंतु हिन्दी शब्द का प्रयोग हमेशा से होता रहा है।

यह अलग बात है कि आदिकाल को लेकर सरलता-कठिनता के प्रश्न उठते रहे हैं।

वस्तुतः कठिनाई भाषा की है या व्याकरण की है। कठिनता तब तक है, जब तक विद्यार्थी के लिए हम सरलता का साधन उपस्थित नहीं करते।

प्रत्येक देश में जागरण का युग अनुवाद से हुआ है। जैसा हमारे यहाँ भारतेन्दु-युग में हुआ। कोई भी देश अपनी परम्परा से विच्छिन्न नहीं होना चाहता। लेनिन ने भी अपने प्राचीन ज्ञान से हटने को नहीं कहा था। असल में सारी परम्परा के टूटने पर भी मूलभूत ज्ञान की बातें नहीं छूट पातीं।

उन्होंने अंत में आदिकालीन बोलियों में से किसी एक को रुचि के अनुसार लेने का भी सुझाव रखा।

डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव की राय में हर पत्र में अहिन्दी भाषाभाषियों के प्रश्न को लाना आवश्यक नहीं है। साहित्य का विद्यार्थी चूंकि उदात्त विचारों का होता है, अतः उसके लिए हमेशा सुविधा की बात नहीं, स्तर की बात सोचनी है। उसे सम्पूर्ण साहित्यिक परम्परा से परिचित हो जाना चाहिए। अतः पाठ्यक्रम की दृष्टि से हिन्दी साहित्य के सम्पूर्ण शरीर से उसका परिचय कराया जाय।

किंतु आदिकाल के साथ अध्यापकों की भी समस्या है। यदि सभी अध्यापकों को अपभ्रंश पढ़ाना पड़े, तो उन्हें बहुत परिश्रम पड़ेगा। और इस प्राचीन परम्परा से विद्यार्थी को काटा भी नहीं जा सकता।

इसके लिए कुछ तरीक़े हो सकते हैं। जैसे 'बेसिक भाषाएँ' नामक क्रम में अपभ्रंश को भी रखा जा सकता है। या फिर इतिहास के पाठ्यक्रम में रख सकते हैं। इतिहास में इसे वैकल्पिक रूप में भी रखा जा सकता है।

यह निश्चित है कि मध्ययुग के साहित्य को समझने के लिए अपभ्रंश साहित्य समझना बहुत जरूरी है। और चूंकि इसका थोड़ा परिचय अनपेक्षित है, इसलिए इस विषय के विशेषज्ञ तैयार करने की भी आवश्यकता है।

डॉ० जगन्नाथ तिवारी ने एकता की दृष्टि से संस्कृत साहित्य के महत्त्व की ओर संकेत किया। उसी संदर्भ में केवल अपभ्रंश ही नहीं, प्राकृत आदि के अध्ययन की भी आवश्यकता है। पर देखना है कि इन सबका कितना महत्त्व है।

उनकी दृष्टि में यदि एक प्रश्न-पत्र आदिकाल पर रख दिया जाय, तो और सारा साहित्य कैसे पढ़ाया जा सकेगा? क्योंकि आठ ही प्रश्न-पत्र हैं। उन्हीं के अंतर्गत सभी कुछ समाविष्ट करना है। फिर अपभ्रंश साहित्य की प्रामाणिकता में भी सन्देह है। यही स्थिति उसकी भाषा की है, जिससे अध्यापक और छात्र दोनों को कठिनाई होती है।

ऐसी दशा में अध्ययन के महत्त्व को स्वीकार करते हुए भी एक स्वतंत्र प्रश्न-पत्र के स्थान पर एकाध अंश या एकाध पुस्तकें रखना पर्याप्त है।

अहिन्दी प्रान्तों में तो इससे बहुत कठिनाई होती है। और इतने से छात्रों को हिन्दी के पूर्व रूप का ज्ञान भी नहीं हो पाता। इसलिए पांडित्य प्राप्ति के लिए ही वैकल्पिक प्रश्न-पत्र के रूप में इसे रखा जा सकता है, स्वतंत्र पत्र के रूप में नहीं।

डॉ० राजनारायण मौर्य के शब्दों में आदिकाल साहित्य की दृष्टि से तो नहीं, किन्तु भाषा-विज्ञान की दृष्टि से अवश्य महत्वपूर्ण है। अतः साहित्यिक दृष्टि से उसका परिचय ही पर्याप्त है।

पूना आदि में साहित्य में ६ प्रश्न-पत्र होते हैं। एक पत्र में ही प्राचीन और नवीन काव्य-धाराएँ इसीलिए रखनी पड़ती हैं। दार्शनिक विचारधारा नाम से एक पृथक् प्रश्न-पत्र भी है। इसके माध्यम से आदिकाल की परम्पराओं का भी पूर्ण परिचय प्राप्त हो जाता है।

अहिन्दी भाषी विश्वविद्यालयों में आदिकालीन साहित्य केवल दार्शनिक विचारधारा और साहित्येतिहास के रूप में ही रखा जा सकता है, पृथक पत्र के रूप में नहीं। पृथक पत्र के रूप में वहाँ अन्य बोलियों के रखने की आवश्यकता है।

डॉ० अम्बाशंकर नागर ने कहा: हिन्दी की उपभाषाओं का ज्ञान अपेक्षित है। यदि समग्र भारत की दृष्टि से कुछ करना है, तो अहिन्दीभाषी क्षेत्र की कठिनाइयों को भी ध्यान में रखना होगा। यहाँ उन्होंने डॉ० धीरेन्द्र वर्मा का भी उल्लेख किया, जिनके अनुसार केवल आधुनिक साहित्य पढ़ना ही उचित है।

उन्होंने इसी संदर्भ में गुजरात के कुछ कवियों का हवाला दिया, जिन्होंने १५वीं शती में ब्रजभाषा में रचनाएँ की थीं; इससे उपभाषा का कम से कम अहिंदी क्षेत्रों में भी एकता की दृष्टि से महत्व बढ़ जाता है।

श्री माताबदल जायसवाल ने स्पष्टतया कहा कि आदिकालीन साहित्य में अध्यापन की समस्या भारतीय स्वतंत्रता के साथ ही ज्यादा बढ़ी है। हमें यह न भूलना चाहिए कि बोलियाँ समय-समय पर हमेशा बदली हैं, लेकिन उनकी परम्परा एक ही रही है। ग्रीक, इतालवी और अंग्रेज़ी के भी अनेक रूप मिलते हैं। इन रूपों को अलग-अलग भाषा कह कर भविष्य में हम विदेशों में भ्रम फैलायेंगे।

यदि हम सर्वत्र—उत्तर भारत और दक्षिण भारत में—अलग-अलग भाषाओं का नाम न लेकर आदिकाल को प्राचीन साहित्य, मध्यकाल को मध्यकालीन साहित्य और आधुनिक साहित्य कहें, तो वह कठिनाई कदापि न होगी, जो अलग-अलग भाषाओं का नाम लेने से हो जाया करती है। क्योंकि भाषाएँ बदलते हुए रूपमात्र हैं, बिकसनशील परम्परा का द्योतन कराती हैं, एकमात्र हिन्दी के विविध विकासमान रूपों को आभासित करती हैं, बस।

डॉ० रघुवंश ने पूर्व वक्ता का समर्थन करते हुए वास्तव में हिन्दी को एक प्रवाह बताया; भाषाएँ उनकी तरंगमात्र हैं। उनकी राय में समय पर विचार कर लेना अवश्य संगत हो सकता है।

उन्होंने भाषा के अलग अध्ययन को साहित्य के अध्ययन के साथ आरोपित करने को बहुत असंगत बताया, क्योंकि साहित्य के अध्ययन के समय भाषा का अध्ययन भी होता चलता है। भाषा-वैज्ञानिक संस्कृति से अपरिचित रह कर उल्टा मार्ग अपनाता है।

डॉ० अम्बाशंकर नागर का उल्लेख करते हुए डॉ० रघुवंश ने अंत में कहा—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने यदि प्राचीन साहित्य के न पढ़ाने की बात कही होगी, तो उनका अर्थ केवल आदिकालीन साहित्य से रहा होगा; तुलसी-जायसी-कबीर से कदापि नहीं।

डॉ० हरिहनाथ टंडन ने पाठ्यक्रम को दो भागों में विभाजित कर देने का सुझाव दिया

(१) परिचयात्मक अध्ययन के रूप में तथा (२) सघन अध्ययन के रूप में। साधारण विद्यार्थी परिचयात्मक अध्ययन कर सकते हैं और विशेष या योग्य रुचिशील विद्यार्थी सघन अध्ययन कर सकते हैं।

प्रवर्तक **डॉ० रामसिंह तोमर** ने पुनः कहा : संस्कृत की तुलना में प्राकृत आदि महत्त्वपूर्ण हैं या नहीं, यह विचारणीय है। संस्कृत के प्रभाव को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। पर भाषा की दृष्टि से वह अधिक दूर पड़ गयी है। मेरी दृष्टि में ऐसा नहीं है कि अपभ्रंश में श्रेष्ठ साहित्य नहीं है। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने ही अपभ्रंश पर काम करने का संकेत दिया था और कहा था कि अपभ्रंश को स्थान मिलना चाहिए।

वैकल्पिक रूप में अपभ्रंश का अध्ययन हो, मैं इसके पक्ष में नहीं हूँ। इसका उचित स्थान आदिकाल के साहित्य में ही है। अपभ्रंश ही उत्तरी भारत की सभी भाषाओं को जोड़ने वाली कड़ी है। अतः उसका अध्ययन अपेक्षित है। इसके पीछे ठोस व्याकरण के प्रमाण हैं।

सभापति **डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव** के अनुसार रामचंद्र शुक्ल के इतिहास के समय से अब अपभ्रंश साहित्य बहुत अधिक उपलब्ध है। इससे अब तक की अविच्छिन्न परम्परा का पता लग गया है।

प्रश्न यह है कि हम उसे अनिवार्यतः पढ़ायें या नहीं।

उड़िया, बंगला, हिन्दी सभी का आरम्भ सरहपाद से माना जाता है। इससे भावात्मक एकता का पता चलता है। अपभ्रंश का अध्ययन दक्षिण में बहुत अधिक हुआ है। उनके यहाँ अपभ्रंश की पूरी की पूरी परम्परा है।

संक्षेप में, विकास के साथ अप्रामाणिक वस्तुओं को छोड़ा जा सकता है लेकिन अध्ययन की अनिवार्यता तो है ही।

●

४

गोष्ठी

दिनांक : ८.१०.६४
समय : सायं ३ से ६ बजे

विषय : आधुनिक काव्य और आलोचना

प्रवर्तक

- डा० बच्चन सिंह — वाराणसी

अध्यक्ष

- श्री सुमित्रानन्दन पन्त — प्रयाग

वक्ता

- डॉ० रामनिरंजन पाण्डेय — हैदराबाद
- डॉ० विनयमोहन शर्मा — कुरुक्षेत्र
- प्रो० ए० चन्द्रहासन — केरल
- डॉ० अम्बाशंकर नागर — अहमदाबाद
- श्री कल्याणमल लोढ़ा — कलकत्ता
- डॉ० केशरीनारायण शुक्ल — गोरखपुर
- डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी — प्रयाग
- डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव — भागलपुर
- डॉ० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' — जोधपुर
- डॉ० देवराज उपाध्याय — उदयपुर
- डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव — लखनऊ
- डॉ० रामकुमार वर्मा — प्रयाग

प्रवर्तक डॉ० बच्चन सिंह ने कहा : आधुनिक काव्य प्राय: प्रत्येक विश्वविद्यालय में है; किन्तु कुछ विश्वविद्यालयों में उसका महत्व वैसा नहीं है, जैसा होना चाहिए। प्रयाग विश्वविद्यालय में एक प्रश्नपत्र है, जिसका अर्धांश रीतिकालीन काव्य के लिए तथा अर्धांश आधुनिक काव्य के लिए निर्धारित है। यहाँ जो कठिनाई होगी या हो सकती है, वह द्रष्टव्य है। कम से कम प्रयाग विश्वविद्यालय में आधुनिक काव्य के लिए एक प्रश्नपत्र होना चाहिए। गुजरात विश्वविद्यालय में आधुनिक गद्य और पद्य को एक साथ रखा गया है। विश्व भारती में आधुनिक काव्य और नाटक एक साथ है। जबलपुर में रीति-काव्य तथा आधुनिक काव्य सम्मिलित रूप में है। यही हाल वल्लभ विद्यानगर का है। अतएव आधुनिक काव्य के लिए अलग प्रश्नपत्र होना चाहिए, क्योंकि हम वर्तमान में ही जीते हैं और इसीलिए आधुनिक काव्य के साथ आलोचना का विचार कर लेना संगत है।

उन्होंने आगे लिखित रूप में कहा—प्राय: भारतेन्दु को आधुनिक गद्य-पद्य का प्रवर्तक माना जाता है। अत: आधुनिक काव्य के अन्तर्गत भारतेन्दु, प्रसाद, मैथिलीशरण गुप्त आदि का नाम लिया जाता है। 'उर्वशी' को भी कुछ विश्वविद्यालयों ने निर्धारित किया है। किन्तु क्या आज तक की सम्पूर्ण चेतना को ये कवि व्यक्त कर पाते हैं? वस्तुत: रत्नाकर की तरह भारतेन्दु की कविता, रूप-विन्यास में मध्ययुगीन है। अत: उन्हें आधुनिक काव्य में रखना उचित नहीं है। वस्तुत: हमारे विश्वविद्यालय रूढ़िवादी (Conservative) हैं। इसलिए वे १९४० तक के काल को आधुनिकता के सन्दर्भ में सीमित कर देते हैं। उसके बाद विराम चिह्न लगा देते हैं। इस हठधर्मी के कारण आलोचना भी हानिप्रद हो जाती है।

इस रूढ़िवादिता का परिणाम छायावादियों को भी भुगतना पड़ा। सबसे पहले वाराणसी में उन्हें स्थान मिला। नयी कविता के लिए विश्वविद्यालयों के द्वार अभी तक बन्द ही हैं। सागर में वह अवश्य है। फलत: आलोचना के लिए आज निर्दिष्ट मार्ग की अपेक्षा है। यह सच है कि विश्वविद्यालयों में छायावादी कविता के रखे जाने पर छायावाद की एकेडेमिक आलोचना सम्भव हो सकी और अब उसे विस्तार भी मिलता जा रहा है। रामचन्द्र शुक्ल के बावजूद नन्ददुलारे वाजपेयी ने इस क्षेत्र में निश्चय ही नयी दिशा दी। किन्तु नयी कविता अभी भी प्रश्नवाचक बनी हुई है। यही नहीं, बल्कि छायावाद को खींच-तान कर इसके निकट लाया जा रहा है। लेकिन नयी कविता के लिए रचना-प्रक्रिया (Creative process) आदि का सन्दर्भ देकर आलोचना के नये मान विकसित करने होंगे।

भारतेन्दु में संक्रान्तिकालीन संस्कार सभी प्रकार से मिलते हैं। लेकिन रत्नाकर की आलोचना में भाव-विभाव की दृष्टि की अपेक्षा है। हालाँकि वे मध्यकालीन हैं। क्या उनकी कृतियाँ ऐसी हैं कि उन्हें आज जोड़ा जाय?—रत्नाकर के काव्य में युगीन चेतना नहीं है।

छायावादी कवियों के साथ उचित न्याय नहीं हो पाया है। कामायनी में शैवागम की खोज पर हँसी आती है। इसी प्रकार पन्त में अरविन्द ढूँढ़े जाते हैं। इस विषय में अध्यापक भी दोषी हैं। काव्येतर मानों का आरोप ग़लत है।

छायावादी कवियों को समझने के लिए यह जानना ज़रूरी है कि वे क्लासिकल कवियों से किस प्रकार भिन्न हैं, और वे रोमाण्टिक कवियों से किस प्रकार तुलनीय हैं। इससे हम उन्हें उपमहाद्वीपीय सन्दर्भ में देख सकते हैं।

विचार-विनिमय में भाग लेते हुए **डॉ० रामनिरंजन पाण्डेय** ने बताया—उस्मानिया में आधुनिक साहित्य का एक प्रश्न-पत्र है। छायावाद की कविता में रोटी की समस्या हल करने की क्षमता नहीं थी। पन्त जी यह मानते हैं, परन्तु मैं मानता हूँ कि उसमें वह क्षमता थी। महादेवी ने प्रगतिवादियों के दबाव से इसे मान लिया। पर रोटी के अतिरिक्त अन्य उच्च समस्याएँ भी हैं।

नयी कविता में भी जीवन की स्वस्थ दिशाएँ हैं, चिन्तन है। अतः यदि कहीं नयी कविता पढ़ाई जा रही है, तो मेरा विरोध नहीं। किन्तु विधा-विभेद के कारण प्रयोगवादी कविताओं में सब कुछ के बावजूद बहुत कठिनाइयाँ हैं। कवि के इंगित को यदि समाज ने ग्रहण नहीं किया, तो उस साहित्य पर सामन्तवाद का लेबिल लगा दिया जायगा। पद्य में जितनी प्रवृत्तियाँ आ गयीं, वे स्वस्थ थीं और जिनका प्रयोग हो रहा है, उनके फल तक पहुँचने की प्रतीक्षा हो और तब पाठ्य-क्रम में रखा जाय। आवश्यक नहीं कि सब कुछ पढ़ा ही दिया जाय।

आलोचना की दृष्टि से प्रगतिवाद तक सब कुछ हल हो चुका। अब साहित्य के साथ-साथ स्वस्थ आलोचना-धारा विकसित होनी चाहिए। हमें यह भी याद रखना चाहिए कि कवि भी आलोचक होता है और पाठक का उचित दिशा-निर्देश करता है। इस दृष्टि से आधुनिक कविता और आलोचना को दो प्रश्नपत्रों में पढ़ाया जाना उचित है।

डॉ० विनयमोहन शर्मा की दृष्टि से आलोचना केवल काव्य की ही नहीं होती, साहित्य की भी होती है। शुक्ल जी के बाद जो नयी मान्यताएँ आयी हैं, उनका स्वागत है।

प्रश्न यह है कि आधुनिक काव्य में केवल खड़ी बोली काव्य को सम्मिलित करें या ब्रज-भाषा या अन्य बोलियों के काव्य को भी। कुछ विश्वविद्यालयों ने ब्रज भाषा या अन्य बोलियों की कविता का भी समावेश किया है। जैसे रत्नाकर की कविताएँ या 'कृष्णायन' के कुछ अंश।

उत्तर का हिन्दी का विद्यार्थी हिन्दी काव्य की पूरी परम्परा से परिचित है। मेरे मत में आधुनिक हिन्दी काव्य में खड़ी बोली के साथ ब्रज भाषा के काव्य को भी स्थान दें, जिससे विद्यार्थी समझ सकें कि खड़ी बोली के साथ ब्रजभाषा काव्य की परम्परा भी आधुनिक युग में रही है।

कुछ समय पहले लोग छायावादी काव्य से भी चौंकते थे। गुप्त आदि तक ही सीमित रखते थे पर अब उनके द्वारा छायावादी काव्य भी स्थान पाता है।

आज की नयी काव्य-धारा को कुछ लोग अभी नहीं रखने के पक्ष में हैं। पर कुछ लोग कहते हैं, एम० ए० के छात्र को नयी से नयी धारा का परिचय देना चाहिए। मेरा मत यह है कि वही काव्यकृति पाठ्यक्रम में सम्मिलित की जाय, जो काव्य-गुणों से पूर्ण हो और पाठक, आलोचक सभी जिसके प्रति जागरूक हों।

आज आचार्य शुक्ल का मानदण्ड साहित्य के लिए पर्याप्त नहीं। नयी मान्यताओं के अनुसार छात्रों को नयी कविता पढ़ायी जा सकती है। आज का काव्य रस की श्रेणी तक नहीं पहुँच पाता। इसलिए उसे रस-सिद्धान्त द्वारा परखने की आवश्यकता ही नहीं है। जब काव्य सक्षम हो जायगा, तब उसकी ज़रूरत पड़ेगी।

श्री ए० चन्द्रहासन ने कहा कि हमारे यहाँ आधुनिक काव्य के लिए अलग प्रश्नपत्र है। और आलोचना इतिहास के साथ पढ़ायी जाती है। किन्तु आलोचना आधुनिक काल तक सीमित नहीं है।

आधुनिक काल में जो अवधी या ब्रजभाषा में रचना हुई है, यदि वह आधुनिक काव्य-प्रवृत्ति को दिखलाने वाली रचना है, तो मेरे ख्याल में उसे रखने में हर्ज़ नहीं। पर यदि प्राचीन प्रवृत्ति की ही है, तो पाठ्यक्रम में रखने की आवश्यकता नहीं। वैसे इतिहास पढ़ाते समय उन सभी रचनाओं का संकेत रहता है, जिनका ऐतिहासिक महत्व है।

और मेरे विचार से सामान्यत: उपलब्ध सभी सामग्री का अध्ययन आवश्यक है। मेरी मान्यता है कि अब तक आधुनिक काव्य के क्षेत्र में जितनी प्रवृत्तियाँ हैं, उन सबका परिचय विद्यार्थी को कराना चाहिए। जैसे बच्चन को छोड़ नहीं देना चाहिए, क्योंकि हालावाद की एक प्रवृत्ति उनके साथ जुड़ी है। चाहे सेमिनार के माध्यम से या जैसे भी हो नयी कविता का अध्ययन भी आवश्यक है।

दक्षिण भारत के विद्यार्थी को अन्य बोलियों की रचनाओं से भी परिचित होना चाहिए। पर यह आवश्यक नहीं कि उनको पाठ्यक्रम में ही रख कर परिचय दिया जाय।

मेरा सुझाव है कि आधुनिक काव्य के लिए एक पर्चा अलग होना चाहिए। हम आधुनिक काव्य से सम्बन्धित एक निबन्ध, निबन्ध के प्रश्नपत्र में रखते हैं।

आलोचना के सम्बन्ध में मेरा निवेदन है कि आलोचना के लिए पुराने मानदण्ड ही लागू हों, यह ठीक नहीं। आज रस की व्याख्या में भी दृष्टि बदलनी चाहिए। पुरानी परिपाटी के अनुसार नयी कविता की आलोचना नहीं करनी चाहिए। देखना यह चाहिए कि यदि नयी कविता से मानवता को और हिन्दी साहित्य को लाभ हुआ हो, तो उसे अवश्य पाठ्यक्रम में स्थान देना चाहिए।

डॉ० अम्बाशंकर नागर के विचार से पाठ्यक्रम में ऐसा काव्य ही रखा जाय, जो आधुनिकता से पूर्ण हो; प्राचीन या मध्यकालीन प्रवृत्तियों से सम्बन्धित काव्य को रखना उचित नहीं। पाठ्यक्रम काल की सीमा में बद्ध न हो, बल्कि आधुनिकता के प्रसंग में रखा जाय। उद्धवशतक को इस दृष्टि से नहीं रखा जा सकता। इसी प्रकार जिसमें कुछ भी सुनिश्चित नहीं है, उस कविता को नहीं रखा जा सकता। नयी कविता आशास्पद है। किन्तु आज जो नवीनतम कविता है, उसे विद्यार्थियों के समक्ष रखा जाय, या नहीं, विचारणीय है। इसके काव्य-सौन्दर्य को विद्यार्थियों को समझाना कठिन है और जो अभी बनने की स्थिति में है, उसे रखना आसान नहीं है। अत: जब तक नयी कविता एक निश्चित पर नहीं पहुँच जाती, उसे पाठ्यक्रम में स्थान नहीं देना चाहिए।

श्री कल्याणमल लोढ़ा ने विल्सन नाइट का उद्धरण देते हुए कहा : हम लेना तो जानते हैं, किन्तु देते क्या हैं? आलोचना के नाम पर हिन्दी ने दिया क्या है? यह तटस्थ दृष्टि से देखा जाना चाहिए।

लोग इतिहास भुला देते हैं, किन्तु सबसे पहले कलकत्ता में प्रसाद पर प्रश्न-पत्र रखा गया। स्वयं वाराणसी में लोग इसके लिए तैयार नहीं हुए।

अस्तु, आधुनिक काव्य के अध्ययन और पठन-पाठन को उदासीन और तटस्थ दृष्टि से न देख कर सम्पूर्ण काव्य-धारा के परिप्रेक्ष्य में देखना चाहिए। तटस्थ दृष्टि को छोड़ने से समस्या हल होगी।

आधुनिक काव्य का आरम्भ चाहे-अनचाहे भारतेन्दु से माना जाता है, क्योंकि शुक्ल जी ने यह माना है, लेकिन इस सम्बन्ध में अब सोचने-विचारने की आवश्यकता है। मुझे इसमें वैज्ञानिकता कम दीखती है। भाषा की दृष्टि से भारतेन्दु बहुत पहले के लगते हैं। धारणाओं के परिवर्तित होने की अब इसीलिए बेहद ज़रूरत है। भाव की दृष्टि से द्विवेदी युग से आधुनिक काव्यधारा का आरम्भ माना जा सकता है।

आधुनिक काव्य के छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता—चार आयाम मान लिए जाते हैं। पर अब दृष्टिमूलक जड़ता का अन्त होना चाहिए। नयी कविता के साथ ही प्राचीन पौराणिक पात्रों का नया रूप-न्यास हुआ। धर्मवीर भारती का 'अन्धा युग', नरेश मेहता का 'संशय की एक रात' तथा दुष्यन्त कुमार का 'एक कण्ठ विषपायी' ऐसी ही प्रमुख रचनाएँ हैं, जिनमें पुराण ने एक नया अर्थ पाया है। निश्चित ही कवियों की धारणाएँ परिवर्तित होती रही हैं।

समस्या केवल अध्ययन की नहीं, अध्यापन की भी है और नूतन दृष्टिकोण की भी।

रस की समस्या! प्रश्न यह है कि क्या आचार्य भरत ने श्रव्य-काव्य के लिए रस-सिद्धान्त निश्चित किया था? क्या सरहपाद और सिद्धों के काव्य में रस मिलता है—जो पढ़ाया जाता है? लगता है, हमारा दृष्टिकोण परिपक्व नहीं है।

आधुनिक काव्य में एकता है, हम उस दृष्टि को अपना नहीं पाते। तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में अध्ययन को अपनाने की हम में अक्षमता है। इसलिए हमें तुलनात्मक दृष्टिकोण पर भी ध्यान देना चाहिए। काव्य जीवित वस्तु है, जड़ नहीं।

एक बार फिर विल्सन के शब्दों को दुहरा देना चाहता हूँ कि हम लेना जानते हैं, देना नहीं।

डॉ० केसरीनारायण शुक्ल की राय में भाव का एक क्षेत्र हमें निश्चित करना पड़ेगा कि आधुनिकता की क्या सीमा है। मेरी राय में १९वीं सदी में जो सांस्कृतिक आन्दोलन और परिवर्तन शुरू हुए, वे ही आधुनिकता के मूल हैं। नये भावों का प्रवाह एक स्थिति से अलग होकर नयी मान्यताओं, समस्याओं को लेकर एक दूसरे के सहायक बन कर चले, तब से आधुनिकता चली। निश्चय ही इस दृष्टि से भारतेन्दु से आधुनिक काल शुरू होता है। काव्य का रूप (Form) भले ही उनमें पुराना रहा हो, लेकिन समस्याएँ उसमें आधुनिक हैं।

प्रश्नपत्र की दृष्टि से आधुनिक काव्य के कुछ विषय (Topics) और कुछ पाठ्य-ग्रन्थ

रखना उचित होगा। बल्कि विषय रखना अधिक अच्छा होगा। भाषा-विप्लव तथा भाव-विप्लव की खोज में ये विषय कारगर हो सकेंगे।

द्विवेदी-युग में काव्य और गद्य दोनों की भाषा खड़ी बोली प्रतिष्ठित हो गयी।

रोमाण्टिसिज्म हर युग में रहा है, लेकिन उसका रूप हर बार भिन्न रहा है। क्योंकि साहित्य का व्यक्तित्व वस्तुतः अनेक रूपात्मक होता है।

छायावाद में पलायन भी है। किन्तु यह पलायन किससे और क्यों है, यह मुख्य प्रश्न है।

डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी ने मत व्यक्त किया कि आधुनिक काव्य के सम्बन्ध में हमारी जो दृष्टि होगी, उसी के अनुसार पाठ्यक्रम भी निर्धारित होगा। वैज्ञानिक दृष्टि यह है कि हम अपने वर्तमान संवेदन से अतीत का मूल्यांकन करें। परम्परा का वही मूल्यांकन कर सकेगा, जो आधुनिकता में जीवित है। अगर हम विद्यार्थियों में आधुनिक चेतना की गहरी संपृक्ति नहीं करायेंगे, तो हम सारी परम्परा से दूर हट जायेंगे।

प्रत्येक युग अपनी मनोभूमि के अनुकूल 'मानस' और 'सूरसागर' का आस्वादन करता है। समस्या पाठ्यक्रम की नहीं, दृष्टिबिन्दु की है। क्योंकि आधुनिक की संवेदना से ही हम मध्यकालीन या अतीत को समझते हैं। इसलिए वर्तमान से अतीत की यात्रा अधिक लाभप्रद है। हम यदि नये को समझ सकते हैं, तो रामचन्द्र शुक्ल को समझ सकते हैं। बल्कि कहें कि हम यदि कामायनी को समझ सकते हैं, तो रामचन्द्र शुक्ल को ज्यादा समझ सकते हैं। इसी का विलोम अवैज्ञानिक हो जायगा।

डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव ने बताया कि हमारी हिन्दी पाठ्यसमिति ने अधुनातन धारा को स्थान दिया है। पर आगे जाने पर इसमें विवाद हुआ। क्योंकि आधुनिक काल में विद्यार्थी के सामने एक ही युग में विविधता आ रही है। आधुनिक काल में किन कवियों को रखा जाय, यह मुख्य प्रश्न है।

आलोचना वस्तुतः पीछे आती है, काव्य पहले आता है। आलोचना के साँचे निर्धारित करके काव्य को उसमें फिट करने का प्रयत्न उचित नहीं है।

आधुनिक काल का काल क्रम से विभाजन करना चाहिए।

आलोचना शास्त्र और काव्यशास्त्र को अलग रखना चाहिए।

डॉ० रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' के अनुसार कवि सदैव स्वतन्त्र होता है, वह आलोचना के बन्धन में नहीं पड़ता। फिर भी यदि विचारधाराओं को लेकर काव्य लिखा गया है, तो उसे हम मान्यता दे सकते हैं।

डॉ० देवराज उपाध्याय के विचार से आचार्य शुक्ल हिन्दी आलोचना के पिता रहे हैं। अतः आज के आलोचक उनकी बात को काटते हैं। अस्तु, आधुनिक काव्य का आरम्भ कब से हुआ, यह विवाद क्यों है? यह तो कभी से माना जा सकता है। बात इतनी है कि जितना अनुपात है, उतना देना चाहिए और निराला, पन्त, महादेवी के आगे बढ़ना चाहिए।

आज तक जितनी आलोचना हुई है, वह समालोचना नहीं है। कवि की जीवनी, परिस्थिति

आदि से निरपेक्ष होकर केवल काव्य की आलोचना करनी चाहिए। कविता की आन्तरिक चेतना को देखना चाहिए।

डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव के अनुसार आधुनिक काव्य में किस काव्य को स्थान दिया जाय, यह मुख्य समस्या है। एक विचार था कि अवधी, ब्रज आदि की रचनाओं को स्थान दिया जाय। पर केवल इन बोलियों में रचना होने मात्र से स्थान दे देना आवश्यक नहीं। मेरी धारणा है कि प्रतिनिधि काव्य में खड़ी बोली को ही स्थान दिया जाय। काव्य में व्याख्येय काव्य को ही स्थान देना चाहिए और व्याख्येय काव्य छायावाद ही है। अन्य काव्य पठनीय है, पर पाठ्यक्रम में रखा जाय, यह अपेक्षित नहीं। उन्हें यों ही परिचित कराया जा सकता है।

आलोचना के कुछ मानदण्ड सर्वत्र मान्य हैं। इसलिए आज भी रस की महत्ता है, क्योंकि रस की सीमाएँ कभी नहीं बँधी। आज भी देश-काल के अनुसार रस की व्याख्या की जा सकती है। आज के छायावादी काव्य में रस है। अतः रसमयता और आनन्द-विधान दोनों की दृष्टि से आलोचना के मापदण्ड में परिवर्तन किया जा सकता है। आज हमारे पास छिटपुट प्रतिमान तो हैं, किन्तु कोई विधान रूपायित नहीं हुआ है। रसज्ञता भी देश-काल सापेक्ष होनी चाहिए। इसके लिए आलोचकों को उदार होना चाहिए। अध्यापक को आलोचक का भार भी सँभालना है और काव्य-दृष्टि भी देनी है। इस प्रकार अध्यापक का उत्तरदायित्व दुहरा है। हमें बहुत रूढ़िवादी होने की आवश्यकता नहीं है।

इस प्रकार आलोचना को काव्य से पृथक् नहीं करना चाहिए। उचित यह है कि काव्य-शास्त्र के साथ ठोस आलोचना का अध्ययन कराया जाय।

डॉ० रामकुमार वर्मा के शब्दों में कविता जीवन-दर्शन है। इसलिए उसे काल के अन्तर्गत सीमित नहीं करना चाहिए। यदि जीवन के विविध परिप्रेक्ष्यों के आधार पर सीमित करें, तो यह बात स्पष्ट हो सकेगी। जो साहित्य स्वस्थ जीवन-दर्शन से ओत-प्रोत है, वह अत्यन्त उपादेय है।

आधुनिक काव्य कब से माना जाय, इसमें विभिन्न मत हैं। इतना सच है कि आधुनिक कवियों में जीवन-दृष्टि का परिवर्तन हो गया है।

हमारा हिन्दी काव्य सन् १६२३ के बाद आरम्भ हो जाता है। एक दृष्टि तब थी, जब चारण-काल या सन्धि-काल था। उसके बाद दृष्टि-परिवर्तन हुआ। वस्तुतः जीवन की प्रगति और मूल्य काव्य में जिस सीमा तक रहे हैं, उसी को विद्यार्थियों के समक्ष रखना है।

रामचन्द्र शुक्ल ने साहित्य में डूब कर साहित्य के मानदण्ड निर्धारित किये। रामचन्द्र शुक्ल के संकेत को आलोचकों ने नहीं समझा। आज के आलोचक बाहर से लाये मूल्यों के आधार पर एक साँचा बैठा कर परखना चाहते हैं। स्थिति यह है कि आलोचना का प्रतिमान साहित्य के आधार पर निर्मित होता है। अतः बाह्य प्रतिमान के स्थान पर साहित्य से उद्भूत श्री से ही प्रतिमान निश्चित करना होगा। इसीलिए रस-सिद्धान्त में युगों-युगों से परिवर्तन होते आ रहे हैं।

एम० ए० के विद्यार्थियों की आलोचना-दृष्टि को प्रखर करने के लिए आलोचना का पठन-पाठन नितान्त आवश्यक है।

छायावाद अन्तर्दर्शन है, बाह्य रूप नहीं।

कविता के लिए विशिष्ट दृष्टि चाहिए। आज जल्दी-जल्दी वादों के बदलने से स्पष्ट है कि कवि स्वयं स्थिर नहीं है।

प्रवर्तक **डॉ० बच्चन सिंह** ने पुनः कहा : (१) आधुनिक काव्य में ब्रजभाषा की कविताओं को स्थान देने-न-देने का प्रश्न उचित है। चन्द्रहासन जी ने पते की बात कही कि युग की अनुरूपता या आत्मा जहाँ न हो, उसे नहीं रखना चाहिए। (२) अनेक वक्ताओं ने नयी कविता को अपरिपक्व बताया; अनेक ने उसे रखने का प्रस्ताव किया। अपरिपक्वता का आरोप मान्य हो या न हो, लेकिन नयी कविता को पाठ्यक्रम में रखना चाहिए। सागर और भागलपुर में तो वह है भी। (३) आधुनिक काव्य की अनेक उलझी हुई बातों को भी उठाया गया। आलोचना के क्षेत्र में शुक्ल जी से प्रेरणा लेनी होगी, यह निश्चित है। (४) आधुनिक काव्य के सन्दर्भ में आलोचना के मानदण्ड बदले हैं। उन पर नये सिरे से विचार करना होगा। लेकिन पाश्चात्य से उधार लेना ही अपेक्षित नहीं। अपनी परम्परा के ग्राहक तत्वों को अपनाना होगा पर हर चीज़ को ज्यों का त्यों नहीं अपनाया जा सकता।

अध्यक्ष **श्री सुमित्रानन्दन पन्त** ने अन्त में अपना मत व्यक्त किया : आधुनिक काव्य का एक व्यावहारिक पक्ष है। दूसरा मूलगत वैचारिक पक्ष है। व्यावहारिक पक्ष में छात्रों को सम्पूर्ण परम्परा का परिचय देना होता है। अतः कालक्रम रखना अच्छा है। हिन्दी प्रदेश के विश्वविद्यालयों में पाठ्यक्रम विस्तृत होना चाहिए। क्योंकि आलोचना के वास्तविक मानदण्डों को विश्वविद्यालय में ही विकसित होना है। विश्वविद्यालय शिक्षा के प्रवेश-द्वार हैं, यहाँ ज्ञान का आरम्भ होता है, अन्त नहीं।

'आधुनिक' के चिह्न भर मिले हैं, वह स्पष्ट नहीं हो सका है। क्योंकि आज के व्यक्ति की संवेदना स्पष्ट नहीं है। छायावाद में भी ऐसा ही था। पर तब एक सुविधा थी पुनर्जागरण की। अतः हमने भारतीय चेतना से अधिक ग्रहण किया। पर नवीन कवि अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज से बात करते हैं।

प्राचीन साहित्य से लेकर अब तक के साहित्य तक के लिए एक चयनिका बनानी होगी। इससे देखा जा सकेगा कि काव्य किस ओर बढ़ रहा है।

शिक्षा युग-सापेक्ष और काल-सापेक्ष है। ज्ञान एक अंश है; शिक्षा वलयात्मक होती है।

आज मनुष्य का पोषण बड़े व्यापक रूप में हो रहा है। नयी चेतना का पक्ष है कि वह नवीन दृष्टि देती है—गंगा के समान।

आधुनिक प्राचीन की तुलना में आधुनिक है। आज विज्ञान ने देश-काल की सीमाएँ छोटी कर दी हैं। मनुष्य की प्राचीन धारणाएँ इस युग में बदल रही हैं।

इसलिए नवीनतम को भी स्थान देना होगा, क्योंकि कभी यह सुथरा होगा। हमें प्राचीन परम्परा का भी परिचय देना होगा, पर अनेक बोलियों का बोझ लादना अनुचित है। विद्यार्थियों के प्रति उदार रहना होगा।

५

गोष्ठी

दिनांक : ९.१०.६४

समय : प्रातः ९ से १२ बजे

विषय : रीति साहित्य

प्रवर्तक

- पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र गया

अध्यक्ष

- डा० हरिहरनाथ टण्डन आगरा

वक्ता

- प्रो० ए० चन्द्रहासन केरल
- डॉ० हरवंशलाल शर्मा अलीगढ़
- डॉ० जगन्नाथ तिवारी जम्मू और कश्मीर
- डॉ० केशरीनारायण शुक्ल गोरखपुर
- डॉ० विजयपाल सिंह तिरुपति
- डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव भागलपुर
- डॉ० गोपीनाथ तिवारी गोरखपुर
- डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव लखनऊ
- डॉ० देवराज उपाध्याय उदयपुर
- डॉ० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' जोधपुर
- श्री सुमित्रानन्दन पन्त प्रयाग

विषय-प्रवर्तक डॉ० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने कहा—हिन्दी साहित्य के इतिहास में रीति-साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है। आदि काल में शुद्ध साहित्यिक चेतना थी अवश्य, किन्तु राज्य-प्रशस्तियों के कारण वह नहीं जगी। किन्तु एक व्यक्ति ऐसा सामने आया है, जिसमें शुद्ध काव्य-चेतना दिखायी दी—वह विद्यापति थे। यह विशुद्ध साहित्यिक चेतना अधिक विकसित हो गयी होती, यदि भक्ति-काव्य बीच में नहीं आता।

भारतीय साहित्य की परम्परा अपनी ही अनुभूतियों की गहराई में जाने की अपेक्षा दूसरे की अनुभूतियों को अपनाना भी है। दूसरे के माध्यम से चलने से अपनी मनोवृत्तियों का विकास होता है। निर्गुण धारा 'स्व' की गहराई में जाकर ही 'पर' की गहराई में गयी। पर सगुण धारा 'पर' की अनुभूति की गहराई में जाकर परम महाकाय में प्रविष्ट हुई।

क्या कारण है कि रीतिकाल ने सगुण में प्रवेश किया?—यह सूर के प्रभाव से हुआ। रीतिकाव्य का जो विकास हुआ, उसका बीजारोपण आदिकाल में ही हो गया था। भक्तिकाल में रीति-काव्य का विचार करने वाले कवि भी हुए। विशुद्ध साहित्यिक चेतना भक्तिकाल में विकसित हो रही थी।

हिन्दी साहित्य का जो भी विकास हुआ, उसमें रीति-काव्य एक कड़ी है।

छायावाद में 'स्व' के माध्यम से परमकाय में जाने का प्रयत्न हुआ। विशुद्ध साहित्य-चेतना के स्तर की इधर बहुत उपेक्षा हुई है। रीति-काव्य में कम से कम व्याख्यात्मक गहराई अधिक है। आधुनिक काव्य में व्याख्या उतनी गहराई से नहीं हो पाती। उसकी आलोचना होती है, पर सौन्दर्य-बोध नहीं हो पाता। रीति-परम्परा के ज्ञान से ही हम आधुनिक सौन्दर्य समझ सकते हैं। प्रसाद की कृतियों को ठीक ढंग से समझने के लिए इस परम्परा का ज्ञान नितान्त आवश्यक है। तभी हम जान सकेंगे कि इड़ा सर्ग में प्रयुक्त 'गुहा' शब्द का अर्थ केवल 'गुफा' नहीं होता है, 'जहाँ से सारी सत्ताओं का निर्माण होता है'। तभी हम यह भी जान सकेंगे कि 'उद्धव शतक' एक नवीन कृति है; इसलिए वह भी पठनीय है। रत्नाकर ने 'प्राकृत प्रभाव सों' जैसे प्रयोगों के माध्यम से जो अर्थच्छायाएँ प्रस्तुत की हैं, वे अन्यतम हैं। 'उद्धव शतक' इस परम्परा की एक कड़ी है।

अध्ययन के लिए काव्यशास्त्रीय चेतना आवश्यक है। मध्यकालीन एवं रीति-साहित्य का अध्येता आधुनिक साहित्य का ज्ञाता स्वतः होता है।

साहित्य की चेतना स्वच्छन्द होती है। वह कोई बन्धन नहीं स्वीकार करती।

रीति-युग में जो निर्माण हुआ है, उसमें उच्चता है। उसमें साहित्यिक वैभव, लाक्षणिक वक्रता एवं व्यंजनादि सभी कुछ है।

विचारणीय है कि रीति-साहित्य का किस प्रकार नियोजन करना चाहिए और उसका

कहाँ-कहाँ न्यास करना चाहिए। बहुत से विश्वविद्यालयों में तो रीति-साहित्य पढ़ाया ही नहीं जाता पर कहीं-कहीं तो रीति-साहित्य का एक अलग प्रश्नपत्र ही रखा गया है। कहीं उसे काव्य-शास्त्र के साथ रख दिया गया है और कहीं आधुनिक काव्य के साथ रखा गया है। फलतः नित्य-प्रति उसके पाठ्यक्रम एवं नियोजन के सम्बन्ध में विस्तार होता जा रहा है। हमारे विश्वविद्यालय में भाषा के माध्यम से प्रश्नपत्रों का विभाजन है। जैसे ब्रजभाषा, अवधी तथा खड़ीबोली का। साहित्यक सौन्दर्य को दिखलाने की प्रवृत्ति तब तक नहीं होगी, जब तक रीति-काव्य न पढ़ाया जायगा। काव्यशास्त्रीय पद्धति से व्याख्या करनेवालों ने अधिक अच्छी व्याख्या की है। रीति-साहित्य केवल संस्कृत साहित्य का अनुवाद नहीं है। रीति-कवियों ने साहित्य के अध्ययन की भी दिशा दी। रीतिकाल के सभी कवि भक्त नहीं थे। रीति-साहित्य में हमारी चेतना तभी कुण्ठित होती है, जहाँ हम परम्परा से कटते हैं। रीतिकालीन काव्य को समझने के लिए कुछ आचार्यों के नियमों को भी ध्यान में रखना होगा। सौन्दर्य की सृष्टि ही काव्य का लक्षण है।

केशवदास ने मनोवैज्ञानिक ढंग से परिस्थितियों को रखने की चेष्टा की। वैसे परम्परा पहले से ही थी। केशव ने 'कविप्रिया' में 'कविसमय' का विस्तार से उल्लेख करते हुए 'सत् निबन्धन', 'असत् निबन्धन' और 'नियम निबन्धन' का विभाजन भी तार्किक ढंग से प्रस्तुत किया है। केशव ने संस्कृत के अतिरिक्त सम्पूर्ण परम्पराओं को समाहित किया। दिव्यादिव्य वर्णन के अन्तर्गत उन्होंने फ़ारसी की भी परम्परा ग्रहण की। लोक से उन्होंने 'बारहमासा' लिया। वस्तु-वर्णन में सौन्दर्य-चयन आवश्यक होता है। रीतिकाल में सामाजिक चेतना पर्याप्त है। इसीलिए केशव ने 'सामान्या' का वर्णन नहीं किया। केशव ने 'श्रृंगार' के 'प्रकाश' और 'प्रच्छन्न' दो भेद किये। प्रच्छन्न श्रृंगार वहाँ होता है, जहाँ अंतरंग सखियाँ होती हैं। सखी किसे कहते हैं? —जो प्रिय और प्रिया के समान अनुभूति करे। ये भेद रुद्रभट के यहाँ भी हैं, पर 'प्रच्छन्न' को केशव ने नवीन अर्थ दिया। अनन्त विस्तार को केशव ने समेटा। 'वृत्ति' का अर्थ है 'रीति'। इसलिए अलंकार में केशव ने रीति को भी ले लिया। संस्कृत की गौड़ी आदि रीतियों से काम लेना उस समय तक सम्भव नहीं था। लेकिन एक पक्ष—भाषा का, छूट गया केशव से। अभी हमारा रीति-साहित्य पूर्णतः सामने आया नहीं, इसलिए कुछ सही नहीं कहा जा सकता।

सूरति मिश्र तथा उनकी मण्डली ने एक बार नये के प्रति सचेत होकर आगरा में सम्मेलन किया। सभापति सूरति मिश्र थे। वे हिन्दी के नवीन काव्यशास्त्र की ओर प्रेरित हुए।

अब ज़रूरी है कि पहले संस्कृत काव्यशास्त्र का अध्ययन हो, फिर रीति का। रीतिकाल से जैसे रीति, वृत्ति, औचित्य आदि को समेट लिया गया है। उसी प्रकार अब रीति साहित्य को कैसे समेटा जाय, यह प्रश्न है।

भाषा का एक प्रश्न रह जाता है। अभी भाषा का अध्ययन बहुत कम हो पाया है। भाषा की जानकारी भी रीति-साहित्य को समझने के लिए आवश्यक है। रीति-काव्य की सभी प्रवृत्तियों का अध्ययन होगा, तभी पूर्णता होगी।

प्रशस्ति-काव्य भी है, उसका प्रवाह भी है, पर वह पीछे छूट गया है। अन्यों का कथन है कि वीर के तीन चरण हैं—आदि में प्रायः कई, फिर भूषण और फिर माखनलाल चतुर्वेदी।

छायावाद रीतिकाल का विकास है। शायद प्रयोगवाद में उसका और विकास हो। इस तरह उसका विकास अखण्ड है। इस प्रकार रीतिकाल के महत्व को देखते हुए उसका स्वतन्त्र प्रश्नपत्र होना चाहिए। वैकल्पिक पत्रों में इसका उचित न्यास होना चाहिए।

रीति-साहित्य में जो अंश गर्हित समझा गया है, उसकी अवहेलना रीतिकाल के लोगों ने भी की। भक्ति-काल हिन्दी साहित्य का वार्धक्य है और रीतिकाल उसका यौवन।

विचार-विनिमय में भाग लेते हुए **प्रो० ए० चन्द्रहासन** ने बताया कि हमारे यहाँ भक्ति काल को एक पत्र में रखा गया है। आदिकाल और रीतिकाल, दोनों को मिलाकर एक पत्र बना। शायद इसीलिए कि रीतिकाल का बीजारोपण जैसा कि मिश्र जी ने बताया, आदिकाल में हुआ था। रीतिकाल में अनिवार्य स्थान हम बिहारी को देते हैं। यह प्रश्न बार-बार उठा कि बिहारी के बाद किस-किस को रखें। पहले केशव की रामचन्द्रिका थी। पर इससे रीतिकाल का पूरा अध्ययन नहीं सम्भव था। अतः अब रीतिकाव्य के कई कवियों के थोड़े-थोड़े अंश पढ़ाये जाते हैं।

वैसे दक्षिण में सन्तुलन की दृष्टि से दो प्रश्नपत्र आधुनिक साहित्य के हैं और दो पुराने के। समस्या का हल यूँ है कि भक्तों और सन्तों को एक साथ पढ़ाते हैं। और जैसा कि कहा, आदिकाल रीतिकाल एक साथ है, उसका कारण यह है कि दक्षिण में आदिकालीन और रीतिकालीन भाषा एक-सी कठिन लगती है। इसके एक प्रश्नपत्र होने का विरोध भी नहीं हुआ।

डॉ० **हरवंशलाल शर्मा** ने मिश्र जी के प्रति विद्यापति के सम्बन्ध में सहमति व्यक्त करते हुए कहा कि पहली बात विचारणीय यह है कि क्या वास्तव में रीतिकाल का सम्पूर्ण साहित्य सत् साहित्य है? मेरी दृष्टि में रीतिकालीन साहित्य में सत्तत्व है, जिससे आनन्द की प्राप्ति होती है। किन्तु सम्पूर्ण साहित्य में वह चेतना नहीं है, जिससे सत्साहित्य बनता है। विद्यापति की चेतना रीतिकाल में नहीं आती। राज्याश्रय सभी रीति-कवियों के साथ है। किन्तु विद्यापति की सौन्दर्य-चेतना क्या इनमें है?

जहाँ तक साहित्य-सर्जना का प्रश्न है, उसके मूल में साहित्य-चेतना वर्तमान है। इससे इन्कार नहीं। किन्तु वह साहित्य-चेतना किस प्रकार की है? साहित्य-चेतना समाज-सापेक्ष हो सकती है; समाज-निरपेक्ष हो सकती है, वैयक्तिक हो सकती है; निर्वैयक्तिक हो सकती है। किन्तु रीतिकालीन साहित्य की परम्परा विद्यापति की परम्परा का बढ़ा हुआ रूप है, यह मैं मानने को तैयार नहीं।

साहित्य अजस्र धारा है। व्यक्ति अपनी प्रतिभा से उसकी सर्जना करता है।

रीतिकाल की परम्परा प्राकृत साहित्य से ही चली आ रही थी। अतः विद्यापति इस कड़ी के प्रथम कवि नहीं। प्राकृत साहित्य की चेतना ही रीतिकाल में विकसित हुई।

क्या भक्ति-साहित्य की अनुभूति 'स्व' की है, क्या उसमें शेष सृष्टि के साथ रागात्मकता नहीं? मैं समझता हूँ कि बिना शेष के साथ रागात्मकता के आनन्दोपलब्धि नहीं सम्भव है। उसे समाज-सापेक्ष होना पड़ेगा। सन्त-साहित्य की परम्परा के साथ रीतिकाल के कवियों को जोड़ना सन्त-काव्य के साथ अन्याय होगा। क्योंकि वे निर्वैयक्तिक हैं, रीति-कवि वैयक्तिक हैं।

परानुभूति यदि कहीं है, तो उससे अधिक भक्तिकालीन साहित्य में है। अतः मैं भक्ति-काव्य को वृद्ध नहीं मानता। इस दृष्टि से भक्तिकाल अधिक महत्वपूर्ण है।

रीतिकाव्य की दो परम्पराएँ हैं—(१) काव्यशास्त्रीय, (२) साहित्यिक। इनका ज्ञान आवश्यक है।

पाठ्यक्रम की दृष्टि से रीतिकालीन साहित्य का काल भेद से एक प्रश्नपत्र होना चाहिए। जैसे (१) आदिकाल (२) भक्तिकाल या कुछ विश्वविद्यालयों में संवत् के आधार पर काल-निर्णय-भेद। लेकिन फिर आठ प्रश्नपत्र हैं। इसलिए कालक्रम के अनुसार विभाजन असम्भव है। यह हो सकता है कि कवियों के वर्ग बना लिये जायँ। रीतिकालीन कवि किस वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है यह भी विचारणीय है रीतिकालीन भाषा पर भी विचार करना महत्वपूर्ण है। आदिकालीन ब्रजभाषा पर, जिसमें कई भाषाएँ मिल गयी हैं, विचार नितान्त आवश्यक है।

डॉ० जगन्नाथ तिवारी ने बताया कि रीतिकाल को मैं हिन्दी साहित्य का आवश्यक अंग मानता हूँ। साहित्यिक चेतना अनेकमुखी है। जैसे रीतिकाल की चेतना आदि काल में, भक्ति-काल में भी और आज भी है, इसी प्रकार भक्तिकाल की चेतना सभी कालों में है। पूर्व वक्ता ने जिस असद्वृत्ति का संकेत किया है, वह हर काल में ९०% है। उसकी चर्चा व्यर्थ है।

रीतिकाल नाम उचित नहीं है। संस्कृत में 'रीति' इस अर्थ में नहीं है। शायद 'रेटारिक' से 'रीति' शब्द आया, और व्यापक अर्थ ले लिया गया, जिसमें रसादि सभी कुछ आ गये। रीति-काल में सौन्दर्य की अभिव्यक्ति पर बल दिया गया। इसलिए मैं रीतिकाल को हिन्दी साहित्य का स्वर्ण-युग मानता हूँ।

डॉ० केसरीनारायण शुक्ल के अनुसार साहित्य पर विचार करते समय हमारे सामने ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, कलात्मक, साहित्यिक कई दृष्टिकोण रहते हैं।

किसी भी युग में जो कुछ भी कहा गया, उसमें ग्राह्य पक्ष क्या है, यह देखना है। यदि उपादेयता को केवल नैतिक दृष्टिकोण से देखेंगे, तो कठिनाई होगी। नैतिकता का दृष्टिकोण किसी युग विशेष की आवश्यकता से ही उत्पन्न है, या उसका स्थायी महत्व है, यह भी देखना है।

रीतिकाल के विषय में द्विवेदी युग में सामाजिक आवश्यकता और सुधारवादी विचार-धारा के कारण वाद-विवाद उठा। किन्तु रीतिकाल की दृष्टि शुद्ध कलात्मक रही है। रीति-काव्य में रागात्मकता की अभिव्यक्ति कलात्मकता के माध्यम से हुई। यह भी है कि रीतिकाल की कल्पना 'सेकुलर' (Secular) थी। मुसलमान कवियों ने इसीलिए कविताएँ लिखीं। रीतिकाल में राधा-कृष्ण प्रेमी और प्रेमिका के रूप में आते हैं। उनका रूप शुद्ध मानवीय है। रीति-कवियों ने सौन्दर्य की अभिव्यक्ति की है। उनकी यात्रा अव्यक्त से व्यक्त की ओर है। इसीलिए मध्यकालीन संस्कृति का अंकन मिले-जुले रूप में हुआ है।

गोरखपुर में कुल ९ प्रश्नपत्र हैं। रीतिकाल कहीं भक्तिकाल के साथ है, कहीं आदिकाल के साथ। यदि अलग इसका पर्चा नहीं रखा जा सकता, तो भक्तिकाल के साथ रखना उचित है। पाठ्यक्रम में वह रहे, इसमें मतभेद नहीं। किन्तु रीतिकाल के सम्बन्ध में फैले अनेक प्रवादों का

निराकरण करना है। कालक्रम-विकास की दृष्टि से भक्तिकाल के साथ इसका संयोग उचित ही कहा जायगा।

डॉ० विजयपाल सिंह की दृष्टि में रीति-साहित्य का पुनर्मूल्यांकन होना चाहिए और पाठ्यक्रम में उसे उचित स्थान मिलना चाहिए। रीतिकाल को भक्तिकाल से मिलाना चाहिए, लेकिन दक्षिण में। वैसे भक्तिकाल को अलग रखना ठीक है। इस पर डॉ० नगेन्द्र ने आपत्ति की है। मेरी राय में या तो भक्तिकाल और रीतिकाल एक साथ होने चाहिए या बिल्कुल अलग। शुक्ल जी के कारण केशव आदि पर आज तक विचार नहीं हो सका। कुन्तक का वक्रोक्तिवाद कौन नहीं मानेगा? परम्परा से चलने से कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। केशव को मेरी दृष्टि में रीतिकाल का प्रवर्तक न मानना अनुचित है।

डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव के दृष्टिकोण से संस्कृत-काल से लेकर रीतिकाल तक जो व्यावहारिक पक्ष तथा सैद्धान्तिक पक्ष परम्परया रहा है, वह सभी कुछ रीतिकाल में हमें एक साथ उपलब्ध हो जाता है—विशेषकर व्यावहारिक पक्ष और उसमें भी अलंकार या काव्यशास्त्र। कविबद्ध परम्परा की दृष्टि से रीतिकाल का यह महत्त्व है। दूसरी दृष्टि है भाव-बिन्दु की, जिसे हम प्रेम-पन्थ कह सकते हैं। सद्-असद् की दृष्टि से नहीं, बल्कि मैं अपनी बात मनोविज्ञान की दृष्टि से रखूँगा। प्रेमपंथ को देखने के लिए रीतिकाल को देखना होगा। वीरगाथा काल भी प्रेम के कारण ही महत्वपूर्ण कहा जायगा युद्ध तो उसी का अंग मात्र है। फिर प्रेम ही उदात्तीकृत होकर भक्तिकाल में प्रस्फुटित हुआ। फिर रीतिकाल शुद्ध प्रेमपरक है ही, जिसकी परम्परा गाहासत्तसई और आर्यासप्तशती से चली। बिहारी ने राजा से लेकर सामान्य तक का प्रेमात्मक रूप रखा। इस प्रकार भावना और परम्परा दोनों दृष्टियों से रीति-काव्य महत्वपूर्ण है।

पटना में रीतिकाव्य को अलंकारशास्त्र या काव्यशास्त्र से मिला देना उचित था। क्योंकि वहाँ रीतिकाव्य विकल्प रूप में अलग प्रश्नपत्र है।

डॉ० गोपीनाथ तिवारी के अनुसार शब्द को पकड़ना काव्य के लिए आवश्यक है। भाव के साथ कलात्मक दृष्टि तो रीतिकाल में ही है, जहाँ शब्द से व्यंजनाएँ फूटती हैं। अलंकार, रसादि के माध्यम से ये व्यंजनाएँ और महत्वपूर्ण हो उठी हैं। रीतिकाव्य के माध्यम से छात्र को कलात्मक दृष्टि दी जा सकती है। मैं चाहता हूँ कि रीति-काव्य पर पूरा और अलग प्रश्नपत्र हो। रीतिकाव्य की कलात्मक दृष्टि भक्तिकाल के कवियों—सूर-तुलसी—में भी है। दूसरी ओर भक्ति की धारा रीतिकाल में लुप्त नहीं होती। यदि विवशता है, तो भक्तिकाल के साथ ही रीति-साहित्य रख सकते हैं। यह उचित है। क्योंकि रीति को भक्ति से सर्वथा पृथक् नहीं किया जा सकता। मेरे तथा कुछ अन्य विश्वविद्यालयों में भक्तिकाल रीतिकाल एक साथ हैं।

एक प्रश्न यह है कि रीतिकाव्य में किन-किन कवियों को रखें। इसके साथ यह भी आवश्यक है कि एक ग्रन्थ ऐसा अवश्य रखें, जिसका सम्बन्ध नायिका-भेद तथा अलंकार से हो। इससे छात्र केवल रीतिकाव्य को नहीं समझेंगे, अपितु भक्तिकाव्य और आधुनिक काव्य को भी समझ सकेंगे।

डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव की राय में रीतिकाल में भक्तिकाल के प्रति श्रद्धाभाव है।

वस्तुतः कवियों की दो परम्पराएँ हैं। एक साधु कवि हैं, जैसे व्यास और दूसरे शुद्ध कवि हैं, जैसे कालिदास। भक्तिकालीन कुर्सी कुछ ऊँची मालूम होती है। ममता तो रीतिकाल के प्रति ही जागती है। रीतिकालीन कवि हमें निकट से स्पर्श करता है। विशुद्ध कला-पक्ष का वैभव इसी काल में है। भक्तिकालीन कवि सिद्ध योगी थे और रीतिकालीन कवि गृहस्थ-भोगी थे।

सूफ़ी काव्यधारा में भी रीतिकालीन परम्परा के बीज मिलते हैं। सूफ़ी प्रेम-काव्य में भी वही मादन भाव है। प्रश्न है कि विद्यापति-जयदेव में रीतिकाल के बीज हैं या आर्यासप्तशती में ? सूफ़ी काव्यधारा रीतिकाल की सुविधाजनक पृष्ठभूमि है। घनानन्द का काव्य सूफ़ियाना और दर्शनीय है। रीतिकाल लौकिक राग का क्षेत्र है। इसलिए इसके लिए पूरा प्रश्नपत्र होना चाहिए।

हमारे विश्वविद्यालय में वैकल्पिक प्रश्नपत्र में इसे पूरा स्थान मिला है।

रीतिकालीन साहित्य केवल प्रौढ़ों के लिए है। अतः इसे केवल स्नातकोत्तर कक्षाओं में रखना उचित है। साथ ही रीतिबद्ध एवं रीतिमुक्त या स्वच्छन्द धारा के कवियों को उचित प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए। जैसे घनानन्द जैसे स्वच्छन्द कवि को, जिन्होंने भारतेन्दु और प्रसाद पर अपनी छाप छोड़ी, बिहारी और केशव के साथ अवश्य स्थान मिलना चाहिए।

डॉ० देवराज उपाध्याय की राय में रीतिकाल की उपेक्षा नहीं हो रही है। हमारे विश्वविद्यालयों में कालक्रम के अनुसार पाठ्यक्रम को नहीं बाँटा गया। विद्वान् जैसा होता है, काल को महत्व देता है, कवि व्यक्तित्व को वस्तुतः अमरता देता है। एक युग की कविता सदैव महत्वपूर्ण होती है। सच्ची अभिव्यक्ति जहाँ होती है, वह प्रिय ही होती है। कविता पर विचार करते समय हमें उदार दृष्टि रखनी चाहिए। कवियों पर विचार करते समय ध्यान रखना चाहिए कि जिस विषय को कवि की प्रतिभा छुए, वही ग्राह्य है। सद्-असद् का प्रश्न नहीं, हमें प्रवृत्तियों को देखना है। प्रवृत्ति की स्वच्छन्द अभिव्यक्ति ही वन्दनीय है।

रीतिकाव्य के कवियों का आलोचना के मत से चुनाव कर लेना आवश्यक है।

डॉ० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' के कथनानुसार रीतिकाल ही वह काल है, जिसमें कला का पूर्ण विकास हुआ। भक्तिकाल का उद्देश्य भक्ति का प्रसार था। यद्यपि उसमें कला है। पर रीतिकाल के कवियों ने साहित्य के लिए काव्य लिखा। रीतियुग में शुद्ध कलात्मक दृष्टिकोण है। जब संस्कृत कवियों का मुसलमान कवियों से मुक़ाबला हुआ, तब संस्कृत कवियों में प्रतिस्पर्द्धा जगी। उसी का यह विकास है। मुसलमानों के यहाँ नाजुकख़याली मिलेगी। वह उसी प्रतिस्पर्द्धा के कारण रीतिकवियों में भी कम नहीं मिलेगी। रीतिकाल में अलंकार छटा जैसी है; श्लेष और यमक जिस-जिस रूप में आया है, वह फिर कहीं नहीं है। अब तो समस्या-पूर्ति की उस परम्परा का अन्त ही हो गया है जो कवि की प्रतिभा की द्योतक रही है। मेरी राय में रीतिकाल पर पूरा प्रश्नपत्र होना चाहिए।

श्री सुमित्रानंदन पंत ने कहा कि रीतिकाल को आप वरिष्ठ स्थान अवश्य दें, किंतु उसकी सतर्क आलोचना भी करें। मेरी धारणाएँ रीतिकाल के विषय में भिन्न हैं। कला अनेक रूप नहीं, एकरूप होती है। मध्यकालीन कला की एक कमी है कि वह बहुत शाब्दिक है। अपने भूल-

भुलैये में फँस गयी है। जीवन के प्रति रीतिकाल का दृष्टिकोण मध्ययुगीन है। रीतिकाल में कला के एक रूप की पूर्ण परिणति हुई है। रीतिकालीन कला देहाभिमुख है। वह ह्रासकालीन कला है। भक्तिकालीन या रीतिकालीन दोनों दृष्टियाँ मध्यकालीन हैं। आज कला में सामाजिक दृष्टियों का महत्व है। तब उलझन होती है कि एक सीमा में, शाब्दिक कला में ही कैसे बंधा जाय। आज कला के अनेक माध्यम हैं। वसन्त को हम क्यों 'केलि' और 'कुंजों' में ही देखें! क्यों यमकादि अनिवार्य हों। पहलवान की तरह उनका महत्त्व हो सकता है, लेकिन आंतरिक दृष्टि या आत्मा की जहाँ आवश्यकता है, वहाँ यह सब व्यर्थ हैं। भाव के विभिन्न स्तर हुआ करते हैं। रस का एक भीतरी रूपान्तर भी होता है। आज हम प्रेम के लिए प्रस्वेद कुछ नहीं प्रमाणित कर सकते। क्योंकि अब प्रेम सूक्ष्म हो गया है। तब पिटी-पिटाई परम्परा से विद्यार्थी का परिचय करना ठीक नहीं। उसे स्वस्थ दृष्टिकोण देना संगत है। छायावाद ने नारी को स्वास्थ्य दिया। उसी तरह विद्यार्थी को भी वैचारिक स्वास्थ्य की आवश्यकता है। व्यापक मूल्यांकन की भी आवश्यकता है। तभी हम कामायनी का भी ठीक मूल्यांकन कर सकेंगे।

शक्ति अतीत के शव से ग्रहण की जाती है?

प्रवर्तक **डॉ० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र** ने पुनः कहा: भक्ति साहित्य श्रद्धा का है, रीति साहित्य प्रीति का। साहित्य का दर्शन और प्रकार के दर्शनों से भिन्न है। साहित्य और दर्शन दोनों के विकास भिन्न कोटि की वस्तुएँ हैं। आभ्यंतर अभिव्यक्ति रीतिकाल में कम थी, बाह्य अधिक। लेकिन यह कहना कि आभ्यंतर अभिव्यक्ति एकदम नहीं थी, ठीक नहीं। रीतिकाल के युग में हमारा सामाजिक जीवन इतना विस्तृत नहीं था। यदि विस्तृत सामाजिक जीवन मिलता, तो विकास कुछ भिन्न होता। आधुनिक युग में वह विस्तृत हो गया है यह माना जा सकता है।

जगत् को किस दृष्टि से देखा गया, इसी दृष्टिकोण से मैंने भक्ति को वार्धक्य का और रीति को यौवन का साहित्य कहा था। क्योंकि उसकी भौतिकता महत्वपूर्ण है।

कवि की साधना बहुत ऊँची साधना है। सौ-सौ प्रबन्धों की रसात्मकता सिद्ध कवि एक मुक्तक में ला सकता है। यहाँ मैं श्लेष और यमक को विशेष महत्त्व नहीं दे रहा हूँ। अभिनव ने तंत्रालोक लिखा, किंतु उसका उपयोग साहित्य में नहीं किया। यही स्थिति आज भी होनी चाहिए। केशव ने संस्कृत साहित्य के श्लेष का वैभव उतार कर रख दिया। सेनापति ने संस्कृत भाषा की सहायता नहीं ली, लेकिन साधारण भाषा द्वारा वैभव भर दिया है। भाषा की जो प्रौढ़ता सेनापति के श्लेष से प्रकट हुई, वह बतलाती है कि हिंदी भाषा की सार्थकता कितनी है।

अध्यक्ष **डॉ० हरिहरप्रसाद टंडन** के अनुसार रीतिकाव्य को हम ऐतिहासिक महत्व दे सकते हैं। पर सबका सब वही पढ़ाया जाय, यह कहना अनुचित है। दो ही बातें हो सकती हैं—या तो अलग प्रश्न-पत्र के रूप में या किसी के साथ।

●

६

गोष्ठी

दिनांक : ९-१०-६४

समय : सायं ३ से ६ बजे

विषय : भक्तिकाव्य

प्रवर्तक

- डॉ० हरबंशलाल शर्मा — अलीगढ़

अध्यक्ष

- प्रो० ए० चन्द्रहासन — केरल

वक्ता

- डॉ० विजयेन्द्र स्नातक — दिल्ली
- डॉ० रामलाल सिंह — सागर
- डॉ० रामनिरंजन पाण्डेय — हैदराबाद
- पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र — मगध
- डॉ० गोवर्धननाथ शुक्ल — अलीगढ़
- डॉ० गुरुप्रसाद टंडन — उज्जैन
- श्री सुमित्रानन्दन पंत — प्रयाग
- डॉ० अम्बाशंकर नागर — अहमदाबाद
- डॉ० रामकुमार वर्मा — प्रयाग
- प्रो० कल्याणमल लोढ़ा — कलकत्ता

प्रवर्तक **डॉ० हरवंशलाल शर्मा** के विचार से हिन्दी साहित्य के विद्यार्थी को भक्ति-साहित्य के अध्ययन के विषय में ज्ञान प्राप्त करना कोई विवाद्य प्रश्न नहीं है। वह किसी भी स्तर पर आवश्यक है। केवल तीन विश्वविद्यालयों में भक्तियुगीन भक्ति-साहित्य का अध्ययन होता है। चार विश्वविद्यालयों में भक्तिकालीन साहित्य का अध्ययन हो रहा है। जबलपुर, केरल, कलकत्ता और विश्वभारती में सम्पूर्ण भक्तिकालीन काव्य का अध्ययन होता है। अन्य विश्वविद्यालयों में रीतिसाहित्य तथा मध्ययुगीन भक्ति-साहित्य का अध्ययन होता है। यानी हिन्दी की सभी कक्षाओं में कुछ न कुछ भक्ति-साहित्य का पठन-पाठन होता ही है। मात्रा-परिमाण की दृष्टि से ३५० शोध-ग्रंथ ऐसे हैं, जिनका सम्बन्ध भक्तिकाल से है। शोधार्थी ९५% भक्तिकालीन विषयों पर शोध करते हैं। भक्तिकाल का लोकप्रियता और पाठ्यक्रम में उसका महत्त्व अविवाद्य है।

साहित्य की दृष्टि से ये काल-विभाजन नहीं किये गये हैं। केवल हिन्दी इतिहास की दृष्टि से ऐसा हुआ है। संस्कृत, पालि और प्राकृत में ऐसा नहीं है। यही हिन्दी का वैशिष्ट्य है। इतिहासकारों ने केवल भक्तिसाहित्य के सर्जन के प्रति सचेतनता व्यक्त की, समस्या के प्रति नहीं। भक्ति-साहित्य की सार्थकता उसकी आदर्शवादिता और सार्वजनीनता के कारण है। इसलिए इसका यह अभिधान सार्थक है। सगुण, निर्गुण का झमेला पहले नहीं था। न मंत्र-काल में, न वैदिक युग में। उस युग में विराट पुरुष की कल्पना थी। पुरुष-सूक्त की कल्पना उसी का परिणाम है। उपनिषदों में भी सगुण-निर्गुण की इतनी कल्पना नहीं है। यहाँ तक कि निर्गुण की भी नहीं। इसके संबंध में दो तत्त्व हैं—(१) निर्गुण के सम्बन्ध से सगुण की कल्पना (२) अवतारवाद से सगुण की कल्पना। यदि निर्गुण सगुणसापेक्ष होगा, तब सगुण की कल्पना पहले होगी। अवतारवाद के दो रूप हैं—(१) अवतार और (२) अवतारी। अवतार-भावना भारत में पुराण-युग की देन है। गुण एक पारिभाषिक शब्द है। न्याय के अनुसार २४ गुण होते हैं। सभी शास्त्रों में गुण अलग-अलग हैं। यूँ कहने को गुणत्रय या षड्गुणाः कहा जाता है। सगुण की व्याख्या में त्रिगुण विशिष्ट और निर्गुण में त्रिगुण निर्विशिष्ट महत्त्वपूर्ण है। गीता की परम्परा में आचरण पक्ष प्रबल है। सत्य क्या है? सिद्धान्त का अर्थवाद या ब्राह्मण ग्रन्थों का अर्थवाद? गीता भी एक शैली मात्र है, क्योंकि सात सौ गीताओं का उल्लेख मिलता है, और ये गीताएँ दर्शन की ही हैं। इनमें से चार सौ से ज्यादा मिलती भी हैं। सगुण छः गुणों से भी विशिष्ट होता है।

भक्तिकाल के प्राणरूप प्रेम-तत्त्व पर विदेशी प्रभाव है इसकी चर्चा व्यर्थ है। इसका निराकरण आवश्यक है। प्रभावित होने या तादूरूप्य की भावना भारतीय भावना नहीं है, आत्मसात् करने की प्रवृत्ति है। इसी प्रकार भक्ति की परम्परा दक्षिण से आयी, जिसे रामानन्द

लाये, इस बात से मेरा विरोध है। वह दक्षिण से उपजी, मैं इससे भी सहमत नहीं। दक्षिण के माध्यम से वेद आया हो, हो सकता है, किंतु उत्तरापथ की भक्ति दक्षिणापथ का न्यास नहीं है।

भारतीय धर्मेतिहास में तीन क्रान्तियाँ हुईं। (१) पहली क्रांति तब हुई, जब उत्तर में पंडितों का आविर्भाव हुआ (२) फिर जब वे दक्षिण गये और (३) फिर जब वे दक्षिण से उत्तर की ओर प्रवृत्त हुए।

उत्तरापथ अवतारों की लीलाभूमि रहा है। तीर्थभूमि भी रहा है। इसलिए दक्षिण के आचार्यों को यहाँ आना पड़ा। ये क्रांतियाँ छठीं सदी ई० पू० से लेकर ३री सदी ई० पू० तक, फिर ३री सदी ई० पू० से लेकर १ली सदी तक और फिर ६ठीं सदी तक क्रमशः हुईं। १४वीं सदी में ईसाइयों के यहाँ क्रान्ति हुई। वही स्थिति यहाँ भी थी। बाद में भी यही स्थिति सर्वत्र बनी रही।

राम के माध्यम से सगुण भक्ति की स्थापना काशी में हुई। ८वीं सदी में दाशरथी निर्गुण रूपों की स्थापना हुई। तंत्रों में राम को शिव रूप में ग्रहण किया गया। तंत्रालोक में अभिनवगुप्त ने दोनों रूपों के बारे में कहा है। प्रामाणिक वैष्णवमताब्जभास्कर में तमिल वेद तथा दाक्षिणात्य तीर्थों के प्रति आस्था है। यह स्थिति कदाचित् राघवानंद तथा रामानंद के सामीप्य के कारण भी हो सकती है। यही स्थिति कृष्ण की है। दक्षिण के योगदान से उत्तर के भक्ति-आन्दोलन में वेग आया।

भक्ति-साहित्य के लिए सम्पूर्ण भारतीय-अभारतीय परम्पराओं का ज्ञान आवश्यक है। कृष्णभक्ति में आभीरों की परम्परा का ज्ञान अत्यावश्यक है। इस्लामी परम्पराओं को हमने कहाँ तक आत्मसात् किया, यह भी जानना जरूरी है। हमें तुलसी में घोर परम्परावादी ब्राह्मण के दर्शन होते हैं। अखाड़ों तक में हनुमान की मूर्ति तथा 'या अली' के स्थान पर जय हनुमान के नारे का प्रचार इस संबंध में ध्यान देने योग्य है। तमिल में बाल-वर्णन सूर से भी ज्यादा है। इसलिए कम से कम अनुवादों के माध्यम से ही उसका अध्ययन आवश्यक है। बंगला और गुजराती का अध्ययन भी अपेक्षित है। ऐसा कुछ पंजाब में अलग से अवश्य नहीं है। फिर भी सारे संदर्भ और सारी परम्पराएँ जानना आवश्यक हैं।

विचार-विनिमय में भाग लेते हुए **डॉ० विजयेन्द्र स्नातक** ने कहा: भक्ति साहित्य को हम इसलिए नहीं पढ़ाते कि वह कहाँ से आया या इसी तरह की अन्य बातों का विवरण प्रस्तुत करने के लिए भी उसे नहीं पढ़ाते। मैं काव्य-सौन्दर्य को महत्त्व देता हूँ, और हम उपलब्ध साहित्य को पढ़ाते हैं। दूसरा पक्ष भक्ति-काव्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि है। ऐसा नहीं है, सभी अध्यापक दार्शनिक पृष्ठभूमि का ज्ञान रखते हैं। लेकिन पढ़ाते सभी हैं। मैं औरों की तो बात नहीं करता, लेकिन मेरे पास इसके लिए कुछ गुर है। एक पक्ष यह भी है कि भक्ति-काव्य विशिष्ट सम्प्रदायों का साहित्य है। वह दर्शन से भिन्न है। उनका साधना पक्ष है। कुछ का साधना-पक्ष महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार तीन पक्ष हुए। तब किन-किन परिप्रेक्ष्यों में भक्ति-साहित्य पढ़ाया जाय—काव्य-सौन्दर्य, सम्प्रदाय-ज्ञान और साधना पद्धति—यह भी विचारणीय है। अध्यापक का मोह स्वभावतः काव्य सौन्दर्य पर होता है। शर्मा जी परम्पराओं के बोध पर बल देते हैं। फिर यह

भी है कि आज दृष्टि नवीन है। सामाजिक, राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टियों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। यह स्थिति अन्य कालों में भी हो सकती है। हम भक्तिकाल का इतिहास नहीं, बल्कि भक्ति-काव्य पढ़ाते हैं। इस दृष्टि से रीति-काल में भी कुछ भक्ति-काव्य है। इसलिए उनको भी पढ़ाना चाहिए। परंपराओं के बोध के लिए यह आवश्यक है। कवि रूप में भारतेन्दु भक्त हैं। बल्कि यही उनकी सीमा है। यदि कोई श्रेष्ठ कवि परवर्ती काल में हुआ है, तो उसे पढ़ाना चाहिए।

फिर निर्गुण सगुण सापेक्ष है, या सगुण से पहले निर्गुण-कल्पना का प्रश्न अवश्य है।

डॉ० रामलाल सिंह के शब्दों में साहित्य जीवन के निर्माण में साधन बनकर आता है, साध्य बनकर नहीं। देश का वर्तमान अतीत से उद्भूत होता है। इसलिए भक्ति-काव्य का अध्ययन जीवन एवं साहित्य की पृष्ठभूमि में आवश्यक है। जीवन में संतुलन स्थापित करने के लिए वह ज़रूरी है। शिक्षा का लक्ष्य विद्यार्थी का व्यक्तित्व है। साहित्य की दृष्टि और जीवन का दृष्टिकोण दो दृष्टियाँ हैं। यदि अध्ययन जीवन गत दृष्टिकोण से अलग हो जायगा, तो विद्यार्थियों को रुचि न रहेगी। जीवन की चरम वास्तविकताओं के रूप में साहित्यिक सौन्दर्य के माध्यम से भक्तिकाव्य का अध्ययन विद्यार्थियों के लिए लाभप्रद है। उदात्तता एक मूल्य है, जो भक्ति-काव्य में है और वह अन्य विदेशी साहित्यों में नहीं है। छात्र की विशिष्ट रुचि का परीक्षण भी ज़रूरी है। इसके लिए सेमिनार कक्षाएँ लगें और उनकी मानसिक भूमि की तैयारी की जाय। आज हम बहुत भौतिक हो गये हैं, इसलिए भक्तिकाव्य का अध्ययन और आवश्यक है। अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष की दृष्टि से सर्वांगीण विकास भक्तिकाव्य द्वारा ही सम्भव है। स्वयं जब तुलसीमय होकर अध्यापक पढ़ाये, तब उसे विद्यार्थी मिलेंगे। अध्यापक में 'धर्म की रसात्मक अनुभूति' होनी चाहिए। भावात्मक एकता की दृष्टि से भी भक्तिकाव्य का अध्ययन आवश्यक है। क्योंकि दक्षिण के विद्यार्थी भक्त कवियों में अधिक रुचि लेते हैं।

डॉ० रामनिरंजन पाण्डेय ने उस्मानिया विश्वविद्यालय के विषय में बताया—प्रश्न-पत्र प्रथम में हमारे यहाँ आदिकाल और मध्यकाल पढ़ाया जाता है, जिसमें आदिकाल का बहुत कम अंश पढ़ाया जाता है।

डॉ० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार विद्यार्थी प्रायः अंकोपलब्धि के लिए भक्तिकाव्य का अध्ययन करता है। आगे डॉ० मिश्र ने दामोदर गोस्वामी की सर्वतंत्र स्वतंत्रता सिद्ध की और प्रवर्तक शर्मा की बातों के विषय में आलोचना करते हुए बताया कि पाठ्यक्रम और उससे भिन्न अतिरिक्त ज्ञान आवश्यक है। पाठ्य-ग्रन्थों के अतिरिक्त कुछ व्याख्यान भक्ति-काव्य के सम्बन्ध में आयोजित किये जाने चाहिए। भक्ति-काल में सगुण का झगड़ा न खड़ा होता, यदि दो संस्कृतियों का संघर्ष न होता। विशेष परिस्थिति में वल्लभाचार्य ने अपने सगुणवादी सिद्धान्त बनाये। भारतीय संस्कृति केवल कम्पोज़िट नहीं है। सत्यनारायण व्रत-कथा जिसे कहा जाता है, वह फकीर की कथा है। भक्ति-साहित्य और शुद्ध साहित्य का बहुत दूर तक मेल है। ज्ञानमार्गियों के अध्ययन में शुद्ध साहित्यिकता का अंतर है। सम्प्रदाय आचार-पक्ष तथा विचार-पक्ष से दो प्रकार के हैं। पद्य में केवल आचार-पक्ष होता है। सम्प्रदाय अनादि अखंड परम्परा है। भक्ति-काव्य

साम्प्रदायिक साहित्य है। अतः इन सम्प्रदायों का परिचय तो अवश्य कराना होगा। तभी उनके भक्ति-काव्य की पूरी व्याख्या हो सकेगी।

साहित्य में पहुँचकर मनुष्य अपने ऊपर आरोपित प्रवृत्तियों को छोड़ देता है।

भक्ति-काव्य तथा रीति-काव्य हमें रागात्मक सत्ता की ओर ले जाते हैं अतः हम भक्ति-काव्य को रीति-काव्य के साथ रख सकते हैं।

डा० गोवर्द्धन नाथ शुक्ल के अनुसार शोध की दिशा में भक्ति-काव्य ने भंडार दिया है। भक्ति-साहित्य पर शोध-कार्य करने के लिए साहित्यिक साम्प्रदायिक पीठों में पर्यटन की आवश्यकता है। स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में भक्ति-साहित्य के प्रति वैज्ञानिक दृष्टि होनी चाहिए और उनके अंतस्तल तक पहुँच हो, यह दृष्टिकोण भी होना चाहिए।

डॉ० गुरुप्रसाद टंडन की दृष्टि से भक्ति-काल का जो साहित्य हमारे पास है, वह भी आधुनिकता की कसौटी पर खरा उतरता है। भक्ति-काव्य आधुनिक युग की जनवादिता की भावना के अनुकूल है। भक्ति-काव्य हमारे हृदय और मस्तिष्क को तृप्ति देनेवाली विचारधारा है।

श्री सुमित्रानन्दन पंत के विचार से भक्ति-काव्य पढ़ाते समय उसकी पृष्ठभूमि देना आवश्यक है। भक्ति-काव्य को सामाजिक पृष्ठभूमि में, युगीन पृष्ठभूमि में पढ़ाना चाहिए। भक्ति-काव्य का रसात्मक रूप है, इसमें संदेह नहीं। भक्ति को हमेशा मैंने पथ माना है। इस जीवन में उसका उपयोग करना है।

डॉ० अम्बाशंकर नागर ने कहा : हिन्दी की व्याप्ति को ध्यान में रखते हुए ऐसा नहीं कर सकते क्या कि हम चार-पाँच प्रश्न-पत्र अनिवार्य कर दें और कुछ विकल्प रख दें कि विद्यार्थी किसी एक को चुन लें। दूसरा सुझाव यह है कि भक्ति-साहित्य को पढ़ते समय तत्कालीन अन्य भाषाओं के भक्ति-साहित्य का भी परिचय दें।

डॉ० रामकुमार वर्मा के दृष्टिकोण से मुख्य बात अध्ययनगत दृष्टिकोण है। यह तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है: (१) सांस्कृतिक पक्ष, (२) सौन्दर्य-बोध या कला और (३) भक्ति-पक्ष। भक्ति-काव्य इतिहास का सांस्कृतिक मोड़ है; चिन्तन में एक केन्द्र-बिन्दु है; इसे समझना होगा। भक्तिकाल के चार पक्ष मुखर हैं। इसे व्यावहारिक पक्ष से पकड़ना होगा।

हम विद्यार्थियों को अध्ययन काव्य के परिप्रेक्ष्य में कराते हैं, किंतु भक्ति-काल के कवियों को केवल भक्ति के परिप्रेक्ष्य में ही पढ़ाना चाहिए। दार्शनिक पक्ष तो विस्तृत होता जायगा। विद्यार्थियों को उस समस्त पंथों, प्रवृत्तियों का अध्ययन कराना होगा, जिनके बिना वे भक्ति-काव्य को पूर्ण रूप से समझ सकेंगे।

इस प्रकार भक्ति-काव्य को स्वतंत्र प्रश्न-पत्र के रूप में रख सकें, तो अच्छा हो। इससे दक्षिण भारत से भी सम्बन्ध स्थापित होगा।

श्री कल्याणमल लोढ़ा ने बताया कि त्रिवर्षीय पाठ्यक्रम जहाँ है, वहाँ संतुलित एवं समन्वित दृष्टि रखनी चाहिए। भक्तिकाव्य को समस्त भारतीय साहित्य के परिप्रेक्ष्य में देखना होगा। हमें भक्तिकाल के अध्ययन के लिए विशेष दृष्टि और सूत्र पकड़ने होंगे।

शंकराचार्य के समय से जो क्रांति आयी, वह एक बार तुलसी में पूर्णत्व तक पहुँची, भक्तिकाल का प्रभाव समस्त देश पर पड़ा। यह आंदोलन साहित्यिक ही नहीं था। संपूर्ण साहित्य में एक विशिष्ट समन्वय था।

हमें रामभक्ति-काव्य और राम-काव्य का भी अंतर समझना होगा।

पुन: प्रवर्तक **डॉ० हरवंशलाल शर्मा** ने कहा : सभी व्याख्याताओं की तीन कोटियाँ— प्रतिपादक, आलोचक और जिज्ञासु की रहीं। काव्य-सौन्दर्य का प्रश्न है। एम० ए० के छात्रों के समक्ष हमें काव्य-सौन्दर्य ही नहीं रखना है। यदि सांस्कृतिक चेतना नहीं है, तो सौन्दर्य-बोध को भी नहीं समझा सकेंगे। नागर जी के विकल्प की बात विचारणीय है। पर भक्ति-काव्य के संदर्भ में इसको विकल्प रखना बहुत बड़ी बात होगी। हमें इस सम्बन्ध में शिक्षा-प्रणाली की चर्चा भी करनी होगी। त्रिवर्षीय पाठ्यक्रम भी विचारणीय है। इसके साथ 'प्रतिष्ठा' (Hons) का रहना भी लाभदायक है।

अध्यक्ष **प्रो० ए० चन्द्रहासन** की राय में किसी भी भक्त कवि को पढ़ाते समय उसकी सम्यक् पृष्ठभूमि रखना उपयुक्त होगा। यह किस हद तक हो, यह बात अध्यापक और विद्यार्थियों पर निर्भर है।

गोष्ठी

दिनांक : १०-१०-६४
समय : प्रातः ९ से १२ बजे
विषय : भाषा-विज्ञान

प्रवर्तक

- डॉ० उदयनारायण तिवारी — जबलपुर

अध्यक्ष

- डॉ० गुरुप्रसाद टंडन — विक्रम

वक्ता

- डॉ० हरवंशलाल शर्मा — अलीगढ़
- डॉ० भालचन्द्र तैलंग — मराठवाड़ा
- डॉ० वसन्त अनन्त गद्रे — बम्बई
- डॉ० रामलाल सिंह — सागर
- प्रो० राधाकृष्ण मुदलियार — धारवाड़
- प्रो० ए० चन्द्रहासन — केरल
- श्री माताबदल जायसवाल — प्रयाग
- डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव — लखनऊ
- डॉ० राजनारायण मौर्य — पूना
- श्री रमानाथ शर्मा — प्रयाग
- डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव — भागलपुर

प्रवर्तक डॉ० उदयनारायण तिवारी ने कहा : कभी-कभी विद्यार्थियों में अध्ययन सम्बन्धी भिन्न-भिन्न इच्छाएँ होती हैं। वे एक साथ कई विश्वविद्यालयों में स्थित विशिष्ट प्राध्यापकों से उनके विशिष्ट विषय में पारंगत होना चाहते हैं। वे यदि एक विश्वविद्यालय से दूसरे विश्वविद्यालय में नहीं जा सकते, तो उनकी रुचि अविकसित रह जाती है। इसलिए चार प्रश्न-पत्र ऐसे होने चाहिए, जिससे सभी विश्वविद्यालयों में समानता का स्वर तैयार हो।

सबसे पहले कलकत्ते में हिन्दी का अध्ययन प्रारम्भ हुआ। उससे पूर्व आठ प्रश्न-पत्र हिन्दी साहित्य सम्मेलन में थे। इसके बाद हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी का अध्ययन शुरू हुआ।

पाठ्यक्रम ऐसा बनाना चाहिए, जिससे दक्षिण के भाइयों को भी संतोष हो और अन्यों को भी। जितने विश्वविद्यालय हैं, वहाँ भाषा-शास्त्र पढ़ाया जाता है। भाषा-शास्त्र एक बहुत व्यापक विषय—विज्ञान के रूप में रहा है और टेक्नालाजिस्ट के लिए भाषा-शास्त्र ज़रूरी भी है।

भाषा एक सुपर स्ट्रक्चर (Super structure) है। रूस में एक विचार-प्रवर्तन हुआ कि पुरानी भाषाएँ बूर्जुआ हैं। नयी भाषाएँ प्रोलेतेरियत हैं। वे उसमें भी मार्क्सवादी, पूँजीवादी, पुरोहितवादी दृष्टि घटाने लगे। ऐसा मार्क्सवाद के साथ भाषा के बारे में सोचने से हुआ और ये दो विभाजन किये गये। दूसरी सामान्य जन की भाषा कहलायी। रूस और अमेरिका में इसमें भी प्रतिस्पर्द्धा है। अमेरिका में भाषा-विज्ञान अत्यन्त उन्नत है। किंतु भाषा प्रोलेतेरियत या बूर्जुआ नहीं होती। भाषा एक औजार (instrument) है। सब के लिए। विदेशों में भाषा-शास्त्र और सिम्बॉलिक लॉजिक (Symbolic Logic) महत्त्वपूर्ण है। अमेरिका में गणितीय (mathametical) भाषा-विज्ञानी कहता है कि वह पाणिनीय पद्धति पर है। इसलिए भारतीयों को घबड़ाना नहीं चाहिए। वहां संस्कृत का ही पूर्ण अध्ययन हुआ है और पाणिनि ही आज तक के सबसे बड़े भाषा-शास्त्री हैं। यूरोप ने जो भाषा-विज्ञान में देर में उन्नति की, उसका कारण ग्रीक आकर्षण है। पाणिनि की परिभाषाएँ अत्यन्त कठिन हैं। पाणिनि के सरलीकरण से बड़ा लाभ हुआ। वे (अमेरिकी) अपने को पाणिनि का उत्तराधिकारी मानते हैं। उन्होंने कहा, हमने पाणिनि की पुनः खोज (rediscover) की है।

पाठ्यक्रम में हमेशा उपयोगिता का ध्यान रखना है। यहाँ तक कि भाषाओं का अध्ययन भी इसीलिए होता है। यूरोप में सारी पढ़ाई उपयोगिता के लिए होती है। मात्र कला या आशीर्वाद के लिए नहीं। वहाँ हर भाषा के लिए प्रोफ़ेसर हैं। हमारे देश की विभिन्न संस्कृतियों के समान ही अनेक भाषाएँ भी हैं। ग्रियर्सन के भाषा-सर्वेक्षण से यह स्पष्ट है। ग्रियर्सन के भाषा-सर्वेक्षण में नागालैण्ड की ढेरों भाषाएँ हैं, जिनका पूरा अध्ययन इंग्लैण्ड में हुआ है। भाषा-विज्ञान की उपयोगिता युद्ध की दृष्टि से भी विचारणीय है। भविष्य में युद्ध की बहुत सम्भावना

है। यूरोप में इसी को ध्यान में रखकर सारी भाषाएँ सिखायी जाती हैं। प्रतिरक्षा-विभाग की ओर से अमेरिका में भाषाओं का अध्ययन हो रहा है। पाठ्यक्रम में हमें अपनी सीमा और शक्ति का ध्यान रखना है। पाठ्यक्रम बनाते समय हमें स्वार्थ भी देखना है।

भाषा-विज्ञान के दो पक्ष हैं: (१) ऐतिहासिक और (२) वर्णनात्मक पद्धतियाँ। हम व्यावहारिक (applied) भाषा-विज्ञान या तो नहीं पढ़ाते या कम पढ़ाते हैं, सिद्धान्त तो बहुत पढ़ाते हैं। उदाहरणार्थ ग्रिम-नियम है। ग्रिम स्वयं भूलभुलैया में था। वह वर्ण और ध्वनि में अन्तर नहीं समझता था। मौखिक परम्परा ही असली परम्परा है। लिखित गौण परम्परा है। भाषा का अर्थ है भाष् यानी मौखिक। वेद और श्रुति मौखिक हैं, जिनमें उच्चारण की निश्चित और लंबी परम्परा है। जैसे स्वर के माहात्म्य से अर्थ परिवर्तन हो जाता है, यह हम उस मौखिक परम्परा से ही जान सकते हैं। जैसे बाघिन, कुतिया या बिल्ली अपने बच्चे को बिना दाँत लगाये मुँह से पकड़कर ले जाती है, उसी तरह वर्णों के उच्चारण में सावधानी बरतनी चाहिए ; यह हमारे यहाँ बहुत पहले कहा जा चुका है। हमारे यहाँ यह शिक्षा गुरुओं द्वारा दी जाती थी। यूरोप में यह शिक्षा औजार (instrument) द्वारा दी जाती है ; इस दृष्टि से कम से कम ५० अंकों का (descriptive linguistics) वर्णनात्मक भाषा-विज्ञान होना चाहिए। इससे तकनीक मालूम होगी, जैसे पाठालोचन और लोकसाहित्य से हुई है।

आज नयी खोजों से लाभ उठाना जरूरी है। भाषा-विज्ञान का आधुनिकीकरण आवश्यक है। भाषा की उत्पत्ति कैसे हुई, इस तरह के प्रश्नों पर विचार करना आज व्यर्थ है। १७९२ ई० में पेरिस की भाषा-विज्ञान-परिषद् ने भाषा की उत्पत्ति से प्रति क्रोध व्यक्त किया था।

भाषा के सम्बन्ध में स्वतः इतने प्रश्न है कि सभी व्यक्ति काम करने लगें, तो भी पूरा न हो। अतः भाषा विज्ञान के पाठ्यक्रम को इतना व्यावहारिक बनाना है कि विद्यार्थियों को सीधा लाभ हो।

हिन्दी भाषा का प्रचार और प्रसार व्यापक रूप में हो रहा है। अतः यह ध्यान रखना है कि वहाँ की ध्वनि को परिष्कृत माना जाय। हमें हिन्दी भाषा की ध्वनि का मानकीकरण करना है। उसका एक प्रतिमान (Standard) मानना है। उपदेश देने का अधिकार उसी को है, जिसकी वाणी शुद्ध हो। यह प्रश्न पतंजलि के समय भी था। बालकृष्ण शर्मा नवीन का उच्चारण मेरी दृष्टि में ठीक, मधुर और अच्छा था। उच्चारण एक मुख्य वस्तु है। प्रतिमानीकृत उच्चारण सिखाने के लिए फोनोग्राम, मशीनरी, यंत्र चाहिए। अमेरिका में प्रतिमान चार हैं। इसलिए यह भी कह सकते हैं कि प्रतिमान—हिन्दी के—कई मान लें। भाषा में मुख्य तत्त्व बोधगम्यता है। इस तरह हमें परिनिष्ठित हिन्दी की ध्वनि का निर्धारण करना है। हमें यह भी देखना है कि परिनिष्ठित हिन्दी कौन बोलता है। कक्षा के लिए एक बनावटी हिन्दी है। घर की बोली उसे प्रभावित करती रहती है। एक सर्वमान्य उच्चारण की खोजकर ध्वनि का स्थान निश्चित कर देना है। और यह कार्य डोनियल जोन्स के cardial vowels (मूलस्वर) की पद्धति के अनुसार ही विकसित किया जा सकता है। इस प्रकार बिना यंत्र के भी हम स्वरों का अध्ययन कर सकते हैं।

बोलियों का साहित्य दक्षिण के लिए रखा जाय या नहीं, प्रश्न यह भी है। क्या दक्षिण में

केवल खड़ी बोली हो ? अवधी और ब्रजभाषा साहित्य, दोनों दृष्टियों से समृद्ध है। इसलिए उन्हें पढ़ना ही होगा। ग्रीक लोगों ने एक सर्वमान्य भाषा अलग की थी, पर साहित्य सभी बोलियों का पढ़ते थे। हम भी ब्रजभाषा और अवधी को नहीं छोड़ सकते।

भाषा का अध्ययन कई दृष्टियों से हो सकता है। आजकल रूपात्मक भाषा-विज्ञान (Structural linguistics) की बात नयी आयी है, जिसके अनुसार शब्द-अर्थ में सम्बन्ध नहीं है, स्वतः शब्द में कोई अर्थ नहीं होता। शब्द का अर्थ वितरण प्रयोग, परिवेश और संकेत आदि के अनुसार बदलता रहता है। जिन ध्वनियों को हमने मान लिया है, वे अर्थकरी (relevant) ध्वनियाँ हैं। शब्द स्वयं में ध्वनिसमूह है, अर्थहीन है। वास्तविक स्थिति यह है कि किसी भाषा के अध्ययन के समय हम मूल ध्वनियों को जान लें, क्योंकि भाषाओं की अपनी रूपरेखा (Structure) है, ध्वनियाँ हैं, व्याकरण है।

विद्वानों की मुझ पर आपत्ति है कि भोजपुरी विचारणीय रूप (Structure) के अनुसार अपनी भाषा है। किन्तु रूप (Structure) की दृष्टि से वह बंगला के निकट है। एक भोजपुरी को बंगला परिवार में रखिए, भाषा के मुख्य तत्व क्रियात्मक रूप (Verbal Structure) की समानता के कारण दो तीन महीने में वह बंगला सीख लेगा। लेकिन दिल्ली जाकर वही भोजपुरी कभी भी खड़ी बोली शुद्ध नहीं बोल पायेगा। सांस्कृतिक दृष्टि से (चाहे भले ही बिहार मगधी क्षेत्र हो) खड़ी बोली आज अन्य बोलियों को प्रभावित करती जा रही है। भोजपुरी, मैथिली चाहे बंगला के निकट हों, खड़ी बोली का बेग प्रसार स्वयं समर्थ है, अतः चिन्ता की बात नहीं।

भाषा का रूप, संस्कृति सभी दृष्टियों से विचार होना चाहिए। संस्कृति की दृष्टि से भोजपुरी आदि हिन्दी की भाषाएँ महत्वपूर्ण हैं। इसके साथ ही साथ भाषावैज्ञानिक रस महत्व-पूर्ण है। पश्चिमी बोलियों में 'आप' वाची शब्द ही नहीं है। मैथिली का क्रियात्मक रूप (Verbal structure) बड़ा दुरूह (Complicated) है।

दक्षिण में न जाने कितने विश्वविद्यालय हैं, जहाँ भाषा का अध्ययन हो रहा है। हिन्दी क्षेत्र पाणिनि की भूमि होते हुए भी उससे अछूता रहे, यह बड़ी शर्म की बात है।

हमारे यहाँ ऐतिहासिक भाषा-शास्त्र, व्युत्पत्ति शास्त्र रहा है। इसलिए हिन्दी और उसकी बोलियों का व्युत्पत्तिमूलक शब्दकोश बनाना चाहिए। इस विषय में पूना में अध्ययन हो रहा है। पूना वाले यूरोपीय सिद्धान्तों को शुद्ध कर रहे हैं। वे प्रमाणित कर रहे हैं कि कहाँ हिन्दी के विषय में वे गलत हैं या कहाँ अपवाद के नियम लागू होने चाहिए। हमें पूना वालों की तरह एक ब्लू-प्रिंट तैयार करनी चाहिए।

आजकल शोधग्रंथ बड़े मोटे देखे जाते हैं, जब कि हमारे यहाँ सूत्र-पद्धति रही है। इसका कारण केवल यही है कि हमारे यहाँ वस्तु (मैटर) ही नहीं है। वस्तु (मैटर) परिशिष्ट (appendix) में होना चाहिए। सिद्धान्त उससे पूर्व लगभग ५० पृष्ठों का चाहिए।

अध्यक्ष **डॉ० हरवंश लाल शर्मा** के विचार से यूरोप को आत्मसात् करते हुए अपनी प्रतिभा को सामने लाना जरूरी है। जरूरी है कि उत्तर दक्षिण को सामने लायें। दक्षिण स्वयं उत्तर

तक आये, यह असामयिक अतः असंगत है। क्षेत्रीय भाषाओं का—विभिन्न विश्वविद्यालयों की क्षेत्रीय भाषाओं का रूप (Structure) की दृष्टि से अध्ययन महत्त्वपूर्ण है।

डॉ० भालचंद्र तैलंग ने बताया कि उस्मानिया विश्वविद्यालय में कुछ दिनों पूर्व उर्दू में भाषा-विज्ञान पढ़ाया जाता था। बाद में देवनागरी या फ़ारसी हुई। लिपि और भाषा बहुत बड़े माध्यम हैं। आज प्रश्न है कि हिन्दी कौन-सी मानी जाय, मद्रासी हिन्दी या पंजाबी हिन्दी या गुजराती हिन्दी। बम्बई की हिन्दी में 'भैया' का अर्थ हो जाता है 'ग्वाला'। झा, ओझा, उपाध्याय उपाध्ये भाषा-भेद से परिवर्तन हैं। हम हिन्दी का भाषा-शास्त्र न पढ़ाकर भाषा-विज्ञान पढ़ाते हैं, जो गलत है। हो सकता है कि अब अपभ्रंश का अध्ययन हो।

भाषा-विज्ञान भाषा की एकता के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। भाषा-विज्ञान की समन्वयात्मक भूमिका जो है, उसका स्थान पाठ्यक्रम में महत्त्वपूर्ण है। पाठ्यक्रम की दृष्टि से भाषा, विभाषा और भाषा-विज्ञान का अध्ययन होना चाहिए। किन-किन भाषाओं का कैसा प्रभाव पड़ता है, यह जानना ज़रूरी है। फिर सभी भाषाओं के सामान्य (common) शब्द हैं, उनके आधार पर भाषा-शास्त्र उपयोगिता की दृष्टि से तैयार करना चाहिए। बोलियों का साहित्य से क्या सम्बन्ध है, इस पर ध्यान देना आवश्यक है। पाठ्यक्रम की विशेषता होनी चाहिए कि विश्व की भाषाओं पर अधिक न ध्यान देकर विभाषाओं के रूपों, इतिहासों, उत्पत्तियों आदि पर बल दिया जाय। हिंदी भाषा पर अन्य भाषाओं के प्रभाव को लेकर ५० अंक का प्रश्न-पत्र होना चाहिए।

डॉ० वसन्त अनन्त गद्रे के अनुसार साहित्य के मूल में भाषा है। साहित्य और भाषा, दोनों साथ-साथ चलते हैं। भाषा की भी एक अपनी धारा होती है। भाषा का वर्गीकरण आदि पढ़ने की विस्तारपूर्वक—आवश्यकता नहीं। सारी भाषाएँ संस्कृत से निकली हैं, अतः सबमें एक सम्बन्ध है। नीरस को सरस बनाना चाहिए। तभी भाषा की एकता स्थापित हो सकती है। ध्वनि-शास्त्र की महत्ता है। भाषा-विज्ञान में लिपि का भी सम्बन्ध निहित है। भाषा-शास्त्र व्याकरण का व्याकरण है। उसका सम्बन्ध अर्थ-विज्ञान से है। दक्षिण में व्याकरणगत नियमों की अपेक्षा अपवादों पर अधिक ध्यान देना पड़ता है।

डॉ० रामलाल सिंह की दृष्टि में भाषा-विज्ञान पढ़ाने की विधि के कारण नीरस हो जाता है। नीरसता दूर करने के उपाय हैं कि समस्याओं के माध्यम से पढ़ाया जाय। जैसे—भाषा के उच्चारण की समस्या, भाषा-लेखन की समस्या, कोष, परिभाषाएँ, राष्ट्रभाषा का स्वरूप, संस्कृति, बोली और साहित्य। इसी प्रकार भाषा का शिक्षण किस प्रकार सरल हो सकता है, इस पर भी ध्यान देना चाहिए। प्रागैतिहासिक जानकारी और सर्वेक्षण के साथ भाषा-विज्ञान का सरलीकरण नितान्त आवश्यक है। साथ ही हिन्दी विभागों को भाषा-विज्ञान के प्रायोगिक पक्ष पर भी ध्यान देना चाहिए। हमें क्षेत्र विधि (field-method) के द्वारा आदिवासियों की बोली आदि का अध्ययन भी करना होगा।

भाषा-विज्ञान का पाठ्यक्रम इतना विस्तृत है कि साल भर में समाप्त नहीं हो पाता। जहाँ पर भाषा-विज्ञान ५० अंक का है, वहाँ १०० का हो। ५० अंक वर्णनात्मक और ५० अंक हिन्दी के भाषा-विज्ञान के लिए रखे जायँ।

प्रो० राधाकृष्ण मुदलियार ने कहा : भाषा-विज्ञान साहित्य का एक रूप और एक अंग नहीं है क्या? दोनों का एक दूसरे से सम्बन्ध नहीं है क्या? क्योंकि अलग समझने पर उलझनें पैदा होती हैं। भाषा-विज्ञान से अलगाव नहीं फैलता क्या? अपनी भाषा के प्रति पक्षपात नहीं हो जाता क्या? मनुष्य जिससे अभ्यस्त होता है, केवल उसी को नहीं समझता क्या! तमिल कहता है—संस्कृत का बहिष्कार। फिर भी उसमें संस्कृत के शब्द हैं। मलयालम में अनुनासिक शब्द हैं। उन्होंने तुलना के लिए अपनी तथा दूसरों की दक्षिणी भाषाओं की कविताएँ तथा उनके हिन्दी अनुवाद भी सुनाये। और बताया कि दक्षिणी भाषाएँ हिन्दी की अपेक्षा अधिक मधुर हैं।

प्रो० चंद्रहासन के विचार से भाषा-विज्ञान का प्रारूप बनाया जाय, जिसमें यह भी निश्चित किया जाय कि क्या पढ़ायें, किस लेखक की किताब पढ़ायें। क्योंकि हम बड़े असमंजस में हैं कि धीरेन्द्र जी की पढ़ायें या उदयनारायण तिवारी की। एक, दूसरे के गुरु हैं, दूसरे, नये हैं। यह बात भी स्पष्ट करनी होगी कि तुलनात्मक अध्ययन—विशेषकर व्याकरण—आदि कैसे पढ़ाया जाय। दक्षिण भारत में यह समस्या कठिन है।

श्री माताबदल जयसवाल के दृष्टिकोण से लालित्य लाने में विज्ञान छूट जाता है। ऐसा लगता है, लोगों में बुद्धि की चेतना नहीं है; पलायन है। भाषा की वैज्ञानिकता आज इतनी बढ़ी है कि भाषा-दर्शन तक बन गया है। उसकी उपयोगिता सर्वतः सर्वत्र है। भाषा-विज्ञानी के लिए गणित, विज्ञान, दर्शन, भौतिकशास्त्र सभी कुछ जानना जरूरी है। भाषा-विज्ञान सभी सामाजिक विज्ञानों में प्रगतिशील माना जाता है। अनेक शाखाओं की खोज भाषा-विज्ञान पर ही आधारित है। प्रयाग में भाषा-विज्ञान या तो एम० ए० में है या शोध के विषय के रूप में है।

सामान्य भाषा-विज्ञान का पूरा परिचय हम दे नहीं पाते। अतः ६० अंक का इसे रखने से विद्यार्थियों को कठिनाई होती है। अतः उलट कर ६० अंक हिन्दी के भाषा-विज्ञान का रखें और ४० अंक सामान्य सिद्धान्त के लिए रखें। सामान्य भाषा विज्ञान की जटिलता के कारण हमारे यहाँ अब हिंदी भाषा-विकास ६० अंक का कर दिया गया है। क्योंकि उसका ज्ञान पक्का होना चाहिए।

हिन्दी भाषा-विज्ञान में सबसे पहला ध्यान जाता है—भाषा के उच्चारण के सम्बन्ध में। प्रतिमानीकृत (standard) हिन्दी किसे मानें, यह समस्या है। उच्चारण पर हमारे यहाँ आरम्भ से ही बल दिया गया है। शोध-कार्य में इसकी अनंत कठिनाइयाँ हैं। जयपुर में डॉ० एलेन ने भी यही प्रश्न किया था। वेदांगों में एक अंग 'शिक्षा' है—ध्वनि-शिक्षा, उसमें भी इसका महत्त्व आँका गया है। इसके लिए—फोनेटिक ड्रिल के लिए मौखिक परीक्षा—१० अंकों की—आवश्यक है। एम० ए० में ध्वनिगत उच्चारण का प्रबन्ध करना अच्छा होगा क्योंकि विद्यार्थी शुद्ध उच्चारण नहीं कर पाते। यदि उच्चारण ठीक नहीं कर पाते, तो मानक हिन्दी स्थापित नहीं हो सकती।

दूसरी बात यह है कि इस पाठ्यक्रम का उपयोग साहित्य में कैसे करें। यदि हमें मध्यकालीन काव्य का अध्ययन करना है, तो आधुनिक स्वर पर नहीं, बल्कि भाषा-विज्ञान की दृष्टि से अतीत के आधार पर होना चाहिए। यदि भाषा-विज्ञान का विद्यार्थी शब्दों की ध्वनियों की

पुनरावृत्ति का अध्ययन कर ले, तो बहुत उपयोगी होगा। आधुनिक हिन्दी में ध्वनियों की आवृत्ति कैसे है—इसका अध्ययन करने पर हिन्दी के प्रचार-प्रसार को बल मिलेगा। मध्यकालीन भाषाओं का वैज्ञानिक अध्ययन मशीनरी से ही सही, पर जरूरी है। आवृत्तियों का अध्ययन शिशु और विदेशियों की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसी प्रकार बोलियों का अध्ययन एकता की दृष्टि से, पाठ्यक्रम की उपयोगिता की दृष्टि से ज़रूरी है।

डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव की राय में भाषा-विज्ञान का स्वतंत्र विषय के रूप में होना आवश्यक है। एम० ए० में भाषा-शास्त्र का अध्ययन आवश्यक है, भाषा-विज्ञान का नहीं। सीमा-निर्धारण आवश्यक है। क्योंकि भाषा-विज्ञान में जो विकास है, वही व्याकरण से असम्मत है। जब तक प्रयोगात्मकता सुनिश्चित न हो, तब तक उस पर बल न दिया जाय। हिन्दी भाषा उद्‌भव और विकास के परिप्रेक्ष्य में ही यदि सामान्य सिद्धान्तों का परिचय करा दें, तो पर्याप्त होगा।

डॉ० राजनारायण मौर्य के मत से पूरे प्रश्न-पत्र को सामान्य सिद्धान्त, आर्यावर्ती और द्रविड़ परिवार में विभाजित कर देना चाहिए। साथ ही हिन्दी की एक बोली का भी अध्ययन हो। सबसे बड़ी और महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हिन्दी में भाषा के अध्ययन के लिए उचित पाठ्य-पुस्तक ही नहीं है। ऐसी पुस्तक तैयार की जा सकती है। हमारे यहाँ प्रशिक्षित अध्यापक नहीं हैं। होने चाहिए। हिन्दी के प्रतिमान की पहचान है कि जिस व्यक्ति के बोलने पर बोलीपन का ज्ञान न हो, उसी की हिन्दी मानक हिन्दी है। स्थान-दृष्टि से हिन्दी का प्रतिमान निश्चित नहीं करना चाहिए। शोध की दृष्टि से सीमावर्ती बोलियाँ महत्त्वपूर्ण हैं। साथ ही भाषा की प्रत्येक शताब्दी का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन किया जाना चाहिए।

श्री रमानाथ शर्मा की दृष्टि से भाषा-विज्ञान से सम्बन्धित सभी प्रश्न विवादास्पद हैं। डॉ० श्रीवास्तव का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा कि 'लखनऊ' का 'नखलऊ' विकास नहीं, मिथ्या सादृश्य है।

उन्होंने आगे कहा : आधुनिक भाषा-विज्ञान में हम ब्लूमफील्ड का नाम लेते हैं पाणिनि के नाम के साथ, जो इंग्लिश भाषा-विज्ञान का पिता कहा जाता है। यदि भाषा-विज्ञान सांस्कृतिक दृष्टि से पढ़ाया जाय, तो वर्णनात्मक और ऐतिहासिक, दोनों भाषा-विज्ञान उसके अंतर्गत आ जायँगे। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से सैद्धान्तिक विकास भले हुआ हो, लेकिन लिखित अब भी अधूरा है। आज भी वाक्य का अध्ययन उतना नहीं हुआ जितना भर्तृहरि के 'वाक्यपदीय' में। इसलिए हिन्दी वाक्य का अध्ययन बेहद जरूरी है।

स्थानापन्न अध्यक्ष **डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव** की विचारधारा के अनुसार साधु-असाधु का पता लोकानुवर्तन से होता है। शब्दों का अनुशासन करने वाला प्रयोगकर्ता होता है। उन्होंने कहा : हमारे विश्वविद्यालय में भाषा-विज्ञान के तीन भाग हैं। (i) सैद्धान्तिक पक्ष—४० अंक, (ii) व्यावहारिक पक्ष—४० अंक, जिसके अंतर्गत बताया जाता है कि सिद्धान्तों का प्रयोग हिन्दी में कैसे हुआ और ध्वनि-परिवर्तन की दिशाएँ भी हैं। और (iii) कोई एक बोली—२० अंक।

प्रवर्तक **डॉ० उदयनारायण तिवारी** ने पुनः कहा : रमानाथ शर्मा ने वाक्यपदीय की जो बात कही, वह संस्कृत के रूप (Structure) पर तो लागू होती है, पर हिन्दी पर नहीं। रूपान्तरित विश्लेषण (transformed analysis) मुख्य तत्त्व है। वाक्यपदीय (syntax) पढ़ाना अभी बहुत जटिल है। प्रशिक्षित अध्यापक की भी बात है। आवश्यकता के अनुसार ही प्राध्यापकों की नियुक्ति होनी चाहिए। भाषा के सम्बन्ध में आकर्षण-विकर्षण या माधुर्य-अमाधुर्य का प्रश्न नहीं उठता मुदलियार ने जैसा कहा। किंतु यह संस्कार पर निर्भर है। इसी प्रकार भाषा के विषय में उन्नति-अनुन्नति का भी प्रश्न नहीं उठता। सापेक्ष दृष्टि से ही उन्नति-अनुन्नति का प्रश्न उठ सकता है। स्कीमो भाषा में कुल ५०० शब्द हैं। लेकिन बर्फ के गलने को लेकर उनके पास कई शब्द हैं, जो हमारे पास नहीं हैं। इस दृष्टि से वह उन्नत भाषा है। भारत का सम्बन्ध टेक्नालॉजी से नहीं रहा है, इसलिए हिंदी में उसके लिए शब्द नहीं हैं। अंग्रेजी में न अनुवाद हो सकने के कारण स्कीमो के वे शब्द—अंग्रेजी उन्नत नहीं हो जायगी। यही बात हमारी भाषा के सम्बन्ध में है। आवश्यकता के अनुसार प्रत्येक जाति की अपनी भाषा होती है। कभी-कभी भाषा की सरलता और कठिनता की बात की जाती है। अमेरिका की होप भाषा में कुल पाँच व्यंजन और तीन स्वर हैं, पर क्या इससे सब वही भाषा पढ़ें। आवश्यकता ही भाषा सिखाती है।

भाषा-विज्ञान की कौन सी किताब पढ़ी जाय, यह प्रश्न भी है। इसमें कोई मतभेद नहीं। धीरेन्द्र जी महामहोपाध्याय हैं, मैं तो उपाध्याय हूँ। इच्छानुसार पुस्तकें चुनी जा सकती हैं। प्रशिक्षित प्राध्यापकों की कमी नहीं। कनिष्ठा, पापिष्ठा और ज्येष्ठा की बात भूलनी होंगी। अमेरिका में ४०-५० वर्ष में लोग प्रोफ़ेसर हो जाते हैं। फोनेमिक लेवेल के लिए यंत्र अनावश्यक हैं। फोनेटिक के लिए भी मशीन ज़रूरी है। मशीनें महँगी हैं। राजनारायण मौर्य ने दक्षिण की भाषाओं के अध्ययन के लिए कहा लेकिन उसमें कठिनाई होगी। उसके लिए ऐसे अध्यापक की आवश्यकता होगी, जो तीन या चार दिनों में भाषा सिखा सकें।

●

८

गोष्ठी

दिनांक : १०-१०-६४
समय : सायं ३ से ६ बजे

विषय : विषय विभाजन और पाठ्यक्रम का स्वरूप

प्रवर्तक

- डॉ० विजयेन्द्र स्नातक — दिल्ली

अध्यक्ष

- डॉ० जगन्नाथ तिवारी — जम्मू और कश्मीर

वक्ता

- डॉ० हरिहरनाथ टंडन — आगरा
- डॉ० श्रीकृष्णलाल — वाराणसी
- प्रो० ए० चन्द्रहासन — केरल
- डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल — कानपुर
- डॉ० केशरीनारायण शुक्ल — गोरखपुर
- प्रो० कल्याणमल लोढ़ा — कलकत्ता
- डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव — लखनऊ
- डॉ० नगेन्द्र — दिल्ली
- डॉ० अम्बाशंकर नागर — अहमदाबाद
- डॉ० सावित्री सिनहा — दिल्ली
- डॉ० देवराज उपाध्याय — उदयपुर
- डॉ० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' — जोधपुर
- डॉ० रामकुमार वर्मा — प्रयाग

प्रवर्तक **डॉ० विजयेन्द्र स्नातक** ने कहा : देश में ३९ विश्वविद्यालयों की स्नातकोत्तर कक्षाओं में हिन्दी पढ़ाई जा रही है। प्रश्न है, पाठ्यक्रम में एकरूपता वांछनीय है या नहीं ? यदि है, तो वह सभी विश्वविद्यालयों में सम्भव है या नहीं। हर विश्वविद्यालय अपनी स्थिति के अनुसार पाठ्यक्रम रखता है। पर मैंने सर्वेक्षण करने की चेष्टा की है। इस सर्वेक्षण के आधार पर हम निर्णय लेने की चेष्टा करेंगे।

मेरी दृष्टि में साहित्य को साहित्य-कृतियों तक सीमित नहीं किया जा सकता। मैं पाठालोचन को अनिवार्य विषय के रूप में रखने के पक्ष में नहीं हूँ। लोक-साहित्य के विषय में भी मेरा यही मत है। एम० ए० कक्षा में विषय-विभाजन का व्यापक धरातल होना चाहिए। काव्यशास्त्र तथा समालोचना को ज्यादा महत्व देने की ज़रूरत है। भारतीय संस्कृति तथा हिन्दी साहित्य का इतिहास एक साथ पूरे प्रश्न-पत्र के रूप में होने चाहिए। भाषा-विज्ञान का अध्ययन अधिक महत्वपूर्ण मेरी राय में नहीं है। उसके लिए एक प्रश्न-पत्र होने की आवश्यकता नहीं है। निबन्ध के साथ अनुवाद का भी प्रश्न होना चाहिए। मेरी दृष्टि में मौखिक परीक्षा न हो, तो ही अच्छा है। परीक्षाएँ दो बार होनी चाहिए। इससे अधिक सतर्कता और जागरूकता बनी रह सकती है।

विचार-विनिमय में भाग लेते हुए **डॉ० हरिहरनाथ टंडन** ने कहा : एक प्रकार का पाठ्यक्रम सभी जगह सम्भव नहीं है। पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में हमें स्थानीय परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं का ध्यान रखना होगा। हाँ, एकरूपता लाने की चेष्टा करनी चाहिए। एम० ए० के विद्यार्थियों के स्तर का भी ध्यान रखना है। पाठ्यक्रम ऐसा हो कि विद्यार्थी प्रतियोगी परीक्षाओं में सहायता प्राप्त कर सकें। जिससे वह उस परीक्षा में अच्छा स्थान पा सकें। सभी विश्वविद्यालयों में चार प्रश्न-पत्र साहित्य से सम्बन्धित हैं।

भाषा-विज्ञान की सामान्य रूपरेखा ही पर्याप्त है। उसका पाठ्यक्रम या तो ऐसा हो कि ज्ञान बढ़े या फिर वैकल्पिक हो।

दक्षिण भारत की भाषाओं को उत्तर भारत में स्थान दिया जाना चाहिए।

डॉ० श्रीकृष्ण लाल के अनुसार एम० ए० प्रथम और द्वितीय वर्ष की परीक्षा एक साथ होने पर प्रबन्ध के लिए विशेष सुविधा रहती थी। उत्तरार्द्ध, पूर्वार्द्ध करने पर यह सुविधा जाती रही है। संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश के प्रश्न-पत्र के लिए भी सुविधा रहती थी। वह दो वर्षों में उन्हें सीख जाता था। अहिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र के विद्यार्थियों को भी सुविधा होती थी। अतः ऐसा अनुभव होता है कि इकट्ठे दो साल की परीक्षा हो, तो विद्यार्थियों को लाभ होता है। पर कुछ हानि भी है। एक साथ ही ८ या ९ प्रश्न-पत्रों को तैयार करना कठिन हो जाता है। प्रथम-द्वितीय वर्ष की परीक्षाएँ अलग-अलग रखने पर प्रश्न-पत्रों की संख्या अधिक रखी जा

सकती है। ऐसी स्थिति में शुद्ध साहित्य से सम्बन्धित पाँच प्रश्न-पत्र हों। लेकिन कुल मिलाकर विचार करने पर दो वर्षों पर परीक्षा ज्यादा उपयोगी लगती है। इससे ग्रीष्मावकाश का भी पूर्ण उपयोग होता है।

प्रो० ए० चन्द्रहासन ने कहा : स्नातक जी के अनुसार मौखिक परीक्षा आवश्यक नहीं है; पर मैं मौखिक परीक्षा के पक्ष में हूँ। मैं अपने अनुभव से कह सकता हूँ कि मौखिक परीक्षा से ही वास्तविक योग्यता की परीक्षा हो पाती है। ऐसा केवल अहिंदी प्रांतों के लिए नहीं, हिन्दी प्रांतों के लिए भी है।

भाषा-विज्ञान का अध्ययन सामान्य होना चाहिए, विशिष्ट नहीं। बोलियों का तुलनात्मक अध्ययन भी कराया जाय, तो दक्षिण के विद्यार्थियों को विशेष सुविधा होगी। निबन्ध के पत्र में यदि अनुवाद रखा जाय, तो अच्छा होगा। एक वैकल्पिक भाषा का अध्ययन भी होना चाहिए। वैकल्पिक भाषा के रूप में मैं संस्कृत को महत्व देता हूं। क्योंकि संस्कृत को मैं हिन्दी की मूलभूत भाषा समझता हूँ। विकल्प में विशेष कवि, लेखक या प्रबन्ध होना चाहिए।

डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल की दृष्टि में लोक साहित्य का अध्यापन प्रयाग को छोड़कर कहीं नहीं हो पाता। लोक-साहित्य में हमारी सांस्कृतिक चेतना का स्वरूप समाविष्ट है, वह अध्ययन नहीं करने से छूट जाता है। अतः किसी न किसी पत्र में उसे अंशतः ही सही अवश्य स्थान चाहिए।

भाषा-विज्ञान सम्पूर्ण रूप से पढ़ाने की वस्तु नहीं। अधिकतर अध्यापकों को ही भाषा-विज्ञान का सम्यक् ज्ञान नहीं। अतः एम० ए० में उसका सामान्य ज्ञान ही पर्याप्त है।

निबन्ध के साथ अनुवाद जोड़ देने से प्रतियोगी-परीक्षाओं के लिए सुविधा होगी।

डॉ० केशरीनारायण शुक्ल की राय में एकरूपता विषयों के सम्बन्ध में हो सकती है, प्रश्न-पत्रों में होना मुश्किल है। इसके क्षेत्रीय आदि कई कारण हैं। प्रश्न-पत्रों की संख्या घटाने बढ़ाने में भी अंतर है।

पाठ्य पुस्तकों की संख्या कम रखी जाय, विषयों का निर्देश अधिक हो।

अनुवाद निबंध के साथ रखा जाय, क्योंकि आज अनुवाद की एक वैज्ञानिक प्रणाली है, वह आज की बहुत बड़ी आवश्यकता है।

व्याकरण की शिक्षा कहीं पर देना होगा। भाषा-विज्ञान के साथ उसे रखना उचित है।

मौखिक परीक्षा बहुत आवश्यक है। यह जाँच उसके व्यक्तित्व की है। यह उसके प्रत्युत्पन्नमति की परीक्षा है। मौखिक परीक्षा के लिए सेमिनार होने चाहिए।

श्री कल्याणमल लोढ़ा मत से एकरूपता के स्थान पर समरूपता का समर्थन अच्छा है। दो प्रश्न-पत्र अनिवार्य हों—एक विशेष कवि से और एक विशेष युग से सम्बन्धित हों। पाठालोचन की एकदम आवश्यकता नहीं, क्योंकि यह वैज्ञानिक पद्धति है। इसे डिप्लोमा के रूप में रखा जा सकता है। लोक-साहित्य को एकरूपता के लिए रखना आवश्यक नहीं। वस्तुतः हिन्दी साहित्य के परिप्रेक्ष्य में देखें, तो पद्मावत, मानस, सूरसागर, सभी लोकसाहित्य से कहीं न कहीं सम्बन्धित हैं। प्रश्न यह है कि लोकसाहित्य के अन्तर्गत किताब कौन सी रखें। स्नात-

कोत्तर परीक्षाओं में काव्य-शास्त्र अत्यन्त उपयोगी है। अतः एक स्वतंत्र प्रश्न-पत्र अवश्य रखा जाय। लघु प्रबंध बहुत आवश्यक नहीं है। इसे जोड़ने के लिए कुछ घटाना पड़ेगा। इसे विकल्प में रखने की भी असुविधा है। पाँच मिनट में यदि किसी के व्यक्तित्व का पता न लगे, तो सभी तरह की मौखिक परीक्षा व्यर्थ है। इसलिए इसकी अत्यन्त आवश्यकता है। नवीन वैज्ञानिक दृष्टि में मौखिक परीक्षा को आवश्यक समझा गया है।

डॉ० देवकीनन्दन के दृष्टिकोण से साहित्य के विद्यार्थी के लिए भाषा-विज्ञान का सामान्य ज्ञान ही पर्याप्त है। काव्य-शास्त्र और आलोचना का प्रश्न-पत्र अनिवार्य रूप से हो, जिसमें भारतीय काव्यशास्त्र को प्राथमिकता दी जाय। काव्यशास्त्र कम से कम १०० अंकों का प्रश्न-पत्र हो। पाश्चात्य और भारतीय आलोचना वितरण में समान हों। हिन्दी साहित्य की सीमा में ही लोक-साहित्य की उपयोगिता है। लोकसाहित्य को विकल्प रूप में रखा जाय।

डॉ० नगेन्द्र की दृष्टि से पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में कोई व्यक्तिगत दृष्टिकोण नहीं, सामूहिक दृष्टिकोण रखना उचित है। पहले यह विचार करना है कि पाठ्यक्रम के निर्धारण का लक्ष्य क्या है। एम० ए० अध्ययन का अब प्रवेश-द्वार बन गया है। एम० ए० का पाठ्यक्रम ऐसा हो, जो विद्यार्थी को विषय का आधारभूत ज्ञान करा दे क्योंकि एम० ए० के बाद शोध करना लक्ष्य रहता है। भाषा-विज्ञान शब्द का आधारभूत अनुशासन है। भाषा के लिए अतः वह अनिवार्य होना चाहिए। काव्यशास्त्र साहित्य का आधारभूत अनुशासन है। अतः वह भी अनिवार्य प्रश्न-पत्र होना चाहिए। चार प्रश्न-पत्र हिन्दी वाङ्मय से होना चाहिए। इस तरह ६ प्रश्न-पत्र अनिवार्य हुए। इसमें विकल्प भी हो सकता है पर गुंजाइश कम है।

दो प्रश्न-पत्र वैकल्पिक हैं। आठवें प्रश्न-पत्र का उद्देश्य अन्य सातों से भिन्न है। सात प्रश्न-पत्र विषय के आकलन के प्रश्न-पत्र हैं और आठवें के द्वारा विद्यार्थी की ग्राहक अनुभूति और अभिव्यक्ति का परीक्षण होता है। यह प्रश्न-पत्र निबन्ध का है। निबन्ध के साथ अनेक विकल्प हो सकते हैं। यह विकल्प ऐसा हो, जिससे विद्यार्थी की अभिव्यक्ति की परीक्षा हो। यह विकल्प या तो लघु प्रबन्ध का हो सकता है या अनुवाद का। अनुवाद भारत की किसी भी अन्य भाषा का हो सकता है। अनुवाद आज के युग में अनिवार्य भी है। शुद्ध व्यवसाय की दृष्टि से भी यह उपयोगी है।

एक पत्र विकल्प का रह गया। इसमें क्षेत्रीय आवश्यकताएँ, विश्वविद्यालयीय सुविधाएँ देखते हुए निर्वाचन किया जा सकता है। भारतीय भाषाओं को भी विकल्प में रखा जा सकता है। इससे इसका राजनीतिक पक्ष भी उभरेगा। शोध के क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए भी अन्य भाषाओं के माध्यम से तुलनात्मक अध्ययन हो सकेगा।

एकरूपता सिद्ध नहीं हो सकती। क्योंकि नाना प्रकार की वैधानिक कठिनाइयाँ हैं।

डॉ० अम्बाशंकर नागर के विचार से एम० ए० का पाठ्यक्रम विशेषीकरण का पाठ्यक्रम है। प्रश्न-पत्रों का संख्या से भी कठिनाई होती है। मौखिक परीक्षा भी उपयोगी है।

डॉ० सावित्री सिन्हा के मत से पाठ्यक्रम पुराने ढाँचे के अनुसार चलता आ रहा है। लेकिन समय की माँग के अनुसार हमने उसे बदला नहीं है। प्राचीन और मध्यकालीन साहित्य

पर बहुत ज़ोर दिया जाता रहा है। यह उस समय ठीक था, जब हमारे पास आधुनिक साहित्य बहुत कम था। पर आज जब आधुनिक साहित्य बहुत आगे बढ़ गया है, उसे उचित स्थान नहीं मिल रहा है। उसे उचित स्थान देना है! और तब प्राचीन काल, मध्यकाल दोनों को एक ही प्रश्न-पत्र में स्थान देकर एक पत्र आधुनिक काल के लिए सुरक्षित किया जा सकता है। आवश्यकता है कि अधुनातन साहित्य को स्थान दिया पर प्रश्न है कि यह कैसे संभव हो। रचनाएँ रखी जायँ, चाहे न रखी जायँ, किंतु कम से कम २० या २५ अंक ऐसे हों, जिनके द्वारा विद्यार्थियों को समसामयिक साहित्य का परिचय मिल जाय।

अन्य भारतीय भाषाओं का अध्ययन अपेक्षित है। लघु प्रबंध को निकालना ठीक नहीं। क्योंकि विद्यार्थी अपने सोचने-समझने की थोड़ी भी क्षमता उसी में प्रकट करता है।

डॉ० देवराज उपाध्याय के खयाल में निबंध का प्रश्न-पत्र समाप्त कर देना चाहिए। क्योंकि निबंध में ही नहीं, हर प्रश्न में आत्माभिव्यक्ति होती है। प्रश्न चुनने का भी प्रश्न है। निबंध के स्थान पर आधुनिक साहित्य को स्थान दिया जाय।

डॉ० रामशंकर शुक्ल रसाल के अनुसार निबंध पत्र के कभी-कभी दो भाग हो जाते हैं। एक लघु प्रबंध का। लघु प्रबन्ध में अध्यापकों की छाया आ जाती है। आधुनिक साहित्य इतना बढ़ गया है कि उसमें से क्या रखा जाय, यही मुश्किल है। अन्य प्रांतों में भाषाओं को भी स्थान देना होगा। व्यापक रूप में स्तर एक होना चाहिए।

डॉ० रामकुमार वर्मा के कथनानुसार प्रयाग के पाठ्यक्रम में डेढ़ प्रश्न-पत्र प्राचीन से और ढाई आधुनिक से सम्बन्ध रखनेवाले हैं, तथा ४ प्रश्न-पत्र साहित्य शास्त्र से सम्बन्ध रखने वाले हैं। प्रश्न-पत्रों की संख्या का उतना महत्व नहीं, जितना अध्ययन और अध्यापन का होना चाहिए। समानीकरण में एक विशेष बात यह है कि हमारा पाठ्यक्रम इतना विस्तृत हो जाता है कि हम वर्षान्त तक उसे समाप्त नहीं कर पाते इससे औपचारिक दृष्टि से ही पाठ्यक्रम समाप्त कर देते हैं। अन्तर में प्रवेश नहीं करा पाते। सुझाव यह है कि एक प्रवृत्ति विशेष को प्रमुख रख कर हम प्रतिनिधित्व करने वाले कुछ कवियों के ग्रन्थ रखें। हर कवि की विशिष्ट विचारधारा को हम भूमिका में ही बता सकते हैं। दूसरी बात संग्रह की है। संग्रह का प्रयोग आरम्भ में किया जा सकता है। पर विशिष्ट अध्ययन के लिए मूल ग्रंथों का अध्ययन आवश्यक है। क्षेत्रीय भाषाओं के लिए भी विकल्प में एक स्थान होना चाहिए। विकल्पों में अनेकानेक संशोधन हो सकते हैं। निबंध के विकल्प में प्रबन्ध की जो बात सोची जाती है, वह ठीक है। इससे अग्रिम शोध की समस्या भी हल होगी। विकल्प में यदि कोई उपयोगी कला रख लें, तो अच्छा हो। जैसे—सम्पादन-कला, रेडियो-कला आदि। इससे एम० ए० के बाद विद्यार्थी बेकार नहीं रह जायगा। उसके लिए किसी वस्तु का उपयोगी द्वार खुल जायगा। मौखिक परीक्षा की बहुत बड़ी आवश्यकता है। विद्यार्थी की अभिव्यंजन शक्ति किस सीमा तक उभर सकी है, इसकी परीक्षा उसी के द्वारा होती है।

अंत में अध्यक्ष **डॉ० जगन्नाथ तिवारी** ने गोष्ठी का समापन किया।

●

९

गोष्ठी

दिनांक : ११.१०.६४

समय : प्रातः ९ से १२ बजे

विषय : पाठ्य-क्रम का स्वरूप

प्रवर्तक

- डॉ० विजयेन्द्र स्नातक — दिल्ली

अध्यक्ष

- डॉ० रामनिरंजन पाण्डेय — हैदराबाद

वक्ता

- डॉ० भालचन्द्र तैलंग — औरंगाबाद
- डॉ० रामलाल सिंह — सागर
- डॉ० कमलाकान्त पाठक — नागपुर
- डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव — भागलपुर
- डॉ० गुरुप्रसाद टण्डन — उज्जैन
- पं० उमाशंकर शुक्ल — प्रयाग
- डॉ० राजनारायण मौर्य — पूना
- डॉ० वसन्त अनन्त गद्रे — बम्बई

डॉ० भालचंद्र तैलंग के अनुसार मुख्य भाषा के साथ गौण भाषा के दो प्रश्नपत्र लेने की मराठवाड़ा विश्वविद्यालय की समस्या विचारणीय है। बम्बई में एम० ए० सहायक है और उसे मुख्य के साथ पढ़ना आवश्यक है। क्रमशः वहाँ ६ और प्रश्नपत्र हैं। अन्य विभागों में भी यही कोर्स है। ६ प्रश्नपत्र एक भाषा का और २ प्रश्नपत्र दूसरी भाषा का है। यह Subsidued का प्रतिबन्ध कहाँ तक उचित है? इस प्रकार हिन्दी के ६ प्रश्नपत्र और २ प्रश्नपत्र अंग्रेज़ी के हैं। मराठवाड़ा में प्रथम वर्ष में अंग्रेज़ी का एक और द्वितीय वर्ष में भी एक प्रश्नपत्र है। नागपुर में ८ प्रश्नपत्र हिन्दी के ही हैं। क्योंकि उसका सम्बन्ध मध्यप्रदेश से है। अस्तु, दो प्रश्नपत्रों में पास होना अत्यावश्यक है, क्योंकि उनका प्रभाव नियुक्तियों पर भी होता है। मेरी राय में इससे लाभ नहीं है। मराठवाड़ा विश्वविद्यालय में आठ प्रश्नपत्रों की भी सुविधा है। यदि कोई चाहे ६ प्रश्नपत्र ले, चाहे आठ।

हमारे यहाँ नयी कविता को भी स्थान दिया गया है।

मराठवाड़ा विश्वविद्यालय ने लोक-साहित्य के रूप में आल्हखण्ड स्वीकार किया है, जिसकी बारह प्रतियाँ हैं। उचित है कि इसका सम्पादन हो। लोक-साहित्य में वही ग्रन्थ रखना चाहिए, जो वैज्ञानिक रीति से सम्पादित और प्रकाशित हों। हमारे यहाँ प्राचीन साहित्य में एकनाथ और नामदेव को भी शामिल किया गया है, क्योंकि आंचलिक आवश्यकता है। निबन्ध के साथ-साथ गद्य और पद्य भी है, जिसकी व्याख्यात्मक चर्चा करनी आवश्यक होती है और विद्यार्थियों में आलोचना-शक्ति आती है।

नगेन्द्र जी ने जैसा कहा, अष्टम पत्र में निबन्ध, लघु प्रबन्ध और अनुवाद रखा जाय, मैं समर्थन करता हूँ। क्योंकि प्रान्तों में अंग्रेज़ी या अन्य भाषाएँ अभी भी महत्वपूर्ण हैं। शोध के लिए लघु प्रबन्ध लाभप्रद होगा। नयी कविता को उचित स्थान देना होगा। प्राचीन साहित्य में कोई ग्रन्थ रखा जाय। एकेडेमिक कौंसिल हमारे यहाँ आठ प्रश्नपत्र अनिवार्यतः नहीं स्वीकार करेगी। क्योंकि संस्कृत वालों को विद्यार्थी नहीं मिलते। इसलिए वे विरोध करेंगे। हमारे यहाँ विद्यापति और चन्द बरदाई को छोड़ देते हैं।

श्री रामलाल सिंह की दृष्टि में सागर में ९ प्रश्नपत्र हैं। ४ साहित्य, ४ इतिहास और संस्कृति, भाषा-विज्ञान और आलोचना और एक (वैकल्पिक पत्र) प्रमुख कवि आदि या बुंदेला तथा उसका लोक-साहित्य के प्रश्नपत्र हैं। मौखिक परीक्षा दोनों वर्ष होती है। सागर से ५५ % से अधिक पाने वाले विद्यार्थियों को लघु प्रबन्ध दिया जाता है। साहित्य के सम्बन्ध-सूत्रों को ठीक से समझने के लिए इतिहास और संस्कृति के प्रश्नपत्रों की बड़ी आवश्यकता है। ऐतिहासिक-दार्शनिक आदि बातों का परिचय संस्कृति के अन्दर अच्छी तरह करवाया जा सकता है। विशेष रुचि का ख्याल छात्रों की दृष्टि से बहुत आवश्यक है। वैकल्पिक विषयों के लिए छूट है। डॉ०

रामकुमार वर्मा के सुझाव से पूर्ण सहमति प्रकट की जानी चाहिए। वैकल्पिक दृष्टि से रेडियो-साहित्य, सम्पादन-कला, शोध-रीति-विधान का समावेश आवश्यक है। भारतीय तथा पाश्चात्य समीक्षा का स्वतन्त्र प्रश्नपत्र होना चाहिए। परीक्षा सम्बन्धी स्तर के बारे में सुझाव यह है कि मौखिक परीक्षा हटानी नहीं चाहिए। सागर में मौखिक परीक्षा के ६ परीक्षक हैं। वैयक्तिकता की गुंजाइश से बचने के लिए इतने ज्यादा परीक्षक रखे जाते हैं। लघु प्रबन्ध छुट्टी में बताया जाता है और एक-एक अध्याय हर मास में लिखता जाता है। इससे भविष्य में शोध-कार्य सरल हो जाता है। दक्षिण में दो परीक्षक बाहरी और स्थानीय होते हैं। वहाँ भी वैयक्तिकता या पक्षपात नहीं होता। मानसिक स्तर के लिए सभी विषयों का सामान्य ज्ञान (outline) कराया जाय, तो अच्छा हो।

नये कवियों का संग्रह रखा जा सकता है। सागर में 'सप्तपर्णी' नामक संग्रह पढ़ाया जाता है।

डॉ॰ कमलाकान्त पाठक के विचार से शास्त्र और साहित्य की अभिव्यक्ति को पाठ्य-क्रम का दृष्टिकोण बनाना चाहिए। सामान्य और विशेष अध्ययन, दोनों आवश्यक होते हैं। गद्य-पद्य दोनों पर ध्यान देना चाहिए। हमारे यहाँ असन्तुलन है। कविता के कई प्रश्नपत्र हैं; गद्य के कम हैं। इसलिए गद्य अधिक रखने की आवश्यकता है। कविता से हम विद्यार्थी को बहुत भावुक बना देते हैं। गद्य के माध्यम से जीवन का अधिक अनुभव होता है। निबन्ध के विकल्प में अनुवाद रखना तो उचित है, लेकिन प्रबन्ध निर्दिष्ट विषय का होता है। उस पर अध्यापक का देय बहुत अधिक रहता है। निबन्ध और प्रबन्ध का मूल्यांकन एक स्तर पर नहीं हो सकता। विद्यार्थी की प्रतिभा, अभिव्यंजना-शक्ति का मूल्यांकन निबन्ध में ही हो सकता है। प्रबन्ध का आरम्भ इसलिए हुआ था कि हिन्दी में आलोचना-ग्रन्थों की कमी थी। पर आज स्थिति बदल गयी है। आज बहुत विद्यार्थी हैं; प्राध्यापकों के पास भी समय नहीं है। प्राध्यापक के निरीक्षण में सम्पादित प्रबन्ध में विद्यार्थी की मौलिकता कुण्ठित हो जाती है। भाषा-विज्ञान में जिन सिद्धान्तों से हिन्दी का क्रमिक विकास हुआ है, उनकी जानकारी होनी चाहिए। विस्तृत अध्ययन अपेक्षित नहीं है। हमारे विद्यार्थी के बीच सामंजस्य स्थापित करने की आवश्यकता है। नागपुर में ८ प्रश्नपत्र हैं। अतः भाषा-विज्ञान और इतिहास एक ही पत्र में हैं। काव्यशास्त्र का अध्ययन भी अपेक्षित है। इसके लिए विशेषज्ञ पैदा करने की आवश्यकता है। अन्यथा विद्यार्थी आनन्दवर्धन को कष्टवर्धन मान बैठेगा। साहित्यिक चेतना जाग्रत करने एवं प्रत्युत्पन्नमतित्व की ओर ध्यान देने के लिए मौखिक परीक्षा की भी आवश्यकता है।

डॉ॰ वीरेन्द्र श्रीवास्तव की दृष्टि में बिहार के विश्वविद्यालयों में चार घण्टों की परीक्षा होती है। इस समय पर ध्यान देने की आवश्यकता है। दो वर्ष के बाद परीक्षा की आवश्यकता वस्तुतः है। मौखिक परीक्षा द्वारा ज्ञान के साथ ही भाषा की भी परीक्षा होती है। वह विद्यार्थी की अभिव्यंजना-शक्ति का मूल्यांकन करने के लिए होनी चाहिए। हमारे यहाँ सामान्य हिन्दी बी॰ ए॰ में अनिवार्य है, जिसमें अंग्रेज़ी अनुवाद रहता है। यह अनुवाद ३० अंकों का होता

है। इसलिए एम० ए० में अनुवाद नहीं होता। संस्कृत का प्रश्नपत्र अलग है। लघु प्रबन्ध को बिहार-पाठ्य-समिति ने स्वीकार किया। किंतु पटना में दो पत्रों के स्थान पर लघु प्रबंध है। लेकिन आगे स्वीकार नहीं किया गया। उसके स्थान पर अब मौखिक परीक्षा होती है। चूँकि पी-एच० डी० तथा डी० लिट्० हैं ही, तो लघु प्रबन्ध अनावश्यक है। हमारे यहाँ आधुनिक पद्य और गद्य आवश्यक है। प्राचीन या मध्य काव्य का विकल्प है। सातवाँ प्रश्नपत्र विकल्प का है। वीरगाथा और विद्यापति, सूर और तुलसी, रीतिकाल, ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी शाखा नाम से चार विकल्प हैं। क्योंकि एक को वह समझेगा। वैसे Hons तक सब पढ़ाते हैं। भागलपुर में नये कवि भी पढ़ाये जाते हैं। भाषा-विज्ञान बहुत आवश्यक है। सैद्धान्तिक, और व्यावहारिक पक्ष के साथ बोलियों का भी अध्ययन होना ज़रूरी है। सैद्धान्तिक पक्ष के लिए ४० अंक तथा शेष दोनों के लिए ३०–३० अंक होने चाहिए। उसे छोड़ नहीं सकते। शोध के लिए क्योंकि वह आवश्यक है। संस्कृत के विकल्प में प्राकृत, अपभ्रंश या आधुनिक भाषाओं को रख सकते हैं। लेकिन यह कठिन है। सभी भाषाओं का अध्ययन हो, रामकुमार जी का यह सुझाव श्लाघ्य है। लेकिन अध्यापक कहाँ से आयें? फिर उचित तो ये है कि इसके लिए या पत्रकारिता आदि के लिए भी डिप्लोमा कोर्स हों, क्योंकि रुचियाँ भिन्न होती हैं।

डॉ० गुरुप्रसाद टंडन के कथनानुसार विक्रम विश्वविद्यालय में कुल ८ प्रश्नपत्र हैं। मौखिक परीक्षा भी है। ३ प्रश्नपत्र कविता से सम्बन्धित हैं। एक विशेष कवि का है। विकल्प में सूर, तुलसी, प्रसाद हैं। क्योंकि अध्यापकों की सुविधाएँ नहीं हैं। एक गद्य का प्रश्नपत्र है। एक संस्कृत और अपभ्रंश का है। एक तमिल, गुजराती, मराठी, बंगाली में से किसी भी एक का है। अगले वर्ष से तेलुगु को भी हम स्थान दे रहे हैं।

हमारे यहाँ प्रत्येक काल के साहित्य के साथ उस काल का इतिहास भी रखा गया है। इसके अन्तर्गत सभी वाद भी आ जाते हैं। एक प्रश्नपत्र प्राच्य आलोचना तथा पाश्चात्य आलोचना का भी है। यह विषय कठिन है। एक प्रश्नपत्र सामान्य भाषा-विज्ञान का है। भाषा-विज्ञान के द्वारा एक मानसिक सन्तुलन मिलता है। उसके द्वारा विद्यार्थी एम० ए० के उपरान्त शोध में अधिक संलग्न हो पाता है। भाषा-विज्ञान का सामान्य परिचय ही अनिवार्य है। भाषा-विज्ञान में क्षेत्रीय बोलियों को पढ़ाना अधिक उचित होगा। समसामयिक काव्य का प्रश्न बड़ा गम्भीर है। किसी कवि का निर्धारण करते समय वाद के पोषक कवियों का चुनाव नहीं करना चाहिए। हमें काव्यत्व जहाँ मिले, उसे पाठयक्रम में स्थान देना चाहिए। व्यापक दृष्टि-बिन्दु से कवि का चुनाव करना है। जैसे नये कवियों को लेते समय नये गीतकारों को न भूलें। नीरज एक प्रिय कवि है। उसे लेना भी न भूलें। हमारे यहाँ ७५ अंक का प्रबन्ध है। यह प्रबन्ध ७५ पृष्ठों का होता है। विकल्प में पाठालोचन, काव्यशास्त्र आदि को स्थान दें।

पंडित उमाशंकर शुक्ल ने कहा : चार प्रनश्पत्र पढ़ाये जायँ। दो विकल्प हों रामकुमार जी के अनुसार। लेकिन बहुमत डिप्लोमा की ओर है। विकल्प में क्षेत्रीय भाषाएँ चलें—किन्तु स्तर इण्टर तक ही सम्भव है। और इस तरह कुछ के लिए यह प्रश्नपत्र सरल भी है। इस तरह यह प्रश्नपत्र हल्का पड़ जाता है। उसे बोझिल बनाने के लिए उसका इतिहास वग़ैरह अपेक्षित है।

फिर भी वह स्तर नहीं बन पाता। पाठालोचन की उपयोगिता है। किसी ने वैज्ञानिक पद्धति कह करटाल दिया था, जब कि पार.स्नातक के लिए वह बेहद ज़रूरी है। भले ही काम मुंशीगीरी का हो। अनुवाद की आवश्यकता पर सभी ने बल दिया। पर मेरे अनुसार अनुवाद नहीं रखा जाय। इसे पाठ्यक्रम में न रखकर डिप्लोमा में रखा जाय। विल्कपों में संकोच न कर अनेक विषयों को स्थान देने की चेष्टा करनी चाहिए। काव्यशास्त्र में हमारे यहाँ दुहरापन है—वर्ग का और वर्ग ख। पुराना और नया अलग-अलग विवेचित नहीं करना चाहिए। भाषा-विज्ञान के पाठ्यक्रम का व्यावहारिक दृष्टि से पुनर्निर्माण आवश्यक है।

डॉ० राजनारायण मौर्य के अनुसार पूना में एम० ए० में प्रमुख और गौण भाषाओं के लिए क्रमशः ६ और २ प्रश्नपत्र हैं। इनमें कोई स्तरीय परिवर्तन नहीं होता। प्रथम पत्र के अन्तर्गत प्राचीन तथा मध्यकालीन साहित्य और दूसरे में आधुनिक गद्य-पद्य है। तीसरा विशेष कवि या लेखक या साहित्य-विधा से सम्बन्धित है। चौथा भाषा-विज्ञान का है। (६ प्रश्नपत्र हिंदी के हों, तो दो प्रश्नपत्र हिन्दी और उसकी एक बोली—अवधी या ब्रज—का ख़ास अध्ययन होता है।) पाँचवाँ काव्य-शास्त्र और आलोचना का है और छठे के अन्तर्गत दार्शनिक विचारधारा का स्थान है। पूना में इतिहास नहीं है। प्रथम प्रश्नपत्र के दो या तीन या चार पीरियड होते हैं। ज्यादातर व्याख्यान होते हैं। हर व्याख्यान महत्वपूर्ण होता है। अतः वातावरण अच्छा है। पूना में केवल एम० ए० है। प्रोफ़ेसर ६ शोध-छात्र को ले सकता है। यदि दो को और ले, तो एक पीरियड कम कर दिया जाता है। वहाँ सर्वत्र गम्भीरता रहती है। लाइब्रेरी का वहाँ महत्व है। ६ प्रश्नपत्र वाले के मन में कोई हीन भावना नहीं होती। संस्कृत के लिए अंग्रेज़ी या संस्कृत माध्यम है।

डॉ० वसन्त अनन्त गद्रे ने बताया कि ६ प्रश्नपत्रों में पहले दो दोनों के लिए सामान्य होते हैं।

प्रवर्तक **डॉ० विजयेन्द्र स्नातक** के विचार से जहाँ बी० ए० आनर्स नहीं है, वहाँ निश्चय ही एम० ए० कोर्स व्यापक होगा। पाँच-छः विश्वविद्यालयों में बी० ए० आनर्स है, जहाँ इससे व्यापकता और बढ़ जाती है। हिन्दी एम० ए० कम्पोज़िट है। चार प्रश्नपत्र वही रहते हैं। और २–२ प्रश्नपत्र भिन्न। आठ भाषाओं का कम्पोज़िट कोर्स होना चाहिए। डिग्री एम० ए० की ही दी जाय। हिन्दी कम्पोज़िट कोर्स भाषाओं के परीक्षक उदार हैं। इसलिए वे लोग सरल होते हैं। अनधिकारी भी फलतः प्रथम श्रेणी प्राप्त कर लेता है। उनकी नियुक्तियाँ भी हो जाती हैं। मौखिक परीक्षा से उद्देश्य-पूर्ति नहीं होती। पाँच मिनट में व्यक्तित्व के विकास का प्रश्न जोड़ना मूर्खता है। इसमें पक्षपात भी होता ही है। यद्यपि इस विषय में बहुमत है। लघु प्रबन्ध के पक्ष में नौ व्यक्ति हैं। चार विपक्ष में हैं। लेकिन लघु प्रबन्ध से ज्यादा पक्षपात होता है। ये परीक्षाएँ छलना हैं। पाठालोचन के विकल्प के पक्ष में भी होना मुश्किल है। क्योंकि शुद्ध वैज्ञानिक प्रक्रिया को साहित्य से मिलाना अनावश्यक है। ऐसे विकल्पों से फ़ायदा नहीं है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने लघु प्रबन्ध का काम—जो बन्द गुफा का काम है—बन्द करने का निर्णय किया है। लघु प्रबन्धों की दिशा में पहले अच्छा कार्य हुआ है। शोध की व्यवस्था

इस प्रकार होनी चाहिए, जिससे अच्छी किताबें लिखी जायँ। अच्छे लघु प्रबन्ध यदि हैं, तो उन्हें भी कोर्स के साथ पढ़ाया जाय। अनुवाद का स्वतन्त्र प्रश्नपत्र कहीं नहीं है। अनुवाद के पक्ष में ६ व्यक्ति है और ३ व्यक्ति विपक्ष में। लोक-साहित्य को विकल्प में स्थान देना चाहिए। क्योंकि शुद्ध शिष्ट साहित्य के अध्येता के लिए अनिवार्य रूप में अनावश्यक है। इसलिए उसके लिए विकल्प ही ठीक है। भाषा-विज्ञान के सम्बन्ध में अधिकांश लोगों ने मत दिया। उसका सामान्य ज्ञान और हिन्दी भाषा का पूर्ण ज्ञान आवश्यक है। उसकी अतिशय वैज्ञानिकता से विद्यार्थी को बचाना ही उचित है। आधा भाषा-विज्ञान ५० अंकों का हो और ५० अंकों का बोलियों का अध्ययन रखा जाय। या बोलियाँ न रहें तो अच्छा। पूरा प्रश्नपत्र फिर भाषा-विज्ञान का ही हो। निबन्ध का पूर्ण पत्र हो। दस वक्ताओं ने इसका समर्थन किया है। **डॉ० देवराज उपाध्याय** ने कहा। एक जगह निबन्ध है ही नहीं। कुछ उसके साथ अनुवाद को भी जगह देना चाहते हैं। पत्रकारिता आदि विकल्प में या डिप्लोमा कोर्स हो। सभी विभागों में यह आवश्यकता है। अच्छा हो कि संस्कृत विकल्प में रहे। दिल्ली में संस्कृत साहित्य का इतिहास है—संस्कृत नहीं। विशेष प्रबन्ध पटना में २०० अंकों का है, जो दो पत्रों के बराबर है। पटना में मौखिक परीक्षा भी है। यह व्यवस्था विचारणीय है। नवीन साहित्य का समर्थन तीन वक्ताओं ने किया। इसका धीरे-धीरे समावेश होगा। छायावाद के बाद दिनकर और उपन्यासकारों में वृन्दावनलाल वर्मा का समावेश हो ही गया है। इतिहास दो विश्वविद्यालयों में नहीं है। वस्तुतः बिना इतिहास के काम नहीं चलता। क्योंकि वह चरित-साहित्य नहीं दृष्टि है। इतिहास एक समग्र चेतना है। इसलिए इसका पूर्ण प्रश्नपत्र होना चाहिए। उसे खण्ड-खण्ड पढ़ाना उचित नहीं। प्रादेशिक भाषाओं के विषय में ६ ने समर्थन किया, ३ ने विपक्ष में मत दिया। एक ने मध्यम मार्ग अपनाया। वे विकल्प में हों, क्योंकि उनकी उपेक्षा नहीं होनी चाहिए। यद्यपि सीमित ज्ञान के कारण अनुपयोगी है। फिर भी आवश्यक है, किन्तु कोर्स कम रहना चाहिए।

अध्यक्ष डा० रामनिरंजन पाण्डेय ने कहा : हमारे यहाँ हिन्दी के साथ उर्दू को भी स्थान दिया गया है। ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से ऐसा किया गया है। हिन्दी के पाठ्यक्रम के साथ उर्दू या संस्कृत है। उर्दू के साथ हिन्दी या फ़ारसी है। एम० ए० में इसके लिए १०० अंक हैं। दो वर्ष में दो परीक्षाएँ होती हैं। प्रथम वर्ष में आदिकाल और मध्यकाल के लिए एक प्रश्नपत्र है। गद्य साहित्य के साथ उसकी आलोचना भी है। तीसरे प्रश्नपत्र में आलोचना और इतिहास हैं। चौथे प्रश्नपत्र में संस्कृत-उर्दू के विकल्प के साथ अब तमिल, तेलुगु है। लेकिन हिन्दी विद्यार्थी प्रायः संस्कृत लेते हैं। द्वितीय वर्ष एक प्रश्नपत्र आधुनिक कविता का है। नयी कविता अभी नहीं है। दूसरे प्रश्नपत्र में विशेष कवि का अध्ययन है। तीसरे प्रश्नपत्र में भाषा-विज्ञान और इतिहास है। चन्द्रहासन जी ने जैसा कहा, उसी में भाषाओं का भी अध्ययन हो, इससे लाभ नहीं, जहाँ तक मैं समझता हूँ। अलग-अलग प्रान्तों में बोलियाँ चल सकती हैं। प्रान्तीय भाषाओं को एम० ए० में स्थान देने की आवश्यकता नहीं, उसके लिए डिप्लोमा कोर्स ठीक है। हमारे यहाँ फ्रेंच, जर्मन भाषाएँ भी हैं, जिन्हें गोरे प्रोफ़ेसर पढ़ाते हैं। निबन्ध लघु प्रबन्ध ही है। लघु प्रबन्ध के साथ निर्देशक नहीं होना चाहिए। यहाँ तक कि शोध के साथ भी न हो, तो अच्छा है। काव्यशास्त्र

तथा आलोचना पढ़ायी जाय। इतिहास का स्वतन्त्र प्रश्नपत्र होना चाहिए। भाषा-विज्ञान के दो खण्ड हों एक साथ। लघु प्रबन्ध एक समस्या है। क्योंकि उसके लिए ५०% अनुचित है। ५०% की जगह ८५% देना ही होगा। रामकुमार जी और नगेन्द्र जी का ऐसा मत है। साक्षात्कारों में हिन्दी के परीक्षार्थी कार्यालय के लोग अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे पाकर अपमानजनक स्थिति में आ जाते हैं। एम० ए० में अनुवाद न लाया जाय, तो अच्छा है। क्योंकि यह अपमान-जनक स्थिति मात्र हीनता का द्योतक है। अनुवाद डिप्लोमा कोर्स में सम्भव है। वह बी० ए० के बाद हो। मौखिक परीक्षा हो। मैसूर में ५ या ६ परीक्षक शोध के सम्बन्ध में होते हैं। वे अलग-अलग बैठते हैं। पत्रकारिता, रेडियो-विज्ञान भी पाठ्यक्रम में न लाया जाय। वह भी पी० ए० सी० या डिप्लोमा में हो। पत्रकारिता पर शोध सम्भव है, किन्तु उसे पाठ्यक्रम में नहीं होना चाहिए।

●

१०

गोष्ठी

दिनांक : ११.१०.६४
समय : ३ बजे से ६ बजे सायं

विषय : काव्यशास्त्र

प्रवर्तक

- डॉ० भोलाशंकर व्यास — वाराणसी

अध्यक्ष

- डॉ० नगेन्द्र — दिल्ली

वक्ता

- डॉ० सत्यदेव चौधरी — दिल्ली
- डॉ० बच्चनसिंह — वाराणसी
- डॉ० रामलाल सिंह — सागर
- डॉ० रघुवंश — प्रयाग
- डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव — भागलपुर
- डॉ० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' — जोधपुर
- डॉ० गुरुप्रसाद टण्डन — उज्जैन
- डॉ० सावित्री सिन्हा — दिल्ली
- श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त — प्रयाग
- डॉ० जगदीश गुप्त — प्रयाग
- श्री सुमित्रानन्दन पन्त — प्रयाग

अध्यक्ष डॉ० नगेन्द्र ने विषय का स्पष्टीकरण करते हुए कहा : हमारा उद्देश्य शैक्षिक एवं व्यावसायिक है। दार्शनिक नहीं। अतः हमारा विषय काव्यशास्त्र नहीं, काव्य-शास्त्र का पाठ्यक्रम है।

प्रवर्तक **डॉ० भोलाशंकर व्यास** ने मौखिक रूप से बताया कि काव्य-शास्त्र—भारतीय तथा पाश्चात्य—तथा आलोचना हमारा विषय है। आँकड़े यदि पेश किये जायँ, तो कहा जा सकता है कि भारतीय विश्वविद्यालयों में तीन स्थितियाँ हैं। कुछ विश्वविद्यालयों में काव्य-शास्त्र नहीं पढ़ाया जाता। कुछ में इतिहास के साथ इसका अध्ययन होता है—जैसे, आगरा, और जयपुर में। यह स्थिति पहले वाराणसी में भी थी। पहले काव्यशास्त्र का अध्ययन प्रवृत्ति-गत था। अब वहाँ भी स्वतन्त्र प्रश्नपत्र है। यही तीसरी स्थिति है जो अन्यत्र भी मिलती है।

लिखित रूप में उनके विचार निम्नांकित थे :

काव्यशास्त्र की अध्यापन-विधि किस प्रकार की हो? सुव्यवस्थित अध्ययन के लिए सैद्धान्तिक ज्ञान आवश्यक है। रसास्वाद के लिए कृतियों पर प्रभाव भी दिखाया जा सकता है। सैद्धान्तिक अध्ययन के साथ दार्शनिक आधारों का ज्ञान भी अपेक्षित है। काव्यालोचन की महत्ता एवं अनिवार्यता निर्विवाद है। यह अलग बात है कि उसकी सीमा या पाठ्य-विधि हो सकती है। आज की स्नातकोत्तर कक्षाओं में पाश्चात्य एवं प्राच्य काव्य-शास्त्र का एक साथ परिचय आवश्यक है। सबसे बड़ा दोष स्नातकोत्तर कक्षाओं में यह है कि कवि या कृति के साथ काव्य-शास्त्र का उपयोग नहीं होता, न ही काव्यालोचन का सम्यक् अध्ययन किया जाता है। नोट्स के आधार पर अध्ययन होता है। परम्परावादी वर्गीकरण-शैली से काम चलाया जाता है, क्योंकि वह चमत्कारिक है। विद्यार्थी फलतः प्रत्ययात्मक एवं तुलनात्मक प्रश्न पूछते ही 'अनफ़िट' हो जाते हैं। उनकी मौलिक विवेचना-शक्ति फ़ेल हो जाती है। काव्यशास्त्र के अध्ययन की सीमा एवं स्वरूप दोनों महत्वपूर्ण हैं। भरत से लेकर नये काव्यशास्त्रियों जैसे आचार्य शुक्ल या नगेन्द्र तक या प्लेटो से सार्त्र तक का ज्ञान कैसे कराया जाय? अनावश्यक कोई भी नहीं है। इसके लिए सामाजिक वातावरण आवश्यक है। पाश्चात्य काव्यालोचन के कारण छायावादी या नयी कविता को उद्घाटित कर सकते हैं। उनके उद्घाटन के लिए रस या भारतीय काव्य-शास्त्र का पाश्चात्य काव्यालोचन के सन्दर्भ में परीक्षण करना होगा। पाश्चात्य काव्यशास्त्र प्रत्ययात्मक है; भारतीय काव्यशास्त्र वर्गीकरणात्मक है। प्लेटो आदि ने सामाजिक आदि दृष्टियाँ दीं। जैसे नाटकों का विशिष्ट वर्गीकरण हमारे यहाँ हुआ, वहाँ नहीं हुआ। इसका अर्थ यह हो जाता है कि विद्यार्थी इसे ऊपरी तर्ज़ पर ध्यान देते हैं। पर इससे नया साहित्य नहीं समझ में आ सकता। फलतः उनकी दीक्षा बाहर ही होती है। अतः काव्यशास्त्र की पाठ्य-विधि तथा पाठयक्रम में परिवर्तन आवश्यक है। जिससे भौगोलिक और ऐतिहासिक बोध भी हो सके।

दोनों—प्राच्य एवं पाश्चात्य—काव्य-शास्त्रों का ज्ञान उसे इस प्रकार हो कि वह उसका व्यावहारिक उपयोग कर सके। दोनों का तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक है। अध्ययन में दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक पक्ष प्रधान हो। अलंकारों में विद्वानों में मतभेद है। अलंकारों का विधान व्यंजना के माध्यम से कराया जाना अधिक संगत है। अलंकारों के पीछे छिपी अभिव्यंजना एवं बिम्बात्मक स्थिति को समझना चाहिए। वर्गीकरण इतना है कि वह सिद्धान्त को दबोच लेता है। यद्यपि वह आवश्यक है। वर्गीकरण इसमें सहायता पहुँचाता है। आज भी साधारणीकरण, रस-सिद्धान्त मनोविज्ञान के साथ जोड़ कर उपयोगी समझा जाता है। मेरा सुझाव है कि वैकल्पिक रूप में गम्भीर शास्त्रीय अध्ययन के साथ व्यावहारिक काव्यालोचन की दृष्टि उत्पन्न की जाय। आज एज़रा पाउण्ड की 'ए० बी० सी० ऑफ़ रीडिंग्' तथा आई० ए० रिचर्ड्स की 'प्रैक्टिकल क्रिटिसिज्म ऑफ़ लिटरेचर' पढ़ना बहुत आवश्यक है। पाश्चात्य और प्राच्य काव्य-शास्त्र के लिए १०० अंक या विभाजित करके ५०–५० अंक होने चाहिए। इसके अतिरिक्त रचनाकारों की मान्यता को भी महत्व दिया जाय। ऐसा न करने से काव्यालोचन एकांगी हो जायगा। काव्यशास्त्र के अध्ययन में सामयिकता का ध्यान अत्यन्त आवश्यक है।

अपने लिखित भाषण में **डॉ० सत्यदेव चौधरी** ने बताया : समालोचन के लिए पाठ्यक्रम अपरिहार्य है। काव्यशास्त्र प्रायः इतिहास के साथ होता है या अलग। विद्यार्थी भारतीय तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र से विशिष्टतया परिचित होता है। कहीं अंक ६०+४० हैं भारतीय +पाश्चात्य काव्यशास्त्र के लिए। कहीं प्लेटो, होरेस, क्रोचे आदि पढ़ाये जाते हैं। कहीं काव्य-शास्त्र आदि का अध्ययन होता है। काव्यशास्त्र का प्रश्नपत्र १०० अंकों का होना चाहिए। ६५ या ७० अंक भारतीय काव्यशास्त्र के लिए और ३० या ३५ पाश्चात्य काव्यशास्त्र के लिए होना चाहिए। भारतीय काव्यशास्त्र के सभी सम्प्रदायों का अध्ययन सम्भव नहीं है। यदि बिहारी और सेनापति को ही पर्याप्त माना जाय, तो नायक-नायिका-भेद न पढ़ाया जाय। विद्यार्थी पर व्यर्थ का भार क्यों डाला जाय। रस के स्वरूप के लिए विश्वनाथ को पढ़ाना ही पर्याप्त है। शब्द-शक्ति के भेदापभेदों का ज्ञान और तात्पर्य वृत्ति का अध्ययन अपेक्षित है। स्फोट और ध्वनि को पाठ्यक्रम में निश्चित करना चाहिए। रस का स्वरूप, रस-निष्पत्ति, करुण, शान्त की नाटक में स्वीकृति या अस्वीकृति, अंगी रस, १२ प्रख्यात दोष पढ़ाने चाहिए। ये दोष कब गुण बनते हैं, यह गुण-प्रकरण में पढ़ाना चाहिए, जो मम्मटसम्मत ३ हैं। अलंकार-प्रकरण अलंकार में पढ़ाना चाहिए। काव्य का स्थान, गुण-रीति, गुण-अलंकार, नाट्य-विधान, रूपक के भेद, रंगमंचीय वर्जनाएँ पढ़ाना अपेक्षित है। कवि-शिक्षा हिन्दी में नहीं है। छन्दशास्त्र एम० ए० में नहीं होना चाहिए। काव्यशास्त्र के अध्ययन के लिए संस्कृत पुस्तकें अनावश्यक हैं। हिन्दी ग्रन्थों में उदाहरण प्रायः संस्कृत के ही होते हैं। छात्रोपयोगी सामग्री आज आवश्यक है। पर ऐसी हिन्दी की पुस्तकें निश्चय ही इस योग्य नहीं हैं। अतः एक ऐसी पुस्तक का सम्पादन आवश्यक है, जिससे वह हिन्दी का अपना काव्यशास्त्र बन जाय। संप्रेषणीयता का प्रश्न आधुनिक युग की देन है। भामह, दण्डी, उद्भट या जयदेव सम्बन्धी भ्रान्तियों को दूर करने की आज अपेक्षा है। उक्त सम्पादित पुस्तक में मध्यकालीन, आदिकालीन, आधुनिक कालीन रस-सिद्धान्त का विवेचन हो। उद्धरण

कम और आवश्यक हों। अनुवाद देना भी जरूरी है। यदि विद्यार्थी की रुचि हो, तो वैकल्पिक विषयों में काव्यशास्त्र का विशिष्ट प्रश्नपत्र हो, क्योंकि बाद में वह शोध करता है। हमारे विचार से सभी विश्वविद्यालयों में काव्यशास्त्र एक-सा हो क्योंकि सभी भाषाओं के लिए यह अनिवार्य है।

डॉ० बच्चन सिंह के अनुसार पाश्चात्य तथा प्राच्य काव्यशास्त्रों का अध्ययन आवश्यक है। विश्वविद्यालयों में काव्यशास्त्र अरस्तू तक आकर रह जाता है। मैथ्यू आर्नल्ड या रिचर्ड्स के बारे में ज़रा सा बता दिया जाता है। जब कि यूरोप में रिचर्ड्स और इलियट सब पुराने पड़ गये हैं। कम से कम अशास्त्रीय यूरोपीय काव्य के प्रवर्तकों को महत्व देना आवश्यक है जैसे इलियट या एफ़० आर० लेविस। कौन से भारतीय काव्यशास्त्र के अंग पढ़ाये जायँ। सत्यदेव जी ने कहा है कि विश्वनाथ तक ही रस को सीमित रखा जाय। लेकिन उचित है कि समन्वित रूप में सम्प्रदायों को लिया जाय और क्रमिक विकास के रूप में पढ़ाया जाय। नैरन्तर्य पर बल दिया जाय। जैसा कि पश्चिम के काव्यशास्त्र में ध्यान दिया जाता है। दोषों का उल्लेख सर्वांग रूप में बन्द किया जा सकता है। छन्दों की क़तई आवश्यकता नहीं। काव्य-शास्त्र को पढ़ाने का उद्देश्य काव्यात्मक सौन्दर्य का उद्‌घाटन करना है। नये परिवेश के कारण अब काव्यशास्त्र के पाठ्यक्रम में परिवर्तन की अपेक्षा है।

डा० रामलाल सिंह की दृष्टि में जैसे जीवन में अनुशासन की अपेक्षा है, वैसे ही काव्य के लिए काव्यशास्त्र की आवश्यकता है। साहित्य या कविता जीवन की कलात्मक व्याख्या है। समीक्षा का मूल तत्व रस है। साहित्य-शास्त्र और भाषा-विज्ञान दोनों का सम्बन्ध साहित्य के अनुशासन से है। ये दोनों विषय एम० ए० की परीक्षा के मेरुदण्ड हैं। अतः इन दोनों प्रश्नपत्रों की सर्वाधिक आवश्यकता है। मनोवैज्ञानिक या दार्शनिक ढंग से तो नयी कविता, प्रयोगवादी, प्रगतिवादी या मार्क्सवादी कोई भी कविता व्याख्यायित हो सकती है और यह रस की दृष्टि से ही सम्भव है। कविता का तत्व भाव-तत्व है; बुद्धि-तत्व नहीं। पाश्चात्य काव्यशास्त्र के प्रतिनिधि आचार्यों अरस्तू से लेकर इलियट तक का परिचय आवश्यक है। क्योंकि साहित्य की सभा विधाएँ इनसे प्रभावित हैं। भारतीय काव्यशास्त्र के किसी सम्प्रदाय के अध्ययन से काव्य का मूल तत्व पहचाना जा सकेगा। विविध पाश्चात्य एवं प्राच्य—काव्य-सम्प्रदायों की तुलनात्मक समीक्षा का तुलनात्मक मूल्य स्थापित होना चाहिए। वैकल्पिक विषय के भीतर भी समीक्षा-शास्त्र का स्वतन्त्र पत्र होना चाहिए।

डॉ० रघुवंश के विचार से हमारे पाठ्यक्रम की व्यापक सीमा है। कोई ऐसा पाठ्यक्रम नहीं बनाया जा सकता, जो अध्यापक के व्यक्तित्व को सीमित करे। समरूपता के विषय में इतनी चिन्ता थोड़ा शंकित करती है। अध्यापन भी एक रचनात्मक प्रक्रिया है। पाठ्यक्रम भी एक विकसनशील प्रक्रिया है। अतः किसी बँधी-बँधायी पाठ्य-प्रक्रिया में बँधना मुश्किल है। विद्यार्थियों के साथ हम टकराते हैं। हम दोनों एक दूसरे के प्रति छूट दें और स्वतन्त्र न होकर उचित स्थिति में आयें। साहित्य को आज के सन्दर्भ में देखना है। हम भरत की दृष्टि नहीं अपना सकते। हर युग का सिद्धान्त युग की सीमाओं से बँधा होता है। तो किसी पूर्व सिद्धान्त की तटस्थ होकर

आलोचना की जा सकती है। किन्तु युगबद्ध होकर ही। आज की दृष्टि से उसका क्या उपयोग किया जाय, यह जानना आवश्यक है और सीमाओं का निर्देशन तथा नये सिद्धान्तों का संस्थापन भी। काव्य-शास्त्र के सन्दर्भ में तीन विशेष बातें हैं—(१) सिद्धान्त, (२) विचारकों के सन्दर्भ यानी ऐतिहासिक अध्ययन और (३) विषय-प्रतिपादन। ऐतिहासिक सन्दर्भ में विषय-विवेचन अधिक समीचीन है।

डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव की राय में भोलाशंकर व्यास ने प्रत्ययात्मक दृष्टि पर तथा सत्यदेव चौधरी ने वर्गीकरणात्मक दृष्टि पर ज़ोर दिया। वर्गीकरण विश्लेषण की प्रेरणा देता है। इसलिए उपयोगी है। भारतीय पद्धति को चौधरी ने संक्षिप्त किया लेकिन उससे विद्यार्थी वह भूल न जाय, जिसकी ओर व्यास ने इशारा किया। हिन्दी का कोई व्यापक काव्यशास्त्र बन गया होता, तो अच्छा होता। यदि कोई चाहे, तो सम्पूर्ण साहित्य को अलंकार पर कस सकता है। कोई रस पर। यह उसके ऊपर निर्भर है। काव्यशास्त्र पढ़ाना लक्ष्य नहीं है, लक्ष्य है साहित्य को समझने की योग्यता ग्रहण करना। दोनों का सन्तुलन करें। काव्यशास्त्र का पूरा इतिहास नहीं भी दिया जाय, तो भी परिचय तो देना ही होगा। प्राचीन काव्यशास्त्र की परम्पराओं के परिचय के लिए एक प्रामाणिक ग्रन्थ स्वीकार कर लेना होगा। इसी प्रकार पाश्चात्य सिद्धान्तों के लिए मान्यताओं की ठीक स्थिति के लिए एक ग्रन्थ आवश्यक है।

डॉ० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' के मत से निर्विवाद है कि काव्यशास्त्र रखा जाय। प्रश्न यह है कि उसमें क्या रखा जाय। जितने से काम चला जाय, उतना ही सही। लेकिन यमक के ही ८० भेद हैं। और हो सकते हैं। यदि अलंकार नहीं जानते लोग, तो आलोचना क्या करेंगे? अलंकार पर जितना अधिक बल दिया जाय, अच्छा हो। छन्दशास्त्र भी बहुत आवश्यक है। काव्य अनुभूति नहीं है। संवेगों को काव्य में व्यक्त करना मुश्किल है। अलंकार से ही वाक्य में चमक आती है। भाव तो आयेगा ही; शब्द के पीछे पड़ने की आवश्यकता है। काव्य-शास्त्र छन्दशास्त्र से अलग है। किस प्रकार पढ़ें, कैसे प्रभाव पड़े, यह वह बताता है। छन्दों की संख्या अनन्त है। इसलिए काव्यशास्त्र का अध्ययन सप्ताह में हर दिन होना चाहिए और उसका पूरा प्रश्नपत्र होना चाहिए।

डॉ० गुरुप्रसाद टंडन के दृष्टिकोण से भारतीय और पाश्चात्य दोनों काव्यशास्त्रों को स्थान देना चाहिए। भारतीय काव्यशास्त्र की शब्द-शक्तियों और रस आदि का सम्यक् परिचय आवश्यक है। ध्वनि का जो विस्तार भारत में है, उसका विशेष परिचय देना कुछ सीमा तक अनिवार्य हो सकता है, सब रसादि अंगों का नहीं। किन्तु पाश्चात्य काव्यशास्त्र का सम्पूर्ण अध्ययन आवश्यक है। प्लेटो का शिवत्व पक्ष और आदर्शवादी होरेस आवश्यक हैं। पहले कवि को अच्छा आदमी होना चाहिए, जिसने कहा था। छायावादी युग को हम तब तक नहीं समझ सकते जब तक हम पाश्चात्य दृष्टि को, स्वच्छन्दतावाद को न समझें। इलियट का निर्वैयक्तिकीकरण आवश्यक है और नयी कविता की विविध प्रवृत्तियों का समाहार भी। भारतीय और पाश्चात्य सिद्धान्तों में क़हीं-कहीं विचित्र समन्वय है। उपन्यास-कहानी के सम्बन्ध में पाश्चात्य मानदण्ड ही रखने पड़ेंगे।

डॉ० सावित्री सिन्हा की दृष्टि से डॉ० रघुवंश की मान्यताएँ सही हैं। लेकिन शास्त्रीय चीज़ें नहीं वाक्य संपादन समझना चाहिए, ऐसा नहीं है क्योंकि उससे अनुशासन होता है। कोरी शास्त्रीयता कठमुल्लापन है। उससे सामंजस्य नहीं आता। एक लेख अभी रसाभास से सम्बन्वित आया था। पाठक का एक बोध, एक संस्कार होता है। उसके विरुद्ध बात के कारण रसाभास हो जाता है। साकेत की कैकेयी इसीलिए रसाभास है। शास्त्रीयता यदि नयी चेतना से सम्बद्ध न हो, तो वह अनावश्यक है। लेकिन कोई शास्त्रीय मापदंड मानना होगा। रस आत्मा में एक सा है; शाश्वत है; सूत्र रूप में है। देह रूप में वह पृथक् किया जा सकता है। शास्त्रीय चौखटे में कोई बात नहीं आती। ऐसा भी माना जाता है कि नयी कविता रस में नहीं आती। लेकिन विद्यार्थी के सामने हर नयी प्रवृत्ति को रस के फ्रेम में कसने का, प्रयत्न किया जाता है। तब विद्यार्थी भ्रम में पड़ जाता है। 'कल्पना' की पुस्तक-समीक्षाएँ भी बताती हैं, रस नयी कविता में नहीं हैं। आलोचक, परीक्षक, और प्रश्न-पत्र सिर्फ झमेले बन कर रह जाते हैं। अगले पाँच साल में फिर नये मूल्य स्थापित हो सकते हैं क्योंकि आज की कविता रसविद्ध होती जा रही है। नयी दृष्टि को पूर्ण रूप से स्थापित हो जाने दें तब विद्यार्थियों के समक्ष नये मूल्य रखे जायँ।

डॉ० जगदीश गुप्त ने कहा : भोलाशंकर व्यास के मत से प्रत्यय का निरूपण महत्त्व-पूर्ण है। निश्चय ही आधारभूत धारणाओं का निर्णय करना कि वे ऐसी ही हैं, ऐसी ही रहेंगी, ऐसा नहीं कहा जा सकता। उन्हें शाश्वत नहीं माना जा सकता। कोई भी सिद्धान्त यदि सार्वभौम बने, तो वह निरर्थक होगा, उसे सीमाबद्ध होना होगा। हमें सीमा और स्वरूप का निर्धारण करना होगा। मैं भारतीय काव्य-परम्परा से परिचित हूँ और आज के रचनाक्रम से भी। इसलिए रस को नयी कविता से जोड़ना व्यर्थ समझता हूँ। आज कविता की अनुभूति की सही व्याख्या रसात्मक स्तर पर नहीं, सहानुभूति के स्तर पर हो सकती है। 'ग्राम्या' को किस तरह रस से जोड़ेंगे? भारत के इतिहास में कुछ मूल सिद्धान्तों को अति तक ले जाया गया है। डॉ० रसाल, डॉ० नगेन्द्र और आज की मान्यता एक नहीं है। वह यह कि साहित्य स्वच्छंद है, सिद्धान्त से उसे नहीं जोड़ा जा सकता। पर रसाल जी ने अलंकारों की महत्ता प्रतिपादित की। किंतु इसका वातावरण सीमित है। अलंकार सौन्दर्य का पर्याय नहीं है? कहते हैं बुद्धि की बात पर आसक्ति कहीं और है। चाहे नगेन्द्र हों, चाहे डॉ० रसाल। इससे उस व्यक्ति की दृढ़ता अवश्य टपकती है। लेकिन दृढ़ता से विकृति आये, तब संतुलन की आवश्यकता होती है। 'रसपाश', 'रसचक्र' नगेन्द्र जी के साप्ताहिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित लेख में प्रयुक्त शब्द रस से मुक्ति की कामना के ही सूचक हैं। आरोपित सिद्धान्त को किसी नयी चीज़ पर लागू करना ठीक नहीं है। आधुनिक काव्य में निहित सिद्धान्त को हमें खोजना चाहिए। नयी कविता की व्याख्या रस के आधार पर करना हठधर्मिता है।

भारतीय काव्य की दृष्टि वस्तुपरक रही है। उसकी खोज शब्द और अर्थ तक रही। आज सूक्ष्म स्तरों की खोज हो रही है। शास्त्र का एक क्रम था, कविता का एक क्रम। रचित काव्य ही उसका आधार रहा। रचना के पूर्व कवि की रचना-प्रक्रिया का विश्लेषण कवि

और आलोचक दोनों के द्वारा किया जाता है। प्राचीन सिद्धान्त ने यह नहीं किया। राजशेखर ने कहा है—**स यत्स्वभावः कविः तदनुरूपं काव्यम्**। यह सत्य है। इसका अन्वेषण आधुनिक काव्य-सिद्धान्त की दृष्टि है। उसे व्याख्यायित करना एक चैलेंज है। कवि का जो विशिष्ट है, उसे शुक्ल जी ने व्यक्तिवैचित्र्यवाद कहकर टाल दिया। कवि का कौन सा व्यक्तित्व उभरा है, इस ओर आज के काव्यशास्त्र का ध्यान गया है। व्यक्तित्व का संपूर्ण अध्ययन एक प्रश्न है। आज रस-सिद्धान्त की व्याख्या के लिए पुरानी ज़मीनें तोड़नी होंगी। नयी ज़मीनें खोजनी होंगी। कविता और गद्य को पुरानों ने अलग नहीं माना। सिद्धान्त कविता का ही नहीं होता, उसकी व्याप्ति में सब आ जाते हैं। रस यदि काव्य में है, तो कहानी उपन्यास में क्यों नहीं? यदि कविता पर रस लागू नहीं कर सकते, तो उपन्यास पर भी नहीं कर सकते। मूलभूत सिद्धान्त गद्य और पद्य के भेदों से नहीं परिचालित होता। काव्यशास्त्र में 'काव्य' एक व्यापक शब्द है। यदि ऐसा नहीं करेंगे, तो रस की और भी सीमा माननी पड़ेगी।

पाश्चात्य साहित्य-चिंतन और भारतीय चिन्तन में कुछ मौलिक अंतर है। डॉ० व्यास ने जैसा कहा, हमारे यहाँ का चिंतन वर्गीकरण प्रधान रहा है। किंतु ऐसा ह्रास-काल में विशेष रूप में था। भारतीय शास्त्रकार गहरे में उतरता है, इसमें संदेह नहीं। जिसे पाश्चात्य चिंतक ने व्यापक रूप में देखा, उसे कभी सूत्र रूप में यहाँ देखा गया। इसमें सन्तुलन की आवश्यकता है। प्रयाग के पाठ्यक्रम में रीति के कवि और आधुनिक कवि दोनों हैं। एक प्रश्न-पत्र है प्राचीन और नवीन काव्यशास्त्र का—जिसे दो प्राध्यापक पढ़ाते हैं। कुछ ऐसा करें कि विभाजन ऊपरी न लगे, आधुनिक काव्यशास्त्र का अध्ययन आधुनिक काव्य के साथ और प्राचीन काव्य के साथ प्राचीन काव्यशास्त्र पढ़ायें, क्योंकि दोनों में साम्य है। इससे पाठ्यक्रम में Strain नहीं पड़ेगा। आधुनिक प्रक्रिया विश्लेषणात्मक है। इसलिए पाठ्यक्रम में भी संतुलन चाहिए। हिन्दी की काव्यशास्त्रीय परम्परा संस्कृत की परम्परा है। क्रमबद्ध अखंड। मध्यदेश में यह परम्परा सदैव रही। हिन्दी काव्यशास्त्र की रूपरेखा यदि बन सके, तो अच्छा हो। यद्यपि ऐसा कैसे संभव हो सकता है, मैं कह नहीं सकता। सभी इसमें सहयोग दें। काव्यशास्त्र के सिद्धान्तों में हिन्दी साहित्य के तत्त्वों का भी समावेश करें।

श्री प्रकाशचंद्र गुप्त ने कहा: कितने अंक कहाँ रखे जायँ, यह आपको सोचना है। पर भारतीय और पाश्चात्य काव्यशास्त्र, दोनों अपेक्षित हैं। सब ने अंकों के अनुपात का ही विरोध किया किन्तु दोनों पर बल सबने दिया। लड़के कुछ अधिक नहीं समझते, नोट्स पढ़ते हैं, ऐसा किसी ने कहा। लेकिन मातृभाषा में ऐसा नहीं होना चाहिए। विषय उसकी रुचि का होना चाहिए। उसके निकट सूचनाएँ पहुँचनी चाहिएँ। प्राचीन का अध्ययन आवश्यक है। क्योंकि आज की हमारी परम्परा और इतिहास वहाँ तक है। इतिहास को समझ कर ही हम आज को समझ सकते हैं। बुद्ध की नीति नेहरू की नीति है और वही भारत की वैदेशिक नीति है। उसी प्रकार पुराना कवि आज के कवि के साथ बँधा हुआ है। जड़ से कटे हुए बुद्धिजीवी हम नहीं होना चाहते। नये साहित्य के लिए प्राचीन शास्त्र पर्याप्त नहीं होता। मध्ययुग में बाइबिल

और अरस्तू का काव्यशास्त्र दो ग्रंथ थे। लेकिन अब अरस्तू के अनुसार शेक्सपियर को परखा गया, तो बड़ी भारी कमियाँ मिलीं। इसलिए नयी दृष्टि की ज़रूरत पड़ी। नये साहित्य के लिए नयी दृष्टि चाहिए। यह वर्ड्सवर्थ आदि के विचारों और उनके समकालीन आलोचकों को देखने पर पता चल जायगा। हैंगिंग जज ने वर्ड्सवर्थ के लिए कहा: 'गोलियाँ मरीज़ के लिए जितनी मुफ़ीद होती हैं, उतनी ही ये कविताएँ लाभप्रद हैं।' ऐसी ही बात पद्मसिंह शर्मा ने बिहारी के बारे में दूसरे ढंग से कही। शेली को 'क्वार्टरली रिव्यू' में क्या-क्या कहा गया। लेकिन इन सबके प्रभाव आपको मालूम हैं।

आलोचना गत्यात्मक प्रक्रिया है। मुझे खुशी है कि दोनों ओर से उसे रूढ़ होने नहीं दिया गया। नये कवियों को भी आलोचना का संधान करना आवश्यक है।

श्री सुमित्रानन्दन पंत के अनुसार काव्यशास्त्र किस दृष्टि से पढ़ाया जाय, यह सोचना आवश्यक है। काव्यशास्त्र को रचनाकार की दृष्टि से भी देखना है। शाब्दिकता विशेष महत्त्व-पूर्ण नहीं है। शब्द तो गणेश की तरह है। उसे अर्थ के चारों ओर घूमना होता है। काव्य का प्रमुख तत्त्व भाव-तत्त्व है। इसी दृष्टि से काव्य-शास्त्र पढ़ाया जाय। मध्य युग विकास की एक सीमा पर रुक गया। नचिकेता को ज्ञात हो गया—ओमित्येतत्। यह विकास 'ओम्' की भाँति रस तक आकर ठहर गया। तब एक कृत्रिम प्रक्रिया ही एक परिप्रेक्ष्य थी उसके लिए। आज रस को व्यापक अर्थ में समझना होगा। नयी व्याख्या देनी होगी। रस की सीमाएँ देखकर हँसी आती है। यही स्थिति अलंकार की है। वह कैसा सवार, जिसको घोड़ा नचाये। अलंकार भरा काव्य देह नहीं, शव है। यह युग सिंधु मंथन का है। प्राचीन से प्राचीन, नवीन से नवीन का मनन अपेक्षित है। उसे मथकर ग्रहण करना है। क्योंकि अतीत वर्तमान की नींव है। पर काव्यशास्त्र को यों महत्त्व दें कि छंदों की उपेक्षा भी न हो। नयी कविता में तो किसी की आवश्यकता नहीं ; पर छंदों का अच्छा ज्ञान दृष्टि प्रदान करेगा। भारत में बहुत अशिक्षा है। मुट्ठी भर बौद्धिक हैं। फिर भी थोड़े से बहुत की प्रकृति का निर्माण होता है।

प्रवर्तक **डॉ० भोलाशंकरव्यास** ने पुनः कहा : डॉ० रघुवंश की मान्यता से मैं सहमत हूँ। यांत्रिकता पाठ्यक्रम में है। आज के संदर्भ में वह अनुपयोगी है। सावित्री सिन्हा के मत से मैं पूर्णतया सहमत नहीं हूँ। डॉ० जगदीश गुप्त ने साहित्य-शास्त्रीय दृष्टि से विचार किया और सह-अनुभूति, सूत्रात्मक प्राचीन शैली भाव-बोध, स्तर, वातावरण, परम्परा और कवि-व्यक्तित्व संकेत किया। पंत जी ने भी उचित ही दृष्टि दी। हमारा बोध यांत्रिक प्रक्रिया का नहीं है, इससे सभी सहमत होंगे। डॉ० गुप्त के अनुसार सभी शास्त्रीय सिद्धान्तों को सही नहीं माना जा सकता। नयी कविता न रस के आधार पर लिखी जाती है, न रस को लेकर उसकी आलोचना होनी चाहिए। परम्परा और प्रगति, दोनों दृष्टियों से संतुलित अध्ययन करना चाहिए।

अध्यक्ष डॉ० नगेन्द्र ने कहा : व्यावसायिक दृष्टि को किसी ने ओझल नहीं होने दिया। व्यावहारिक और सैद्धान्तिक पक्ष सामने आये। व्यवहार पक्ष में तत्त्व से निस्संग हो जाना सम्भव नहीं। हमारी दृष्टि थोड़ी और निर्मम और अनाविल हो जाने दें। हमारे आचार्यों ने—अभिनव, भट्टनायक आदि ने जो मत रसास्वादन के विषय में प्रकट किया, पाश्चात्यों ने मनोविज्ञान के

माध्यम से बाद में किया। परतंत्रता के कारण उन आचार्यों की मौलिक प्रतिभा का सार्वभौम प्रकाशन न हो सका। और भी अनेक विद्वानों को इस बात का विश्वास दिलाना कठिन है। भारतीय काव्यशास्त्र के विषय में इसकी आवश्यकता है कि इस विषय में हम सोचें। डॉ० व्यास इतने विद्वान् हैं, किंतु वे भी पाश्चात्य से आक्रांत हैं।

गद्य-पद्य का भेद पहले नहीं था। रस-सिद्धान्त सब पर पहले भी लागू किया जाता था। केवल ऐसा ज्ञान-साहित्य के लिए नहीं था। 'रस सिद्धान्त: आक्षेप और समाधान' में मैंने इन शंकाओं का निवारण किया है। शेखर और गोदान में रस-सिद्धान्त विकसनशील हो जाता है। प्रत्येक शास्त्र तभी जीवित रह सकता है, जब वह विकसनशील हो। शेखर का आधार दर्शन नहीं, अनुभूति-द्रवण है। इन दोनों कृतियों को रसाभास के अंतर्गत कहना सरल है। पर ऐसा कहा नहीं जा सकता। क्योंकि उनमें आस्वाद्यता है। कोमल-तरल अनुभूतियाँ जहाँ भी हैं, वहाँ रस-चक्र है। लोगों को बड़ी-बड़ी भ्रांतियाँ हैं। पाश्चात्यों को चाहिए कि हमसे सीखें। हमने भी उनसे सीखा है। लेकिन दोनों का विद्वान् एक साथ होना मुश्किल है। समंजन में खतरे भी हैं। अत: जब तक समन्वय की दृष्टि का उन्मेष न हो जाय, तब तक अलग रखें। पहले भारतीयों की दृष्टि से अलंकार पढ़ायें, फिर बिम्ब-सम्बन्ध। हिन्दी काव्यशास्त्र या भारतीय काव्यशास्त्र का अर्थ है, संस्कृत काव्यशास्त्र। यूरोप की समृद्ध परम्परा है, लेकिन वह केवल अंग्रेजी से प्राप्त होती है। अत: विद्यार्थी को परमुखापेक्षी होना पड़ता है। अब हिन्दी में, अनुपलब्ध संस्कृत ग्रंथ प्राप्त हैं। फलत: संस्कृत के विद्यार्थी से हिंदी का छात्र उनसे अधिक लाभ उठाता है। यही स्थिति अंग्रेजी के विद्यार्थी के संबंध में है। लेकिन अंग्रेजी वालों को संस्कृत पढ़नी चाहिए। हिन्दी काव्यशास्त्र की सम्भावना है—यह अबलोड़न से होगा। रामदहिन तथा शुक्ल जी ने उसकी परम्परा भी प्रारंभ कर दी थी। साधारणीकरण और उसके क्रमिक विकास पर विचार करने ही से यह संभव है। धन्यवाद।

●

११
गोष्ठी

दिनांक : १२—१०—६४

समय : प्रातः ९ से १२ बजे

विषय : इतिहास

प्रवर्तक

- डॉ० सावित्री सिनहा — दिल्ली

अध्यक्ष

- डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय — प्रयाग

वक्ता

- डॉ० बच्चनसिंह — वाराणसी
- डॉ० अम्बाशंकर नागर — अहमदाबाद
- डॉ० श्रीकृष्णलाल — वाराणसी
- डॉ० सत्यदेव चौधरी — दिल्ली
- डॉ० केशवचन्द्र सिनहा — प्रयाग
- डॉ० शैलकुमारी — प्रयाग
- डॉ० देवराज उपाध्याय — उदयपुर
- डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी — प्रयाग
- डॉ० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' — जोधपुर
- डॉ० रघुवंश — प्रयाग
- डॉ० गोपीनाथ तिवारी — गोरखपुर
- डॉ० विजयेन्द्र स्नातक — दिल्ली
- श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त — प्रयाग
- डॉ० नगेन्द्र — दिल्ली
- डॉ० रामकुमार वर्मा — प्रयाग

प्रवर्तक डॉ० सावित्री सिन्हा ने कहा : कुछ विश्वविद्यालयों में दो प्रश्न-पत्र हैं इतिहास के। कुछ विश्वविद्यालयों में भाषा-विज्ञान और हिन्दी साहित्य का इतिहास एक साथ है और कुछ में इतिहास और काव्यशास्त्र एक साथ है। न्याय्य यह है कि पूरा प्रश्न-पत्र इतिहास से सम्बन्धित हो क्योंकि आदि से अंत तक की सम्पूर्ण प्रवृत्तियों की व्यापकता और प्रसार के लिए ऐसा करना अत्यावश्यक है। पाठ्यक्रम स्वयं समस्या नहीं है; पढ़ाने की समस्या अवश्य है। संदर्भ-ग्रंथ बहुत हैं, पर एक अव्यवस्था है। हम मूल आधार को प्रांजल बनाते तो हैं, किन्तु परवर्ती प्रवृत्तियों के साथ उसे बिठाने की कोशिश करते हैं। शोधक मौलिकता अपनाता है। वीरगाथा काल में रीतिवादी कवि भी हैं, उसकी व्यावर्तक रेखा अध्यापक नहीं खींचता; विद्यार्थी शायद खींच देता है। इसी प्रकार रीतिकाल में भक्तिकाल के दर्शन होते हैं? विद्यार्थी राहुल और हजारीप्रसाद द्विवेदी के ग्रंथों को पढ़ता है, तो अध्यापक उसे फिर भ्रमित कर देता है। मूल मान्यता को कहाँ तक स्वीकार करना चाहिए कि भ्रान्ति न हो, यही प्रश्न है। वीरगाथाकाल की प्रवृत्ति प्रधान प्रवृत्ति है—काल-सीमा के अंतर्गत कुछ रीति-कवि यदि आते हैं, तो काल-सीमा को अस्वीकार करना होगा। अतीत का मूल्यांकन ठीक होना चाहिए। छात्र की दृष्टि संकीर्ण न हो, वह प्रश्नों पर न जाय, न ही अध्यापक उधर निगाह दौड़ायें।

इतिहास का विभाजन कालक्रम के अनुसार हो या प्रवृत्तियों के अनुसार? यह स्पष्ट है। इतिहास पढ़ाते समय हम रामचंद्र शुक्ल को आधार बनाते हैं। मध्यकाल के साथ भी कठिनाई है। शुक्ल जी के अनुसार प्रेमाख्यानक काव्य वह है, जिस पर सूफी प्रभाव हो। लेकिन शोध से आज वैष्णव प्रेम-काव्य मिल जाता है। कृष्ण-काव्य भी रीतिकाल तक कृष्ण के बहाने प्रेम-काव्य ही है। इतिहास ग्रंथों में कहा जाता है कि कृष्ण-काव्य ने युग की प्रकृति से पलायन किया। वह लौकिकता की ओर ले जाता है। उसमें आध्यात्मिकता नहीं है। पतनशील प्रवृत्ति, स्थूल वर्मन तो भक्ति-काव्य में भी है। दर्शन का आधार लेकर हम उसे भुला देते हैं। वल्लभाचार्य ने प्रेममूलक भक्ति पर ज़ोर ज़रूर दिया था, किंतु उसके परिणामों या नयी दृष्टि से सोचा नहीं गया। गोविन्दस्वामी आदि में कत्थक के नृत्य के बोल, रागों, तालों और वाद्यों का मेल मिलता है, जो कला, जो विलास सारे वातावरण में रहा है, उसी की तो देन है यह! इससे कलागत मूल्य के बारे में कुछ नहीं मिलता। हम कृष्ण-भक्ति की दार्शनिकता पढ़ाते हैं; राधा-वल्लभ, गौड़ीय संप्रदाय पढ़ाते हैं, दक्षिण के अनुसार क्या पढ़ा रहे हैं, उनका संबंध सीधे इतिहास से है या साहित्य से? कला और सांस्कृतिक आन्दोलन के प्रति ये कवि निरपेक्ष नहीं हैं। सखी आदि संप्रदायों को समझने के लिए भक्ति और दर्शन की अनुकूलता ही नहीं परखनी है, युग-संबद्धता भी जाननी है। मध्यकाल के प्रति हमारी दृष्टि संकुचित नहीं होनी चाहिए। प्रेमाख्यानक काव्य के माध्यम से एक विशिष्ट दर्शन को उपस्थित किया गया, दोनों परम्पराओं को मिलाने पर यह ध्यान देना चाहिए कि कहाँ पर भ्रान्ति है, और वह स्पष्ट होनी चाहिए।

रीतिकालीन परिस्थितियाँ अलग रह जाती हैं, साहित्य अलग रह जाता है। मेरा अनुभव इस विषय में दूसरों से ज्यादा नहीं है।

काल-विभाजन से दृष्टि अत्यन्त संकुचित हो जाती है। जब कि विद्यार्थी को व्यापक दृष्टिकोण की आवश्यकता है। विद्यार्थियों को मध्यकाल का प्रश्न ही व्यापक दृष्टि देता है। एम० ए० के विद्यार्थियों को इतना अवकाश देना चाहिए कि जो बातें वह विभिन्न प्रश्न-पत्रों में नहीं पढ़ पाता, उसे वह इसमें पढ़ सके। हमारी प्रवृत्ति इतिहास पढ़ाते समय यह होती है कि हम पाठ्यक्रम में निर्धारित कवियों पर ही मुख्यत: प्रकाश डालते हैं; गौण कवियों पर प्रकाश नहीं डालते। उन्हें गौण स्थान नहीं प्राप्त होना चाहिए।

आधुनिक काल के इतिहास पर ३-४ ग्रंथ हैं। डॉ० वार्ष्णेय और डॉ० श्रीकृष्णलाल के ग्रंथ उपादेय हैं। इनमें विषय-विवेचन अच्छा है, पर तब भी अध्यापकों के सामने एक कठिनाई यह रहती है कि तथ्यमूलक रूप तो आ जाता है, पर खंड-खंड रूप में। विचार-भूमि और प्रतिपादन-क्षमता व्यक्तित्व के कारण पृथक-पृथक हो जाती है। स्वतंत्रता के पहले का साहित्यालोचन संकलित करने की आवश्यकता है और फिर एक साथ या अलग-अलग लिखें।

भारतेन्दु युग ने गद्य या नाटक में नयी भूमियाँ खोजीं। किन्तु कविता में वह परम्परा से पूर्ण रहा। ऐसा अज्ञेय तक कहते हैं। लेकिन ऐसा है नहीं।

द्विवेदी-युग का आकलन शिल्प और विधा, सभी दृष्टियों से खूब हुआ है।

छायावाद का विवेचन केवल इतना हुआ है कि विद्यार्थी उसका ऐतिहासिक विवेचन कर सके। गाँधी के आन्दोलन के बाद या उसके समानांतर अन्य आन्दोलनों का प्रभाव युवकों पर पड़ा। मार्क्स के स्विच ने गाँधी के स्विच को दबाकर इन आन्दोलनों को लुप्त करने की कोशिश की। क्रांति की देशज प्रेरणा थी। नरेन्द्र शर्मा और सुमन पर मुख्यत: देशज प्रभाव है। छायावाद की प्रच्छन्न श्रृंगारिकता की प्रतिक्रिया स्वरूप स्थूलता की ओर आये ये कवि। छायावाद और प्रगतिवाद के बीच जो गैप है, उसे पूरा करना इतिहास का काम है। प्रगतिवाद के अंदर ही इन कवियों की श्रृंगार-भावना भी रख दी जाती है, पर यह श्रृंगार-चेतना छायावाद की प्रेरणा से ही हुई। प्रगतिवाद का सूत्र है—काव्य और यथार्थ। किन्तु उसके काव्य का पुनर्मूल्यांकन होना चाहिए। कविता के साथ साथ अन्य विधाओं का भी पुनर्मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

प्रयोगवाद से नयी कविता का मान-मूल्य निर्धारण भी बेहद ज़रूरी है। प्रयोगवाद पता नहीं अध्यापक पढ़ाता है या विद्यार्थी। पाँच-पाँच साल में प्रवृत्तियाँ बदल रही हैं। अब अभिनव कविता, सचेतन-अचेतन कहानी आ रही है। नये-नये आवेश हैं। हमारे साहित्यिक रुचि वाले विद्यार्थी बड़े लेखकों के मरने के दिन देख रहे हैं, कि उन्हें कुर्सियाँ मिलें। अक्सर अनुपस्थिति में यह ध्वनि गूँजती रहती है। नयी कविता के पीछे विवाद है। अत: प्राध्यापक को एक निश्चित मूल्य बताने में कठिनाई होती है। नयी कहानी का आकलन तो हुआ ही नहीं है। पाश्चात्य साहित्य के अनुवाद से हमें नयी आलोचना-दृष्टि को समझने को कहा जाता है। नये आलोचकों का दो वर्ग है—एक प्रबुद्ध वर्ग है, एक पुस्तक-समीक्षक। इससे भ्रांत दृष्टि पनपती है। नये साहित्य में संतुलन की सबसे बड़ी आवश्यकता है। क्योंकि इस पर विद्यार्थियों की दृष्टि बहुत

अधिक रहती है। इतिहास का प्रश्न-पत्र जिस तरह आदिकाल के लिए महत्त्वपूर्ण है, उसी तरह आधुनिक साहित्य के लिए भी। अतः नवीन दृष्टियों का परिचय भी इतिहास में अपेक्षित है। अध्यापक को नये साहित्य को पढ़ाते समय रूढ़ि और पूर्वाग्रह को छोड़ना होगा। एक मित्र ने कहा—समसामयिक के लिए २०-३० अंक दें; अन्यथा पढ़ाने की जरूरत नहीं। किंतु इसके बावजूद आधुनिक साहित्य ऐतिहासिक दृष्टि से विवेच्य तो है ही।

इतिहास में महिलावर्ग के साहित्य को भी स्थान दें। क्योंकि यह वर्ग उपेक्षित रहा है।

डॉ० बच्चन सिंह ने कहा : मैं पाठ्यक्रम की दृष्टि से प्रवर्तक का विरोध करूँगा। इतिहास का प्रश्नपत्र नहीं होना चाहिए। वस्तुतः साहित्य के साथ ही क्रमशः इतिहास को संबद्ध कर देना चाहिए। जो काल-विभाजन आदि धारणाएँ हैं, वे बड़ी पुरानी पड़ चुकी हैं और उससे विद्यार्थी का मानस पुराना पड़ता जाता है।

इतिहास सदैव समसामयिक होता है। आदिकाल, मध्यकाल, रीतिकाल, सब के पीछे आधुनिक दृष्टि होती है। वर्तमान से काटकर अतीत में बैठाना इतिहासकार का कर्तव्य नहीं है। यह देखना है कि इतिहास लिखते समय प्रवक्ता कहाँ है। वह तटस्थ है या नहीं। जैसे आदिकाल को लें। उस समय का इतिहास इतना धूमिल है कि निर्भ्रान्ति मूल्यांकन सम्भव नहीं। रासो की प्रामाणिकता, गोरखबानी की अप्रामाणिक भाषा पर फिर से विचार करने की जरूरत है। प्रश्न है, पूरे आदिकाल को किस प्रकार आधुनिक चेतना से सम्बद्ध करें। यही स्थिति मध्यकाल की है। वैष्णव आचार्यों की भुलभुलैया में हम ऐसे फँस जाते हैं कि मुख्य वस्तु से हट जाते हैं। सारे आन्दोलनों से साहित्य प्रायः अलग-अलग लगता है। भक्तिकाल कब से आरंभ हुआ, उसी में हम उलझ जाते हैं। और तब हम कवियों की आंतरिक चेतना तक नहीं पहुँच पाते। रीतिकाल के सम्बन्ध में भी गड़बड़ी है। विषय विभाजन की दृष्टि से शुक्ल जी का विभाजन सर्वोपरि है। घनानन्द रीतिकाल के कवियों से भिन्न जान पड़ते हैं। घनानन्द की वक्रता, भाषा में पेचीदापन, मुहावरे द्रष्टव्य हैं। उन्होंने लक्षण ग्रंथ भी नहीं लिखे। पर उन्हें रीतिबद्ध मान लिया जाता है। रीतिकाल जहाँ है, वहीं छूट जाता है। परिवेश के प्रभाप पर विचार नहीं के बराबर हुआ है। रीति काव्य से आज का सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता। आज की दृष्टि से उसका पुनर्मूल्यांकन आवश्यक है। आधुनिक काल के इतिहास में बड़ा हाचपाच है। अनेक व्यक्तियों के नाम पर विभाजन है। यह वर्गभेद स्वीकार्य नहीं। डॉ० सिन्हा ने जो कहा कि महिलाओं को स्थान देना चाहिए। वस्तुतः सारा हिन्दी साहित्य नारीमय है। थीसिसें नारीमय हैं। फिलहाल इतिहास के प्रति दृष्टिकोण बदल देना आवश्यक है।

डॉ० अम्बाशंकर नागर के अनुसार विद्यार्थी के लिए इतिहास साहित्यानुशीलन के लिए मेरुदंड है। इतिहास शिक्षण का उद्देश्य क्या है? जब कवि परिचय मात्र कराया जाता है तब गड़बड़ी होती है। तत्कालीन साहित्य की राजनीतिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक परिस्थितियों का अध्ययन जरूरी है। ऐसा करने से इतिहास की उपयोगिता बढ़ेगी। आधुनिक काल पर अलग से प्रश्न होने चाहिए और उन पर बल भी देना चाहिए। संभव हो, तो यह भी निर्देश करना चाहिए कि इतना अंक आधुनिक इतिहास पर होगा। इससे चेतना बढ़ेगी।

यह आज की अपेक्षा के अनुरूप है। आधुनिक इतिहास को हिन्दीभाषी क्षेत्र तक ही सीमित न रखें। अहिन्दी भाषी क्षेत्र के साहित्यकारों पर भी विचार करें। क्योंकि हिन्दी की व्याप्ति आधुनिक समय में हुई हैं। ब्रज, अवधी की रचनाएँ गुजरात से ही आठ कवियित्रियों की प्राप्त हुई हैं। उन्हें भी जानना होगा। उर्दू साहित्य के इतिहास पर भी ध्यान देना होगा।

डॉ० श्रीकृष्णलाल के कथनानुसार जीव को जो अनुभव ८४ लाख योनियों में होता है, वही अनुभव इतिहासकार को भी होता है। अध्यापक को भी अनेक पुस्तकों से गुजरना पड़ता है। इतिहास के अध्यापन के दो ढंग हैं। एक ढंग है साहित्य के साथ पढ़ाने का, दूसरा है, अध्यापक जो कूड़ाकरकट छोड़ देता है, वह इतिहास के मत्थे मढ़ दिया जाता है। इस प्रकार चार साहित्यिक प्रश्नपत्रों के पूरक रूप में यह प्रश्नपत्र होता है।

इतिहास की गतिमान धारा है। उसके अनेक आयाम हैं। सबका अध्ययन जरूरी है। किन्तु इसका अवसर नहीं मिलता। बनारस में साहित्य के साथ इतिहास है। दोनों तरह की व्यवस्था होनी चाहिए। क्योंकि बनारसीय शैली से सम्पूर्ण चेतना नहीं प्राप्त होगी। सतत प्रवाहमान धारा को पकड़ने के लिए दोनों शैलियाँ आवश्यक हैं। इतिहास में सांस्कृतिक पीठिका का अध्ययन भी आवश्यक है। उसकी समुचित व्याख्या होनी चाहिए। किंतु यहीं परिसीमन न हो। कुछ लोग सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के पर्याय रूप में दार्शनिक सिद्धान्त पढ़ाते हैं। अतः यह सीमा निर्धारित हो जानी चाहिए कि इस सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में क्या हो।

डॉ० सत्यदेव चौधरी की राय में तीन विकल्प हैं। १. इतिहास की आवश्यकता उसे भी है, जो न होने पर बल देता है। इतिहास किसी भी देश, किसी भी साहित्य के लिए आवश्यक होता है। इसलिए १०० से कम का यह प्रश्न पत्र नहीं होना चाहिए। २. इसका एक पक्ष यह भी हो सकता है कि इसका प्रश्नपत्र ५० का हो या १०० का हो। विभाजित नहीं होना चाहिए। क्योंकि इसी के माध्यम से घनानन्द, सेनापति, रत्नाकर को जानेंगे। अप्रख्यात को भी जानने के लिए अनिवार्य है; इतिहास लम्बा हो। इसलिए १०० अंक ही उचित है। ३. साहित्य के साथ खंड करके हम अन्याय करेंगे—क्योंकि इतिहास के लिए अंक कम हो जायेंगे। साहित्य के साथ हम इतिहास को कम नहीं पढ़ते। खंड करने से अन्विति नहीं मिलती। अप्रमाणिक, हाचपाच बताना ही तो इतिहास का कार्य है। यदि इतिहास नहीं रहता तो आलोचना समीक्षण के साथ ही इतिहास हो जाता है, जिससे समीक्षा पत्र भी स्पष्ट नहीं रहता। रामकाव्य के नाम पर हम तुलसी को पढ़ते हैं। फलतः रामकाव्य की पूरी परम्परा को हम भुला देंगे। काल-विभाजन की दृष्टियाँ हैं—१. राजनीतिक, २. सांस्कृतिक, ३. प्रवृत्ति। काल-विभाजन को मद्देनज़र रखें, तो आधुनिक काल ४० अंकों का होना चाहिए। किसी भी भाषा के लिए भाषा का इतिहास पढ़ाना आवश्यक है। इसमें कोई मतभेद सम्भव नहीं है।

डॉ० केशवचंद्र सिन्हा की राय में सम्पूर्ण इतिहास को भारतीय चेतना के आलोक में देखना जरूरी है। आधुनिक काल का इतिहास प्राचीन काल की कड़ी है। चाहें तो उन्हें बी० ए० तक खत्म कर दें। एम० ए० में साहित्यिक सांस्कृतिक इतिहास पढ़ायें। इतिहास द्वारा ही अर्थ शास्त्र आदि को भी मूल्य दे सकते हैं और सन्दर्भ दृष्टि से देख सकते हैं; इतिहास भाषा की

दृष्टि से होना चाहिए। हिन्दी इतिहास अंग्रेजी के इतिहास की तरह सुन्दर होना चाहिए। अच्छे इतिहास की कमी है। इतिहास को खंड खंड करने से एक अविच्छिन्न धारा की परम्परा नष्ट हो जायगी। हम प्रगतिवाद को नहीं समझ सकते, यदि गोरखनाथ को नहीं समझ सकते। गोरखनाथ भारतीय साधना का प्रतीक है। इतिहास अब अनेक ढंग से लिखा जाना चाहिए। हिन्दी साहित्य बहुत विस्तृत हो गया है। बहुत से पर्चे रखने चाहिए और उनमें से विद्यार्थी को पर्चे छाँटने की सुविधा मिलनी चाहिए।

डॉ० शैल कुमारी के मत से स्नातकोत्तर कक्षाओं में इतिहास का पढ़ाना अनिवार्य है। प्रयाग में उर्दू, संस्कृत और हिन्दी साहित्य का इतिहास पढ़ाया जाता है। दो सुझाव और हैं। संस्कृत और अंग्रेजी साहित्य का इतिहास प्रवृत्तियों को जानने के लिए पढ़ाया जाना आवश्यक है। संस्कृत शोध और काव्य विधि आदि के लिए आवश्यक है। संस्कृति के इतिहास के साथ निबन्ध रख सकते हैं। संस्कृति वस्तुतः सामजिक इतिहास है। इसलिए वह अनिवार्य है। उर्दू साहित्य का इतिहास भी सर्वत्र होना चाहिए।

डॉ० देवराज उपाध्याय ने कहा जो आये, उन्होंने विशिष्ट युग पर बल दिया। अपनी विद्वत्ता के ऊपर बल दिया। हिस्ट्री इज़ अ मोस्ट पर्वर्स्ड माइन्ड ऑफ़ लाइफ़। इतिहासकार पर विश्वास नहीं किया जा सकता। शुक्ल जी ने तथा कुछ अन्य लोगों ने इतिहास लिखा ठीक है। लेकिन साहित्य का अध्ययन करें, इतिहास का नहीं। यह कहा जाता है कि भारतीयों को ऐतिहासिक बुद्धि नहीं है। इससे यह पता चलता है कि अनेक मनीषियों के रहते हुए भी, यह माना जाता था कि इतिहास से कोई लाभ नहीं, बल्कि प्रवृत्तियों और विचारों से ही क्षमता बढ़ती है। इतिहास का अध्ययन ही रीतिकाल से होना चाहिए। अलग से प्रश्नपत्र मत रखें। रीतिकाल से एक निश्चित परम्परा मिलती है। इसके पहले का इतिहास स्पष्ट है। हर काल के साहित्य के साथ हर काल के इतिहास को रखा जा सकता है। अध्यापक की अपनी मान्यता रहनी चाहिए, तभी वह दृढ़ता-पूर्वक हमेशा अपनी बात कह सकता है।

डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी ने कहा : इतिहास के सन्दर्भ में मैं 'हिन्दी' शब्द की ओर ध्यान आकृष्ट करना चाहूँगा। हिन्दी शब्द का अर्थ भाव की दृष्टि से व्यापकता की दृष्टि से और अन्य दृष्टियों से क्या है। यह प्रश्न उठता है। अतः इतिहास में पहले यह बताया जाय कि 'हिन्दी में अन्य बोलियाँ क्यों हैं।' इस प्रकार कबीर से लेकर अज्ञेय तक, जिन्होंने भिन्न-भिन्न भाषाओं में लिखा है, क्यों हिन्दी के हैं—यह स्पष्ट करना होगा। उर्दू हिन्दी की शैली कैसे है यह भी; यह सब सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्षों से बताया जा सकता है। काल निर्णय का भी प्रश्न है। विद्यापति से हम प्रारम्भ कर सकते हैं। अन्य भाषाओं की प्रवृत्ति प्रादेशिक है। हिन्दी में ये भाषाएँ प्रादेशिक रूप हैं। हिन्दी की प्रकृति मध्यदेशीय है। इसीलिए इसकी प्रकृति संपृक्त है। इतिहासकारों ने इस पर ध्यान नहीं दिया। अब इसकी व्यावहारिक आवश्यकता है। काव्य भाषा पर भी ध्यान देना है। भाषा विज्ञान के विद्यार्थियों के समक्ष अनेक बोलियों और उनके उत्पत्ति का प्रश्न आता है। इनके आधार पर भोज-पुरी को अलग कहा जा सकता है। पश्चिमी हिन्दी शौरसेनी है और पूर्वी मागधी। व्याकरण का

तर्क भी सामने होना चाहिए। भारतेन्दु से हम शुरू कर सकते हैं खड़ी बोली को क्योंकि सब बोलियाँ अलग अलग हैं। यहाँ खड़ी बोली ब्रज और अवधी है। राजनीतिक दृष्टि से ही नहीं, सांस्कृतिक दृष्टि से भी गतिरोध है। साहित्यिक भाषा कृत्रिम भाषा होती है। उर्दू बोलचाल के स्तर पर खड़ी बोली के निकट है। पर साहित्य के स्तर पर हिन्दी की प्रकृति व्यंजनात्मक है। और उर्दू अविघात्मक। दोनों की व्यावहारिक कठिनाइयाँ हैं।

डॉ० रामशंकर शुक्ल रसाल के अनुसार इतिहास के बारे में पहले देखना है कि वह ठीक है या नहीं। रहीम बिना परम्परा और इतिहास जाने कैसे उन्हें जान गये? असल में भाषा जानना आवश्यक है। असली बात जानना आवश्यक है। भारतेन्दु का हरिश्चन्द्र नाटक प्रेमघन का है। इसके प्रमाण मिले हैं। साकेत ऐसी कृति नहीं थी, कि उस पर मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिलता। उर्मिला की विरह चर्चा नहीं होनी चाहिए थी। औरों ने क्यों नहीं की। काल विभाजन शब्द अनुचित है। इतिहास है भी? अन्वेषण में व्यर्थ का समय चला जाता है। इसलिए साहित्य का अध्ययन अपेक्षित है।

डॉ० रघुवंश की दृष्टि में इतिहास के प्रश्नपत्र में इतिहास की परिकल्पना और साहित्येतिहास की परिकल्पना को भी समाविष्ट कर लेना चाहिए। आवश्यक नहीं कि इस पर अंक निर्धारित किये जायँ पर पाठ्यक्रम में एक शीर्षक इस तरह का भी रहना चाहिए। साहित्य के इतिहास की परिकल्पना मूलतः एक दृष्टि देती है।

संस्कृति को हम इतिहास के अंतर्गत रखें। पर यह विषय बड़ा है। वस्तुतः इतिहास तो संस्कृति की भावभूमि है। इसलिए अलग उसे न रखें। मूलभूत इतिहास में उसका प्रवेश कर देंगे, तो संस्कृति का इतिहास स्वयं स्पष्ट हो जायगा। संस्कृति तो मूलतः साहित्य में अभिव्यक्त है ही। अतः साहित्यिक धारा की व्याख्या करेंगे, तो संस्कृति का भी परिचय मिल ही जायगा। उसके लिए अलग अंक भी ठीक नहीं।

समसामयिक साहित्य के बारे में कठिनाई होती है। समसामयिक साहित्य का वातावरण के द्वारा ही परिचय देना अच्छा है। क्योंकि कक्षा में सारी सृजन-प्रक्रिया को समझाना कठिन है। यूरोप में भी आधुनिक काल ही विकसित है। इसलिए यहाँ भी इतिहास में वैसा हो, तो बुरा नहीं।

डॉ० गोपीनाथ तिवारी की राय में अन्य विषयों में इतिहास को प्राधान्य दिया जाता है, तब हिन्दी के लिए भी उसकी आवश्यकता है। किसी भी काल में कोई विशेष प्रवृत्ति क्यों हुई है, इसके लिए हमें उस युग का इतिहास देखना ही पड़ता है। रीतिकाल के शृंगार के पीछे इतिहास है। इसलिए उसकी आवश्यकता है। सभी कालों की यही स्थिति है। प्रवृत्तियों का विकास भी इतिहास द्वारा ही जाना जा सकता है। गोरखपुर में उर्दू, संस्कृत और हिन्दी साहित्य का इतिहास है। दो वर्ष पूर्व संस्कृति का इतिहास भी था। अब भी बी० ए० तक है। विज्ञान में भी इतिहास है। सांस्कृतिक इतिहास अलग होना चाहिए। इतिहास के साथ नहीं होना चाहिए। अंग्रेजी साहित्य का इतिहास रखा जा सकता है, पर विरोध इसलिए हुआ है कि हिन्दी साहित्य और पाश्चात्य साहित्य की प्रवृत्ति भिन्न है।

डॉ० विजयेन्द्र स्नातक के मत से दुर्भाग्य है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास की शुरुआत अंग्रेजों से हुई। कठिनाई का मूल कारण यही है। इतिहास का प्रारम्भ तत्त्वचिंतन से नहीं हुआ। तत्त्वचिंतन और तथ्यसंग्रह दोनों के अंतर को मानकर इतिहास को समझना है, जिससे फिर शंकाएँ न उठें। हमारे यहाँ ऐसी परम्परा नहीं है। हम वृत्ति पढ़ाते हैं। इतिहास न वृत्त-संग्रह है, न तथ्य-संग्रह। वह तत्त्व-संग्रह है। शुक्ल जी ने कुछ काम किया। इसीलिए वे प्रतिष्ठित हैं। हमें व्यक्तिविशेष की मान्यताओं पर बल देना होगा कि वे वहाँ तक भ्रामक हैं अथवा नहीं। व्यक्तिगत मान्यता इतिहास की दृष्टि से वैसे अनपेक्षित है। केवल एक व्यक्ति की मान्यता अध्यापक के लिए खतरा है। साहित्य के इतिहास का जो विस्तार है, वह वाङ्मय का विस्तार है। साहित्य और वाङ्मय की विभाजक रेखा खींचनी होगी। अन्यथा भ्रम उत्पन्न होगा।

श्री प्रकाशचंद्र गुप्त की दृष्टि में इतिहास का अध्ययन आवश्यक है, लेकिन कठिन है। अंग्रेजी साहित्य में भाषा का इतिहास और साहित्य का इतिहास एक साथ पढ़ाया जाता है। यह प्रश्न चिंतनीय है कि साहित्य में जो जो नयी-नयी मान्यताएँ आती हैं, उनका मूल्यांकन, अध्यापन प्राध्यापक किस तरह करें। पर मौलिक चिंतन विद्यार्थी को बताया जाय, तो वह कठिनाई में पड़ जाता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास को दो भागों में बाँटना चाहिए—मध्ययुग, आधुनिक युग। आधुनिक युग के विभाजन में कई कठिनाइयाँ हैं। भारतेन्दु युग को जागरण का युग भी कहा जा सकता है। व्यक्तियों को प्राधान्य न देकर प्रवृत्तियों पर ध्यान देना ज्यादा उपयोगी है। बहुत निकट के साहित्य को कुछ समय देना होगा। जो काल-प्रवाह ने निश्चित कर दिया है, उसे स्थान मिलना चाहिए।

डॉ० नगेन्द्र के विचार से पहले 'हिन्दी' का अर्थ और हिन्दी का क्षेत्र स्पष्ट करना आवश्यक है। साहित्य का विस्तार, उसकी सीमा भी स्पष्ट कर देनी चाहिए। आज आदिकाल का अनंत साहित्य आ रहा है। प्रायः प्रत्येक इतिहासकार ने मुख्य प्रवृत्तियाँ और उनके संदर्भ में प्रमुख उन्नायकों आदि का विवेचन किया है। प्रश्न यह है कि अध्यापन का आधार क्या हो। क्योंकि अनेक मत-मतान्तर हैं। आज को स्वीकार करने के लिए अतीत को स्वीकार करना होगा। सभी प्रवृत्तियों के गुण-दोष का समन्वय करके अध्यापक को इतिहास पढ़ाना होगा। ब्लेकमेलिंग पत्रकारिता का अंग है। हमें यह जानना होगा कि शुक्ल जी ने साहित्य-असाहित्य के भेद से कुछ कृतियाँ छोड़ दी हैं। फिर भी शुक्ल जी प्रशंसनीय हैं। परिवेश, विकास क्रम, प्रवृत्तियाँ, उन्नायक यह अध्ययन का क्रम होना चाहिए।

डॉ० रामकुमार वर्मा के दृष्टिकोण से साहित्य के इतिहास के संदर्भ में पहली ही बात छूट जाती है। वह है हिन्दी का परिप्रेक्ष्य। हमारा दायित्व राष्ट्रीय ही नहीं, अंतर्राष्ट्रीय भी है। विदेशों में व्याकरण और इतिहास के माध्यम से सारी जानकारी प्राप्त की जाती है। इसलिए विद्यार्थी को राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में अध्ययन करना चाहिए। जिससे परिप्रेक्ष्य उपस्थित हो। इतिहास अनुशासन है। वस्तुतः ऐतिहासिक दृष्टि एक भिन्न दृष्टि है। इतिहास में भी एक रस है। जिस परिवेश में कोई साहित्यकार लिखता है, वह परिवेश बहुत दूर तक उस साहित्य के लिए उत्तरदायी है। जैसे कृष्णकाव्य के बहुत से कवि हैं, पर अपने-अपने परिवेश के अनुसार

उनमें भिन्नता है। अतः विभिन्न कवियों के आंतरिक तत्त्वों की व्याख्या के लिए इतिहास रस को समझना होगा। काल-विभाजन की दृष्टि परिष्कृत एवं परिवर्तित होनी चाहिए। काल के स्थान पर काव्य उपयोगी है। आज जो विभाजन है वह समीचीन नहीं है। यदि प्राचीन, मध्य और आधुनिक नाम से विभाजन कर उनके अंतर्गत प्रवृत्तियों को अलग-अलग बाँट दें, तो अच्छा हो। अनेक काव्य रख सकते हैं। जैसे प्राचीन में वीरगाथा काव्य, चारण-काव्य, जैन काव्य आदि। विदेशों में काल कोई नहीं मानता। जैसे रीतिकाल आदि। व्यक्तिवादी दृष्टिकोण, धर्म, समाज, दर्शन और राजनीति का संकेत आवश्यक है। सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का निर्देश कर सकें, तो कवियों की प्रवृत्ति के समझने में अधिक सहजता होगी, लेकिन संस्कृति अलग से नहीं पढ़ायी जानी चाहिए। आजकल हिन्दी साहित्य के इतिहास की बहुत सी बातें अधूरी हैं। उनको पूरी होने की आवश्यकता है। आज अनेक पांडुलिपियाँ मिल रही हैं जिनके पठन-पाठन की अपेक्षा है। जहाँगीर के बाद कला अस्त हुई। रोमन स्ट्रक्टचर की भाँति वह अनुभूतिमय रही। हमें जानना होगा कि एक ओर कवच को तोड़कर साहित्य सामने आया है। बीजापुर, गोलकुंडा में हिन्दी साहित्य रहा है। इतिहास को ऐतिहासिक दृष्टि से पढ़ें, तत्त्वान्वेषण की दृष्टि से नहीं। तभी इतिहास रस की अनुभूति होगी। हिन्दी का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। प्रत्येक साहित्य की अपनी विधा है। पर उनके उत्स की खोज करनी होगी।

अध्यक्ष डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने कहा : विश्वविद्यालयों में हिन्दी साहित्य के इतिहास के पढ़ाने के तीन तरीके हैं : (१) इतिहास को भाषा-विज्ञान के साथ, (२) हिन्दी, उर्दू और संस्कृति का एक साथ इतिहास और (३) साहित्य का इतिहास। कहीं-कहीं अनमेल विवाह की तरह इतिहास को काव्यशास्त्र के साथ भी रखा गया है। वक्ता साहित्य के इतिहास के पक्ष में प्रायः हैं। इतिहास और संस्कृति का सम्बन्ध अविच्छिन्न है। उनका गठबन्धन अच्छा है। लेकिन पढ़ाते समय अलग न पढ़ाया जाय। परस्पर सम्बन्ध के लिए ऐसा करना आवश्यक है। अन्यथा दोनों उखड़े-उखड़े लगेंगे। स्वतंत्र प्रश्न-पत्र होना चाहिए। उर्दू साहित्य का इतिहास भी साथ में हो। पर जिस रूप में वह पढ़ाया जाता है, उसमें परिवर्तन की अपेक्षा है। प्रत्येक व्यक्ति और इतिहास का क्या सम्बन्ध है, यह निर्णय कठिन है, प्लेटो ने इस ओर संकेत किया है। इसके अध्ययन में हजारों वर्ष लग सकते हैं। इतिहास द्वारा या मानव-संस्कृति का ज्ञान होता है, साहित्य द्वारा मानवीय इतिहास का लेखा-जोखा एकत्र होता चलता है। इतिहास एक युग-मन की ओर ले जाय, ऐसा होना चाहिए, व्यक्ति तो एक यंत्र है जैसे डॉ० रामकुमार वर्मा इतिहास के लिए एक औजार हैं। लेकिन हम एक ही डंडे से उन्हें नहीं हाँक सकते। जैसे समूचे शरीर का ज्ञान नहीं होता, उसी प्रकार समग्र इतिहास का ज्ञान नहीं हो सकता। काल विभाजन में परिवर्तन अपेक्षित है। हिन्दी संस्कृति की अन्य संस्कृतियाँ भी हैं, केवल मध्यदेश ही नहीं है। अखिल भारत है। विदेशी विद्वान् गार्सां द तासी ने सांस्कृतिक पीठिका नहीं प्रस्तुत की।

शिवसिंह सरोज ने वृत्त लिखा। सबसे पहले ग्रियर्सन में काल विभाजन मिलता है। रामचंद्र शुक्ल और मिश्रबंधुओं ने भी काल-विभाजन वस्तुतः नहीं किया। इतिहास वैज्ञानिक नहीं बन सका। प्रवृति की दृष्टि ही नहीं विकसित हो पायी। डॉ० श्यामसुंदरदास ने प्रवृत्ति

पर विचार किया था। जो शुक्ल जी से अधिक वैज्ञानिक या आधुनिक कहा जा सकता है। आदिकाल, मध्यकाल, आधुनिक काल ठीक है। लेकिन आधुनिक काल कब तक चलेगा? मैं समझता हूँ, १९४७ के पहले को ब्रिटिशकाल कहा जाय और उसके बाद को आधुनिक काल। क्योंकि आधुनिक अंग्रेजी दामन-नीति उस समय कार्यशील थी तथा उस समय भारतीय आंदोलनों ने इस्लामी सभ्यता की चुनौती से प्रेरित होकर समाज को विघटित होने से उसी युग में बचाया। इन दोनों स्थितियों का प्रभाव १९४७ से पहले देखा जा सकता है। इसलिए यह नाम उचित है।

●

समापन समारोह

दिनांक : १२.१०.६४
समय : सायं ३ से ५ बजे

सभापति

- डॉ० रामकुमार वर्मा — प्रयाग

वक्ता

- डॉ० विजयेन्द्र स्नातक — दिल्ली
- डॉ० श्रीकृष्णलाल — वाराणसी
- डॉ० गुरुप्रसाद टण्डन — उज्जैन
- डॉ० नगेन्द्र — दिल्ली
- डॉ० रघुवंश — प्रयाग
- डॉ० जगदीश गुप्त — प्रयाग
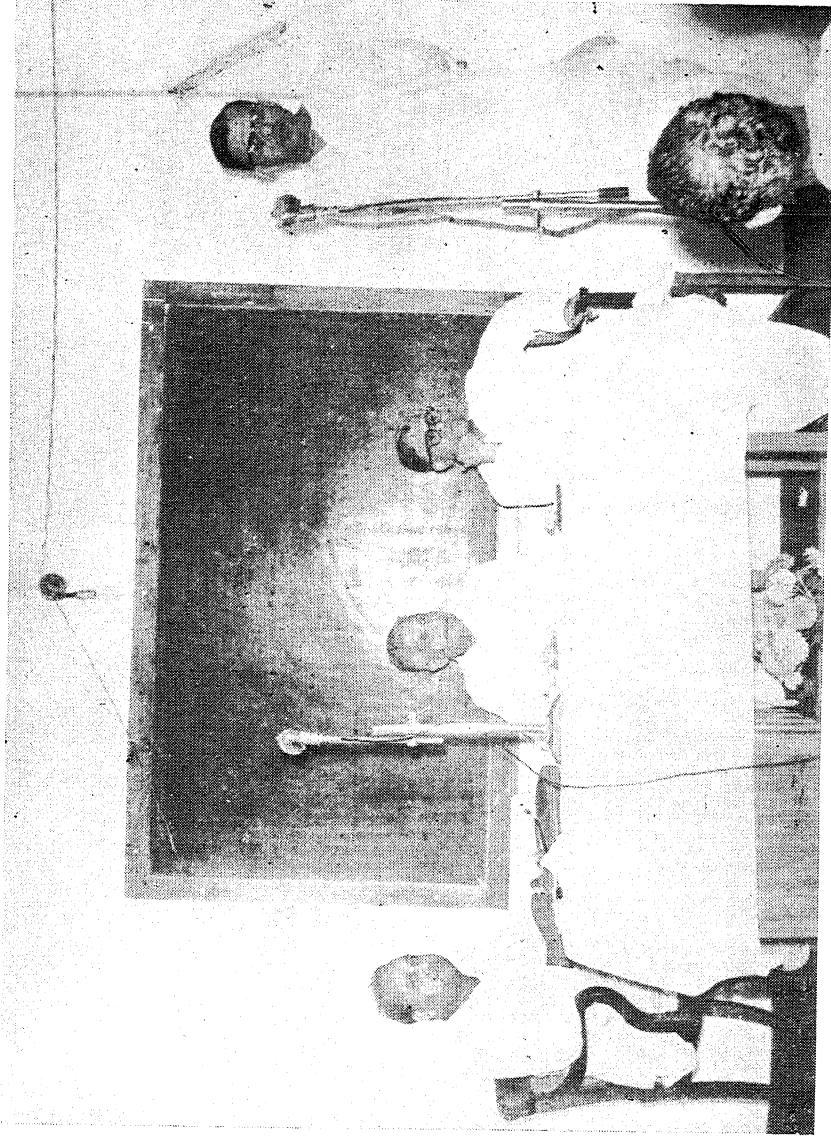
समापन समारोह

१२–१०–६४

दाँये से बाँये––डॉ० नगेन्द्र, डॉ० विजयेन्द्र स्नातक, डॉ० रामकुमार वर्मा (सभापति) डॉ० जगदीश गुप्त (निदेशक)

अध्यक्ष डॉ० रामकुमार वर्मा ने कहा : इन गोष्ठियों में ६ दिनों तक विविध दृष्टिकोणों से विचार हुआ। कलकत्ते से लेकर अहमदाबाद और केरल से लेकर इलाहाबाद तक के विद्वानों ने एक साथ बैठकर विचार किया। इसके फलस्वरूप एक व्यवस्थित पद्धति प्रस्तुत हुई। कुम्भ के अवसर पर इसी प्रकार माघ में मकर की सूर्य-किरणों का प्रभाव पाया जाता है।

हमें अब विचारों का प्रारूप देना है। और समानताएँ तथा विषमताएँ देखनी हैं। समानता से सहमति हो, उसके लिए विचार आवश्यक है। निष्कर्ष रूप में ८ बातें समान हैं। इस प्रकार एक अष्टाध्यायी प्रस्तुत हुई।

(१) भारत के विश्वविद्यालयों में यदि एकीकरण न हो सके, तो समानीकरण होना आवश्यक है। जिससे यदि एक विश्वविद्यालय से दूसरे विश्वविद्यालय में विद्यार्थी जाय, तो उसे असुविधा न हो। प्रश्नपत्रों की संख्या आठ हो। साहित्य और शास्त्र का विभाजन समानुपाती हो। आठ से अधिक या कम हो, तो विचार करें कि हमें प्रश्नपत्र बढ़ाने या घटाने चाहिए या नहीं। यदि ६ प्रश्नपत्रों का स्तर वही हो, तो कठिनाई नहीं। यदि हो, तो कोशिश की जाय। यदि प्रयत्न विफल हो, तो स्तर बनाये रखा जाय। ९ और ६ संख्याओं पर पुनः विचार कर सकते हैं। (२) अध्ययन और अध्यापन का स्तर उठाया जाय। इसके लिए हम कुछ सुझाव रखें। विश्वविद्यालय के अन्य विषयों से हीन हिन्दी विषय न हो। केवल प्रामाणिक संस्करणों को ही पढ़ाया जाय। प्रामाणिक ग्रन्थों एवं सन्दर्भ-ग्रन्थों की एक अच्छा सूची भी रखें। सूचनाएँ भी एकत्र करते रहें। प्रकाशन-समाचार भी देखते रहें। (३) प्रश्नपत्रों से सम्बन्धित विद्यार्थियों और अध्यापकों की गोष्ठी—पाठ्यक्रम के लिए—जब भी हो, उसमें उस विषय का विशिष्ट विद्वान् बाहरी चाहे हो, चाहे स्थानीय, उपस्थित हो। आठ प्रश्नपत्रों की गोष्ठियाँ आठ महीने में कर लें। यदि धन हो, तो विद्वानों को बुलाकर उनसे भाषण-माला करायें। आठ प्रश्नपत्रों की तीन-तीन भाषणमालाओं से एक नयी सामग्री बन सकती है। इससे विद्यार्थियों का धरातल ऊँचा होगा। (४) विभागीय पुस्तकालयों की स्थापना हो। हमारे विभाग में विद्यार्थियों से नामांकन के समय जो शुल्क उनकी परिषद् के लिए लिया जाता है, उसका ३०% पुस्तकालय को दे दिया जाता है, जिससे वह बढ़ता जाता है। (५) किन्हीं क्षेत्रों में आधुनिक भाषा का अध्ययन कम हो रहा है। क्षेत्रीय विश्वविद्यलियों को अपनी परम्परा को छोड़ना चाहिए। (६) काव्यशास्त्र काव्यानुशासन की दृष्टि से विकासोन्मुख हों तथा इतिहास में तत्त्व चिन्तन पर बल दिया जाय, जिससे साहित्यानुशासन सम्भव हो सके। दोनों के प्रश्नपत्र अलग हों। भाषा-विज्ञान के सैद्धान्तिक पक्ष का सामान्य अध्ययन हो, जिसमें हिन्दी की प्रकृति, क्षेत्रीय बोलियाँ तथा व्यावहारिक भाषा-विज्ञान का भी अध्ययन हो। संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश या कोई एक भारतीय भाषा का पाठालोचन या कोई एक उपयोगी कला पढ़ायी जाय। चाहे क्षेत्रीय भाषाओं का

विशिष्ट क्षेत्रीय विश्वविद्यालयों में अध्ययन हो। (७) मौखिक परीक्षा होनी चाहिए। क्योंकि इससे विद्यार्थी का मत सार्थक होता है। उसे भाषण-कला का ज्ञान होता है। (८) शोध के लिए उच्चस्तरीय आयोग की स्थापना की जाय, जो विविध विश्वविद्यालयों में होने वाले शोधों का समायोजन करे। मूर्धन्य प्राध्यापकों तथा अध्यक्षों के सहयोग से यह सम्भव है। यह आयोग अगले वर्ष की योजना बनाये, और एक पत्रिका भी निकले। इसके लिए चाहे तो पूरे भारत को चार जोन्स में बाँट दें।

डॉ० विजेयन्द्र स्नातक ने प्रतिवेदन को संक्षेप में बनाकर साइक्लोस्टाइल कराकर बाद में पेश करने को कहा और पाठ्यक्रम संकलित करके प्रकाशित कराने का संकेत दिया। यही बात उनकी दृष्टि में रामकुमार वर्मा ने प्रतिवेदन और पाठ्यक्रम के विषय में कही थी।

डॉ० श्रीकृष्ण लाल तथा **डॉ० गुरुप्रसाद टन्डन** ने भी अपने विचार व्यक्त किये। बीच-बीच में शोध-आयोग के संदर्भ को लेकर डॉ० नगेन्द्र ने विरोध भी प्रकट किया।

डॉ० नगेन्द्र के अनुसार अखिल भारतीय महत्व प्राप्त करने के लिए इस पाठ्यक्रम से सम्बन्धित कार्य-कलापों का सम्बन्ध भारतीय हिन्दी परिषद् से ही हो, जैसे मैसूर आदि में हुआ है। इनमें छोटे-छोटे विशिष्ट विषयों पर विचार-विमर्श सम्भव है।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने पुनः भाषण करते हुए कहा कि हमें चाहिए कि हम एक प्रस्ताव विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के पास भेजें। जिसका डॉ० नगेन्द्र ने विरोध किया और **डॉ० रघुवंश ने** डॉ० नगेन्द्र का समर्थन किया।

अन्त में **डॉ० जगदीश गुप्त** ने शिविर के आयोजन को विशेष सफल बनाने में सहयोग देने वाले सभी व्यक्तियों के प्रति धन्यवाद प्रकाश किया और षष्ठदिवसीय गोष्ठी का अन्तिम समारोह समाप्त हुआ।

●

परिशिष्ट—१

विविध विश्वविद्यालयों के स्नातकोत्तर हिन्दी पाठ्य-क्रमों का स्वरूप और प्रश्न-पत्रों की स्थिति

•

आगरा विश्वविद्यालय

एम० ए० परीक्षा १९६५–६६

कुल निम्नलिखित आठ प्रश्नपत्र होंगे जिनमें से पत्र ८ उत्तरार्द्ध में लिया जा सकेगा। अवशिष्ट सात पत्रों में से चार प्रथम वर्ष तथा तीन द्वितीय वर्ष के विद्यार्थियों के लिए होंगे।

प्रथम वर्ष

प्रश्नपत्र १. आधुनिक गद्य और नाटक।

प्रश्नपत्र २. आधुनिक-काव्य।

प्रश्नपत्र ३. मध्यकालीन साहित्य

प्रश्नपत्र ४. प्राचीन काव्य

द्वितीय वर्ष

प्रश्नपत्र ५. आलोचना के सिद्धान्त और हिन्दी साहित्य का इतिहास।

आलोचना—शब्दशक्ति; काव्य : दृश्य और श्रव्य; रस-सिद्धान्त, ध्वनि, गुण-दोष, अलंकार, नाट्य शिल्प-विधान, नाटक में यथार्थवाद और आदर्शवाद, नायक की धारणा, उपन्यास एवं लघु कथाओं की रचना के सिद्धान्त, निबन्ध और उसके प्रकार, आलोचना, उसके भेद और, कार्य, साहित्य के नव रूप : गद्यकाव्य, रेखाचित्र आदि।

इतिहास—हिन्दी साहित्य की मुख्य प्रवृत्तियाँ, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, साहित्य पर धार्मिक और राजनीतिक प्रभाव, विभिन्न कालों की मुख्य विशेषताएँ और युग-विशेष के महत्व-पूर्ण कवि।

प्रश्नपत्र ६. तुलनात्मक भाषा-शास्त्र और हिन्दी भाषा का विकास।

भाषा-विज्ञान का इतिहास, भाषा की उत्पत्ति, भाषाओं का वर्गीकरण, भाषाओं में परिवर्तन के कारण, ध्वनि-परिवर्तन, रूपात्मक परिवर्तन, अर्थ परिवर्तन, वर्ण परिवर्तन एवं

शब्दकोश सम्बन्धी परिवर्तन, भारतीय आर्य भाषाओं का हिन्दी के साथ प्रासंगिक इतिहास, हिन्दी का विकास, हिन्दी तथा उसकी बोलियाँ और हिन्दी शब्दकोश के मूल तत्व, देवनागरी लिपि का विकास।

प्रश्नपत्र ७. एक सहायक आधुनिक भारतीय भाषा या एक आधारित भाषा या विशेष साहित्यकार और काल का विस्तृत आलोचनात्मक अध्ययन।

(क) उर्दू, मराठी, बँगला।

(ख) संस्कृत, पालि, अपभ्रंश।

(ग) सूर, तुलसी, केशव, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जयशंकर प्रसाद।

प्रश्नपत्र ८. निबन्ध (साहित्यिक विषयों पर आधारित)।

●

उत्कल विश्वविद्यालय

एम० ए० परीक्षा १९६६

कुल आठ प्रश्नपत्र होंगे। प्रत्येक प्रश्नपत्र चार घण्टे और १०० अंकों का होगा।

प्रथम वर्ष

प्रश्नपत्र १. प्राचीन साहित्य (भक्ति काव्य के अतिरिक्त)।
४० अंक व्याख्या के लिए निर्धारित हैं।

प्रश्नपत्र २. आधुनिक गद्य और नाटक।
४० अंक व्याख्या के लिए निर्धारित हैं।

प्रश्नपत्र ३. भाषा विज्ञान, हिन्दी और उसकी बोलियों का ऐतिहासिक विकास।

१. भाषा-विज्ञान के सामान्य सिद्धान्त, भाषा शास्त्र का इतिहास, भाषाओं में विकास और परिवर्तन, भाषाओं के परिवार, व्यावहारिक ध्वनि विज्ञान, नाद-यन्त्र का गठन, उच्चारण-स्थान और ध्वनियों का परिचय, हिन्दी ध्वनियाँ, रूप विचार का सामान्य ज्ञान, शब्द, पद अर्थ-मात्रा और रूपमात्रा का परिचय, अर्थविचार, अर्थविचार सम्बन्धी नये विचार, शब्दों की व्युत्पत्ति तथा वर्गीकरण।

२. संसार की भाषाओं का वर्गीकरण, भारत-यूरोपीय-परिवार की भाषाएँ, भारतीय, आर्यभाषाओं का विकास क्रम, प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएँ, मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषायें, आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ, हिन्दी भाषा और उसकी विभिन्न बोलियाँ : ब्रज, अवधी, भोजपुरी, खड़ी बोली (उर्दू और हिन्दी), मैथिली; हिन्दी शब्द समूह, वाक्य विन्यास, हिन्दी-व्याकरण का ऐतिहासिक विकास,।

३. लिपि-विज्ञान, भाषाओं के विकास में लिपियों का योग दान, देवनागरी लिपि का विकास।

प्रश्नपत्र ४. सहायक भाषाएँ

(१) निम्नलिखित में से एक :

(क) संस्कृत, (ख) पालि, (ग) प्राकृत, (घ) अपभ्रंश, – ५० अंक

एम० ए० में उपर्युक्त भाषाओं को वही विद्यार्थी ले सकेंगे, जिन्होंने इण्टर या बी० ए० में संस्कृत नहीं लिया है।

(२) निम्नांकित में से एक :

(क) उड़िया, (ख) बंगाली, (ग) उर्दू, (घ) तेलुगु – ५० अंक

द्वितीय वर्ष

प्रश्नपत्र ५. आधुनिक काव्य (भारतेन्दु से आज तक)।

प्रश्नपत्र ६. भक्तिकाव्य।

प्रश्नपत्र ७. विशेष अध्ययन।

परीक्षार्थी निम्नलिखित विषयों में से एक ही ले सकेंगे।

(क) लोक भाषाओं का अध्ययन तथा क्षेत्रीय कार्य

(१) जनपदीय भाषाओं का अध्ययन, जनपदीय भाषाएँ तथा साहित्य सम्बन्धी समस्याएँ, जनपदीय भाषाओं का साहित्य, लोक गीत, गीत कथा आदि विभिन्न विधाओं का अध्ययन।

(२) कहावत, मुहावरा, गीत रूप आदि का विशेष अध्ययन। लोक साहित्य का समाज शास्त्रीय अध्ययन, लोक साहित्य का काव्य-दृष्टि से अध्ययन। लोक साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन।

(ख) ग्रन्थ-सम्पादन और पाठ-संशोधन विज्ञान

अर्थ, पोथियों के प्रकार और भेद, पाठ सम्बन्धी अशुद्धियों के कारण। ग्रन्थ-सम्पादन और पाठ-संशोधन के सिद्धान्त, लेखन-कला और उसकी सामग्री का इतिहास, हिन्दी ग्रन्थों के सम्पादन की कठिनाइयाँ। हिन्दी ग्रन्थों के पाठ संशोधन और उनके सम्पादन का इतिहास।

(२) नाटक, उसके भेद और रंगमंच

सिद्धान्त, प्रणाली।

(३) प्रबन्ध-काव्य, मुक्तक काव्य और गीति काव्य।

लक्षण और उसके भेद, परम्परा, इतिहास।

प्रश्नपत्र ८. (१) हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास – ५० अंक

(२) साहित्यालोचन के सिद्धान्त – ५० अंक

(अ) भारतीय समीक्षा-शास्त्र का संक्षिप्त इतिहास, अलंकार, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति, रस तथा औचित्य-विचार के सम्प्रदायों का सामान्य परिचय। हिन्दी का रीतिकालीन काव्य-विवेचन।

(ब) काव्य के स्वरूप तथा उद्देश्य के सम्बन्ध में प्लेटो और अरस्तू के विचार। रोमन

विचारकों के अनुसार काव्य का उद्देश्य : प्ररोचना, शिक्षा, आनन्द और उल्लास; रीतिवादी और स्वच्छन्दवादी काव्य सिद्धान्त, यथार्थवाद और प्रकृतिवाद, अभिव्यक्तिवाद, मनोवैज्ञानिक और मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्तों की प्रतिक्रिया, समाजवादी यथार्थवाद और मार्क्सवाद।

(स) विविध साहित्य रूपों के स्वरूप और उपादान—नाटक, कहानी, उपन्यास, एकांकी, निबन्ध, समालोचना आदि और इन सबका आधुनिक हिन्दी साहित्य में स्थान और विकास-क्रम।

(द) हिन्दी साहित्य की विभिन्न साहित्यिक धाराओं के स्वरूप तथा विकास-क्रम का परिचय—साहित्य का काल-विभाजन, आदिकालीन हिन्दी साहित्य, अपभ्रंश के चरित काव्य, शृंगार और रीति परम्परा, निर्गुण साहित्य के मूल उत्स, जैन, सन्त, बुद्ध, सिद्ध तथा नाथ सिद्ध चरित काव्य की परम्परा, सूफी साधना के प्रवेश और साहित्य पर उसका प्रभाव, विविध वैष्णव मत और साहित्य पर उनका प्रभाव, सगुण भक्तिधारा, रीति साहित्य, आधुनिक काल में गद्य का उद्‌भव और विकास, यूरोपीय सम्पर्क; पाश्चात्य साहित्य की विविध धाराओं का स्वरूप, पत्र-पत्रिकाओं का प्रारम्भ, उनका स्वरूप और विकास तथा साहित्य में उनका योग।

●

उस्मानिया विश्वविद्यालय

एम० ए० परीक्षा १९६४–६५

प्रथम वर्ष

चार प्रश्नपत्र ● समय : तीन घण्टे ● प्रत्येक १०० अंक

उत्तीर्णांक सम्पूर्ण : ४५ प्रतिशत ● द्वितीय वर्ष में उत्तीर्णांक : ४० प्रतिशत

श्रेणियाँ : प्रथम कुल योग के ६० प्रतिशत पर तथा द्वितीय ५० प्रतिशत या उससे ऊपर।

प्रश्नपत्र १. प्राचीन और मध्यकालीन हिन्दी काव्य।

प्रश्नपत्र २. आधुनिक हिन्दी गद्य और नाटक।

प्रश्नपत्र ३. हिन्दी साहित्य का इतिहास और आलोचना।

प्रश्नपत्र ४. संस्कृत या उर्दू या तेलुगु या तमिल।

द्वितीय वर्ष

प्रश्नपत्र १. आधुनिक काव्य।

प्रश्नपत्र २. एक साहित्यकार का विशेष अध्ययन – सूरदास।

प्रश्नपत्र ३. भाषा शास्त्र की रूप रेखा और हिन्दी भाषा का इतिहास।

(क) भाषा-विज्ञान – भारतीय आर्य के विशेष सन्दर्भ में

निम्नलिखित शीर्षक निर्धारित हैं :—

भाषा विज्ञान का क्षेत्र, भारतीय भाषा विज्ञान और भारतीय योग भाषा-विज्ञान की

शाखाएँ और उनका अध्ययन। भाषाओं का रूपात्मक अध्ययन। संसार की भाषाओं के मुख्य परिवार और उनकी विशेषताएँ। इण्डो-आर्यन के विशेष सन्दर्भ में तुलनात्मक भाषा शास्त्र। ऐतिहासिक भाषा विज्ञान, भाषा वैज्ञानिक परिवर्तन, ध्वनि परिवर्तन, रूपात्मक विकास, अर्थ परिवर्तन, वर्णगत परिवर्तन, शब्द समूह में परिवर्तन।

वर्णनात्मक भाषा विज्ञान – भाषा वैज्ञानिक गठन और विश्लेषण, ध्वनि विज्ञान और ध्वनि ग्राम, व्याकरण, वर्ण योजना। भाषा विज्ञान में क्षेत्रीय-प्रणाली (फील्ड मेथड) (केवल सैद्धान्तिक)। देवनागरी के विशेष सन्दर्भ में लिपि का इतिहास।

(ख) हिन्दी का ऐतिहासिक व्याकरण

हिन्दी ध्वनियाँ और उनका विकास, हिन्दी में विदेशी ध्वनियाँ, संज्ञा, कारक, लिंग और वचन, परसर्ग, संख्यावाची विशेषण, सर्वनाम, क्रियारूप सहायक क्रियाएँ, कृदन्त, काल, वाच्य, कारणात्मक, संयुक्त क्रियाएँ, अव्यय।

नोट—हिन्दी के ऐतिहासिक व्याकरण का अध्ययन, जो खड़ी बोली पर आधारित होगा। लेकिन ब्रज और अवधी का ज्ञान भी आवश्यक है। नवीन इण्डो-आर्यन भाषाओं का तुलनात्मक ज्ञान अपेक्षित है। प्राचीन भारतीय आर्यभाषाओं का परिचय (वैदिक, ब्राह्मण, और संस्कृत) और मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएँ (पालि प्राकृत और, अपभ्रंश) की भी आशा है।

प्रश्नपत्र ८. निबन्ध या लघु प्रबन्ध

लघु प्रबन्ध कम से कम ५० पृष्ठों का अध्यक्ष की अनुमति से लिये गये विषय का होगा।

●

कलकत्ता विश्वविद्यालय

एम० ए० परीक्षा १९६४

प्रश्नपत्र १. हिन्दी साहित्य का इतिहास — १०० अंक

(हिन्दी साहित्य के विकास से सम्बन्धित भारतवर्ष के राजनीतिक एवं सामाजिक इतिहास का भी सामान्य ज्ञान अपेक्षित है।)

प्रश्नपत्र २. (क) आदिकालीन हिन्दी साहित्य – ५० अंक

(ख) हिन्दी भाषा का इतिहास – ५० अंक

(मध्यकालीन भारतीय आर्य-भाषाओं एवं अपभ्रंश के कुछ संग्रहीत पाठ्यांश—निर्दिष्ट पाठ्यग्रन्थों के अध्ययन के अतिरिक्त मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं के व्याकरण का भी सामान्य ज्ञान अपेक्षित है।)

प्रश्नपत्र ३. भक्तिकालीन हिन्दी काव्य।

प्रश्नपत्र ४. आधुनिक काव्य (१८०० ई० से अब तक)।

प्रश्नपत्र ५. गद्य।

प्रश्नपत्र ६. आधुनिक साहित्य का एक विशेष युग।

(अध्येतव्य विषय——छायावाद तथा रहस्यवाद युग की पृष्ठभूमि में जयशंकर प्रसाद के काव्य का विशेष अध्ययन।)

प्रश्नपत्र ७. (१) वैष्णव साहित्य, (२) लोक साहित्य, (३) उपन्यास एवं कहानियाँ, (४) गीति काव्य, (५) आधुनिक प्रबन्ध काव्य, (६) विशेष कवि अथवा कवि समूह का अध्ययन, (७) तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन।

(१९६४ के लिए अध्येतव्य विषय है – 'कवि समूह का अध्ययन' : रीतिकालीन कवि।)

प्रश्नपत्र ८. समीक्षा के सिद्धान्त (पौर्वात्य : पाश्चात्य) — ५० अंक

(भारतीय समीक्षा सिद्धान्तों में रस सिद्धान्त का विशेष अध्ययन अपेक्षित।)

निबन्ध — ५० अंक

●

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय

एम० ए० परीक्षा

प्रथम वर्ष

प्रत्येक १०० अंक के चार प्रश्नपत्र होंगे।

प्रश्नपत्र १. आधुनिक काव्य

(अ) ब्रजभाषा

(ब) खड़ी बोली

प्रश्नपत्र २. आधुनिक गद्य और नाटक।

प्रश्नपत्र ३. (अ) हिन्दी साहित्य का इतिहास।

(ब) संस्कृत साहित्य के इतिहास की रूपरेखा।

प्रश्नपत्र ४. साहित्यालोचन के सिद्धान्त।

(अ) भारतीय काव्यशास्त्र —४० अंक

(ब) पाश्चात्य काव्यशास्त्र के साथ आधुनिक आलोचना —६० अंक

(अ) काव्यशास्त्र की परिभाषा, काव्यशास्त्र और शैली शास्त्र, काव्यशास्त्र और छन्द शास्त्र, काव्य-उसका अर्थ और स्वरूप, कला और साहित्य, साहित्य और काव्य की चेतना-विभिन्न सम्प्रदाय-रस, ध्वनि, अलंकार, वक्रोक्ति, रीति, रस और मनोविज्ञान, रस निष्पत्ति, साधारणीकरण, काव्य का वर्गीकरण, श्रव्य——प्रबन्ध, महाकाव्य, खण्डकाव्य, मुक्तक, गीति, दृश्य काव्य, अनेक रूप——कथा, आख्यायिका, काव्य-कला-पक्ष-शब्द-शक्ति, रीति, ध्वनि भेद, अलंकारों के प्रकार, अलंकारों का विकास, काव्य और छन्द, हिन्दी छन्द शास्त्र का महत्व और विकास, संस्कृत काव्य शास्त्र का इतिहास, संस्कृत काव्य शास्त्र का हिन्दी पर प्रभाव।

(ब) आलोचना का सामान्य स्वरूप, आलोचना साहित्य, आलोचना के कार्य, आलो-

चना के भेद, आधुनिक साहित्य की चेतना और आलोचना के नियम, पश्चिम में आधुनिक आलोचना का संक्षिप्त इतिहास, हिन्दी में आधुनिक आलोचना का इतिहास।

साहित्य के तत्वों का स्वरूप, साहित्य में व्यक्तित्व, साहित्य और समाज, शैली, साहित्यिक शिल्प विधान, साहित्य के रूप।

काव्य के तत्व और स्वरूप, काव्य का वर्गीकरण, महाकाव्य के तत्व, खण्डकाव्य और मुक्तक, काव्य की तकनीक ।

कथा के तत्व, उपन्यास और कहानी, हिन्दी उपन्यासों का वर्गीकरण।

नाटक के तत्व, नाट्य शिल्प विधान, नाटकीय कथावस्तु का विभाजन, नाटक के अनेक भेद, पाश्चात्य नाटक, एकांकी और रंगमंच।

निबन्ध का वर्गीकरण और उसकी सामान्य विशेषताएँ।

द्वितीय वर्ष

प्रत्येक १०० अंक के चार प्रश्नपत्र होंगे।

प्रश्नपत्र १. (अ) भाषाविज्ञान के सिद्धान्त — ६० अंक

(ब) हिन्दी भाषा का विकास — ४० अंक

(अ) भाषा—परिभाषा, स्वरूप, उत्पत्ति, उद्भव के कारण, भाषाओं के विविध रूप, संसार की भाषाओं का रूपात्मक एवं ऐतिहासिक वर्गीकरण, सेमेटिक, हेमेटिक, साइनो-तिब्बती, सामुद्रिक की मुख्य विशेषताएँ, यूरल-अल्ताई, द्रविड़ और भारोपीय की भाषाएँ, प्राचीन भारतीय आर्यभाषाओं की मुख्य ध्वन्यात्मक तथा व्याकरणात्मक विशेषताएँ, आधुनिक भारतीय आर्य तथा मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएँ।

भाषाविज्ञान—इसका क्षेत्र और महत्व, अन्य विषयों के साथ सम्बन्ध, भारतीय और योरोपीय भाषा वैज्ञानिक अध्ययन का संक्षिप्त इतिहास, भाषा विज्ञान की शाखाएं, ध्वनि विज्ञान, ध्वनि यन्त्र, ध्वनियों का वर्गीकरण, बलाघात, विस्तार, ध्वनि-परिवर्तन, ध्वनिग्रामों के परिवर्तन के कारण, रूप विज्ञान, पार्ट्स ऑव स्पीच, भाषा का रूपात्मक गठन, अर्थ विज्ञान, अर्थ परिवर्तन, अर्थ परिवर्तन के कारण।

लिपि—ऐतिहासिक उत्पत्ति, भारतीय लिपियों का इतिहास, (विशेष रूप से देवनागरी।)

(ब) हिन्दी के रूप, हिन्दी की बोलियाँ—उनकी मुख्य विशेषताएँ, मानक भाषा के रूप में हिन्दी का विकास, ध्वन्यात्मक विकास, संज्ञा रूपों का पदात्मक विकास, लिंग, वचन और कारक, संख्यावाचक विशेषण, सर्वनाम, क्रिया रूप, काल और वाच्य, सहायक क्रियाएँ, कारणात्मक तथा संयुक्त क्रियाएँ, वर्णयोजन।

प्रश्नपत्र २. प्राचीन एवं मध्यकालीन।

प्रश्नपत्र ३. विशेष अध्ययन – कोई एक

(अ) साहित्यकार—सूर, तुलसी, प्रेमचन्द के विशेष सन्दर्भ में हिन्दी उपन्यासों का विकास, जयशंकर प्रसाद।

अथवा विषय

(ब) १. संस्कृत—उन लोगों के लिए जिन्होंने हाई स्कूल या उसके बाद संस्कृत नहीं पढ़ी है।

२. पालि और प्राकृत (उनके लिए जिन्होंने बी० ए० में संस्कृत पढ़ा है।)

३. पुरानी हिन्दी और अपभ्रंश

(स) एक आधुनिक भारतीय भाषा — पंजाबी

प्रश्नपत्र ४. निबन्ध और अनुवाद

साहित्यिक या भाषावैज्ञानिक विषय पर निबन्ध ७५ अंक

अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद २५ अंक

अथवा

शिक्षक के निर्देशन में लिखा गया ७५ पृष्ठों का एक लघु प्रबन्ध १०० अंक

●

केरल विश्वविद्यालय

एम० ए० परीक्षा १९६५–६६

आठ प्रश्नपत्र हिन्दी में, प्रत्येक १२५ अंक। प्रश्नपत्र ९ संस्कृत २०० अंक और मौखिक परीक्षा १०० अंक।

प्रथम वर्ष

प्रश्नपत्र १. प्राचीन और रीतिकालीन काव्य

प्रश्नपत्र २. गद्य, नाटक, कथा साहित्य

प्रश्नपत्र ३. व्याकरण, , काव्यशास्त्र

प्रश्नपत्र ४. निबन्ध और अनुवाद।

द्वितीय वर्ष

प्रश्नपत्र ५. भक्तिकालीन काव्य

प्रश्नपत्र ६. आधुनिक काव्य

प्रश्नपत्र ७. भाषा का इतिहास और भाषा-शास्त्र।

(अ) भाषा-शास्त्र (सामान्य)

परिचयात्मक—भाषा विज्ञान की प्रकृति और क्षेत्र, भाषा-विज्ञान की प्रमुख शाखाएँ, भाषा की उत्पत्ति विषयक, धारणा (मत); भाषा की विशेषताएँ, भाषा का विकास, भाषाओं का वर्गीकरण—रूपात्मक एवं उत्पत्तिमूलक, बोलियाँ एवं उपभाषाएँ, भारतीय आर्यभाषा परिवार—सामान्य विशेषताएँ, विशद विभाजन, केण्टुम और शतम् विभाजन, भारतीय आर्य शाखाएँ।

ध्वनि विज्ञान—ध्वनि-अवयव, ध्वनि-उत्पादन-प्रक्रिया, भाषा-ध्वनि, स्वर और व्यंजन—उनका वर्गीकरण, स्वराघात, ध्वनि-परिवर्तन, प्रो-थीसिस, मेटार्थीसिस, एसीमिलेशन, हेपोलॉजी, एब्लौट एण्ड अदर, ध्वनि परिवर्तन के कारण, ध्वनि नियम, ग्रिम-नियम, ग्रैसमैन नियम, वर्नर्स नियम, ला आव पैलेटाइज़ेशन, फाटचुनेरोवला।

रूप विज्ञान—शब्द-रचना-आधार, स्टेम एण्ड एफिक्स, परसर्ग और अनुसर्ग, संज्ञा—संज्ञाओं की सामान्य विशेषताएँ, व्याकरणिक, लिंग, वचन, संख्या, क्रियाएँ।

अर्थ विज्ञान—अर्थ परिवर्तन का स्वरूप, अर्थ परिवर्तन के प्रकार, विशेषीकरण और साधारणीकरण, इर्रेडियेशन एण्ड अदर्स, अर्थ परिवर्तन के कारण, एनेलॉजी।

वर्ण-योजना—वाक्य की परिभाषा—वाक्य प्रक्रिया, वाक्यों का वर्गीकरण, वाक्य में शब्दों का क्रम।

(ब) हिन्दी भाषा का इतिहास

परिचयात्मक—भारतीय आर्य-भाषाओं का विकास, आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का वर्गीकरण—ग्रियर्सन और चटर्जी के अनुसार, हिन्दी भाषा, हिन्दी के साहित्यिक रूप, हिन्दी उर्दू हिन्दुस्तानी, हिन्दी भाषा की बोलियाँ, ब्रजभाषा, अवधी, खड़ीबोली, बुन्देलखण्डी, छत्तीसगढ़ी और अन्य, भारत की अनार्य भाषाएँ, द्रविड़ परिवार, औष्ट्री-परिवार, और उसकी विशेषताएँ, हिन्दी में ध्वनि विज्ञान प्रणाली, हिन्दी में ध्वनियों का वर्गीकरण, स्वर और व्यंजन, हिन्दी में स्वर और व्यंजन की उत्पत्ति, हिन्दी में स्वराघात, हिन्दी व्याकरण में विभिन्न सिद्धान्तों का भाषा शास्त्रीय अध्ययन, लिंग, वचन और कारक, अनुसर्ग और परसर्ग, विभिन्न कालों और प्रकारों में क्रिया रूपों का अध्ययन।

(स) देवनागरी लिपि के विकास का इतिहास

लेखन का इतिहास, लेखन के विभिन्न रूप, चित्रलिपि, भावलिपि, वर्णमाला और अन्य, अन्तर्राष्ट्रीय ध्वन्यात्मक लिपि, भारत में लेखन का विकास, भारत की लिपियाँ—ब्राह्मी और खरोष्ठी, देवनागरी, नन्दीनागरी, उभय लिपि भारतीय आर्य भाषाओं के लिए—देवनागरी लिपि।

प्रश्नपत्र ८. साहित्यालोचन और हिन्दी साहित्य का इतिहास

साहित्यालोचन :—

(अ) प्राचीन भारतीय साहित्यिक विचार—काव्य सिद्धान्त रूप और भाव के अनुसार काव्य का वर्गीकरण, सौन्दर्यानन्द के सिद्धान्त, भरत का रससिद्धान्त और उसकी व्याख्याएँ, भामह का अलंकार-सम्प्रदाय, उद्‌भट और रुद्रट—ध्वनि तथा गुण दोष सम्प्रदाय—वामन का रीति सम्प्रदाय, कुन्तक का वक्रोक्ति सम्प्रदाय, क्षेमेन्द्र का औचित्य सम्प्रदाय, आनन्द वर्धन का ध्वनि सम्प्रदाय।

(ब) साहित्य के विभिन्न स्वरूप

काव्य के विभिन्न रूप, प्रबन्ध और मुक्तक—महाकाव्य, गद्य के अनेक रूप—उपन्यास, लघु कथा और अन्य तथा उनकी शिल्प विधि, नाटक और उसका शिल्प विधान।

कला का सिद्धान्त, कला के भिन्न भिन्न रूप, क्या साहित्य कला है? साहित्य के पीछे अनुभूति—रस्किन और टॉलस्टाय जैसे विचारकों के विभिन्न मत, साहित्य और समाज, कला का समाजीकरण, समाजवादी यथार्थवाद, कला के लिए मनोवैज्ञानिक पहुँच, मनो-विश्लेषण और साहित्य, मानव क्रियाओं में काव्य का कार्य, काव्य में निगमनवाद, काव्य और समाज, काव्य और गद्य, काव्यगत कल्पना, रागात्मक सौन्दर्य की भावना, संस्कृति।

अरस्तू के सिद्धान्त—उसका अनुकरण और त्रासदी का मत, लांगिनस का अति-भौतिक सिद्धान्त, बाद के आलोचकों का काव्य विषयक मत—अर्नाल्ड, वर्ड्सवर्थ, कॉलरिज, क्रोचे, इलियट और अन्य।

पश्चिम के नाटक, पश्चिम में प्राचीन तथा आधुनिक नाटकों के रूप, उपन्यास और लघुकथा के विभिन्न पक्ष, निबन्ध के तत्व, साहित्य में विभिन्न सम्प्रदायों के सामान्य सिद्धान्त—रोमांसवाद, शास्त्रीय (classical), अभिव्यक्तिवाद, यथार्थवाद, निश्चिततावाद, (sure calism), रहस्यवाद, प्रतीकवाद, कल्पनावाद।

हिन्दी साहित्य में साहित्यालोचन के इतिहास

हिन्दी साहित्यालोचन में रीतिकालीन आचार्य कवियों की देन, भारतेन्दु के नाटक, हिन्दी में आधुनिक आलोचना के प्रारम्भ में श्यामसुन्दर दास और रामचन्द्र शुक्ल की देन, प्राचीन संस्कृत शब्दों और अंग्रेज़ी की साहित्यिक आलोचना के अनुवाद, आधुनिक युग के हिन्दी आलोचकों के मौलिक विचार।

हिन्दी साहित्यालोचन पर पाश्चात्य आलोचना के सिद्धान्त और प्राचीन भारतीय विचारों का प्रभाव।

प्रश्नपत्र ९. संस्कृत।

●

गुजरात विश्वविद्यालय

एम० ए० परीक्षा १९६५

प्रश्नपत्र १. साहित्य का विशिष्ट रूप – उपन्यास।

प्रश्नपत्र २. आधुनिक साहित्य (काव्य एवं गद्य)।

प्रश्नपत्र ३. मध्यकालीन साहित्य – उसके स्वरूप के इतिहास के सहित।

प्रश्नपत्र ४. प्राचीन युग के दो ग्रन्थकारों का समग्र रूप से अध्ययन:—

१. सूरदास, २. कबीरदास।

प्रश्नपत्र ५. भाषाशास्त्र की दृष्टि से हिन्दी भाषा का उद्‌भव, घड़तर और विकास।

प्रश्नपत्र ६. निबन्ध तथा अनुवाद

१. अंग्रेज़ी से हिन्दी में अनुवाद २० अंक

२. हिन्दी भाषा के अपठित परिच्छेदों का विवरण और विवेचन २० अंक

३. वर्तमान साहित्य विषयक प्रश्नों की चर्चा	२० अंक
४. निबन्ध	४० अंक

●

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

एम० ए० परीक्षा १९६४–६५

इस विषय में ८ पत्र होंगे। प्रत्येक पत्र १०० पूर्णांक तथा ३ घण्टे समय का होगा। ४ पत्र प्रथम वर्ष में तथा ४ द्वितीय वर्ष में लेने होंगे। किन्तु निबन्धवाला अष्टम प्रश्नपत्र द्वितीय वर्ष में ही लिया जा सकेगा।

पत्रों के विषय निम्न हैं:—

प्रश्नपत्र १. आधुनिक गद्य—उपन्यास, नाटक, निबन्ध तथा कहानी आलोचनात्मक अध्ययन।

प्रश्नपत्र २. आधुनिक कविता—आलोचनात्मक अध्ययन।

प्रश्नपत्र ३. मध्ययुगीन कविता—आलोचनात्मक अध्ययन।

प्रश्नपत्र ४. प्राचीन कविता—आलोचनात्मक अध्ययन।

प्रश्नपत्र ५. हिन्दी साहित्य का इतिहास, साहित्यालोचन के सिद्धान्त तथा काव्यशास्त्र।

प्रश्नपत्र ६. भाषा विज्ञान तथा हिन्दी भाषा का इतिहास।

(क) भाषाविज्ञान — ६० अंक

पाठ्य विषय—भाषा विज्ञान का इतिहास, भाषा की उत्पत्ति, भाषाओं का वर्गीकरण—आकृतिमूलक तथा वंशमूलक (सामान्य परिचय-मात्र) भारोपीय परिवार का, विशेषतया भारत-ईरानी भाषा वर्ग का अध्ययन, भाषाओं की परिवर्तनशीलता, ध्वनि-शिक्षा के अंग, ध्वनियों का वर्गीकरण, ध्वनि-नियम, भारोपीय भाषाओं के प्रत्यय, अर्थ परिवर्तन के नियम, भारतीय लिपियों का विकास।

(ख) हिन्दी भाषा का इतिहास — ४० अंक

प्रश्नपत्र ७. हिन्दी के किसी विशेष साहित्यकार का अनुशीलन अथवा इतर प्रान्तीय या प्राचीन भाषाओं का अध्ययन।

निम्नलिखित साहित्यकारों में से किसी एक की कृतियों का अनुशीलन:

सूरदास, तुलसीदास, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जयशंकर प्रसाद, प्रेमचन्द, मैथिलीशरण गुप्त।

अथवा

निम्नलिखित भाषाओं में से किसी एक का अध्ययन:

बंगला, गुजराती, मराठी, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, संस्कृत।

सूचना—इनमें से जिस भाषा का छात्र ने स्नातक परीक्षा में अध्ययन किया होगा अथवा जो छात्र की मातृभाषा होगी उस भाषा को वह यहाँ न ले सकेगा।

प्रश्नपत्र ८. अनुवाद तथा निबन्ध

(क) अंग्रेज़ी से हिन्दी में	२० अंक
संस्कृत से हिन्दी में	२० अंक
(ख) निबन्ध—हिन्दी साहित्य से सम्बद्ध	६० अंक

●

जबलपुर विश्वविद्यालय

एम० ए० परीक्षा १९६५–६६

प्रथम वर्ष

प्रश्नपत्र १. प्राचीन तथा भक्तिकाव्य

इस प्रश्नपत्र में साधारणतः ४० अंक व्याख्या के लिए निर्धारित हैं, शेष अंक समीक्षात्मक प्रश्नों पर रहेंगे। इस प्रश्नपत्र में शब्द-शक्ति, रस, अलंकार, गुण-दोष, तथा छन्द सम्बन्धी प्रयोगात्मक प्रश्न भी पूछे जाएँगे, जिन पर अधिक से अधिक १० अंक रहेंगे।

प्रश्नपत्र २. रीति काव्य तथा आधुनिक काव्य (नियम प्रथम प्रश्नपत्र की भाँति)।

प्रश्नपत्र ३. भारतीय तथा पाश्चात्य समीक्षाशास्त्र

इस प्रश्नपत्र के निम्नलिखित तीन भाग होंगे :—

(क) साहित्य सिद्धान्त (विविध साहित्य विधाओं के स्वरूप एवं उपादान)

कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास, एकांकी, आलोचना आदि। इन सबका आधुनिक हिन्दी साहित्य में स्थान और विकास क्रम। काव्य के स्वरूप, उद्देश्य, और प्रकार-भेद के सम्बन्ध में प्राच्य तथा पाश्चात्य विचारकों के अभिमत।

(ख) भारतीय काव्यशास्त्र

भारतीय समीक्षा शास्त्र का इतिहास—अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि, रस तथा औचित्य विचार के सम्प्रदायों का सामान्य परिचय।

(ग) पाश्चात्य काव्यशास्त्र

पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परम्परा—प्लेटो, एरिस्टाटल, लान जाइनस। जॉन ड्राइडन, गेटे, कॉलरिज, टॉलस्टाय, क्रोचे, इलियट, रिचर्ड्स, युंग।

प्रश्नपत्र ४. हिन्दी साहित्य तथा भारतीय संस्कृति का इतिहास

एम० ए० द्वितीय वर्ष

प्रश्नपत्र १. निबन्ध, उपन्यास, कहानी, नाटक

इस प्रश्नपत्र में साधारणतः ४० अंक व्याख्या के लिए निर्धारित हैं, शेष अंक समीक्षात्मक प्रश्नों पर होंगे। परीक्षार्थियों के लिए आधुनिक गद्य, उपन्यास, कहानी, तथा नाटक के क्रमिक

विकास और रचना नियमों का पूर्ण आलोचनात्मक परिचय प्राप्त करना आवश्यक है और आज तक के इन सभी साहित्यांगों का आलोचनात्मक दृष्टिकोण से व्यापक ज्ञान भी अपेक्षित है।

प्रश्नपत्र २. भाषा विज्ञान तथा हिन्दी भाषा का इतिहास

(क) भाषाशास्त्र के सिद्धान्त — ६० अंक

(ख) हिन्दीभाषा का इतिहास — ४० अंक

(क) भाषाशास्त्र का क्षेत्र, भारत तथा विदेश में भाषाशास्त्र का अध्ययन, भाषा-शास्त्र के विभिन्न अंग, भाषाओं का वर्गीकरण, संसार की भाषाओं के परिवार तथा उनका सामान्य परिचय, भारोपीय भाषा परिवार का स्वरूप, ऐतिहासिक भाषाशास्त्र, भाषा में परिवर्तन तथा उसके कारण, ध्वनि सम्बन्धी परिवर्तन तथा ध्वनि-नियम—ग्रिम नियम तथा वर्नर नियम, पद विकास, अर्थ परिवर्तन, गठन सम्बन्धी परिवर्तन, शब्द भण्डार में परिवर्तन, वर्णनात्मक भाषाशास्त्र, भाषा का गठन, एवं उसका विश्लेषण, ध्वनिग्राम शास्त्र व्याकरण एवं वाक्य विचार, भाषा सर्वेक्षण पद्धति, लिपि का इतिहास।

(ख) हिन्दी की ध्वनि प्रणाली तथा उसका उद्‌गम एवं विकास, हिन्दी में विदेशी ध्वनियाँ, संज्ञा, लिंग, वचन, तथा कारकों का विवरणात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, परसर्ग अथवा अनुसर्ग, विशेषण, सर्वनाम, क्रियापद, सहायक क्रियाएँ, कृदन्त तथा काल-रचना, वाच्य एवं संयुक्त क्रियापद, अव्यय।

सूचना—परीक्षार्थियों को परिनिष्ठित खड़ीबोली के सन्दर्भ में ही हिन्दी के ऐतिहासिक व्याकरण का अध्ययन करना चाहिए, किन्तु इसके साथ ही ब्रज एवं अवधी तथा बुन्देलखण्डी, छत्तीसगढ़ी, मालवी से भी उनका परिचित होना आवश्यक है। इसी प्रकार प्राचीन आर्य भाषा (पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश से भी उन्हें सामान्य रूप से परिचित होना चाहिए।)

प्रश्नपत्र ३. विशेष कवि अथवा लेखक

इस प्रश्नपत्र में साधारणतः ४० अंक व्याख्या के लिए निर्धारित रहेंगे, शेष अंक समीक्षा-त्मक प्रश्नों पर रहेंगे।

(क) सूरदास, (ख) तुलसीदास, (ग) जयशंकर प्रसाद, (घ) प्रेमचंद।

प्रश्नपत्र ४. निबन्ध अथवा निम्नलिखित वर्गों में से एक

(क) संस्कृत-पालि

इस प्रश्नपत्र में संस्कृत एवं पालि भाषा एवं इतिहास सम्बन्धी सामान्य ज्ञान भी आवश्यक है।

(ख) प्राकृत-अपभ्रंश

(ग) लोक साहित्य तथा हिन्दी की बोलियों का अध्ययन

(अ) हिन्दी की बोलियाँ — ४० अंक

(आ) लोक साहित्य — ६० अंक

लोक साहित्य की परिभाषा, क्षेत्र, अध्ययन का इतिहास, अन्य सामाजिक शास्त्रों से लोक साहित्य का सम्बन्ध, पुरातन कथा एवं नृ-विज्ञान आदि से सम्बन्ध।

लोक मानस एवं लोक साहित्य, लोक मानस के प्रकाशन के माध्यम, रीति, रस्म-रिवाज़, विश्वास, परम्परा, नृत्य आदि।

लोक साहित्य की परम्परा, मूल स्रोतों की खोज।

हिन्दी-क्षेत्र के लोक साहित्य के अध्ययन की उपयोगिता एवं उसका विस्तार, लोकभाषा एवं लोक साहित्य का सम्बन्ध, हिन्दी प्रदेश के लोक साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठ-भूमि, हिन्दी प्रदेश के लोक-साहित्य का सर्वेक्षण। लोक-साहित्य के रूपों में लोकगीत, लोकगाथा, लोककथा का अध्ययन, लोक साहित्य के प्रकीर्णक रूप, मुहावरे, कहावतें, पालने एवं बच्चों के गीत। लोक साहित्य में प्रदर्शित संस्कृति एवं कला।

(घ) पाठालोचन के सिद्धान्त तथा हिन्दी के प्राचीन ग्रन्थों के वैज्ञानिक दृष्टि से सम्पादन की समस्या :—

भूमिका—पाठालोचन से तात्पर्य, विस्तार क्षेत्र

पाठ-भेद—स्वहस्त लिखित ग्रन्थ, आगत ग्रन्थ, हस्तलिखित ग्रन्थ, उपलब्ध एवं अनुपलब्ध ग्रन्थ, लेखक, संशोधक।

पाठ्य मूल्यांकन—प्राचीन प्रतियाँ, उनका वंशवृक्ष

पाठ विकृति के कारण—वाह्य एवं अन्तःकरण, नेत्र-दोष, पुनरावृत्ति, शब्द भ्रम के कारण पाठ में विकृति, शब्द का अशुद्ध विभाजन, व्याकरण सम्बन्धी अशुद्धियाँ, साधारण शब्दों का ग्रहण एवं बहिष्कार, प्रक्षिप्त पाठ।

लिपि एवं लेखन सामग्री का इतिहास—हिन्दी की पाठ समस्या--देवनागरी कैथी, तथा हिन्दी से सम्बन्ध रखने वाली अन्य लिपियाँ, हिन्दी के ग्रन्थों की पाठ समस्या।

मौखिक परीक्षा

एम० ए० के दोनों वर्षों के सम्पूर्ण पाठ्यक्रम के आधार पर मौखिक परीक्षा होगी।

●

जम्मू और कश्मीर विश्वविद्यालय

एम० ए० परीक्षा १९६३

सूचना—परीक्षा का माध्यम हिन्दी (देवनागरी लिपि) होगा।

प्रश्नपत्र १. निम्नलिखित कवियों के अध्ययन के विशेष सन्दर्भ में प्राचीन तथा मध्य-कालीन काव्य।

प्रश्नपत्र २. नाटक और गद्य (उपन्यास, निबन्ध)।

प्रश्नपत्र ३. हिन्दी साहित्य का इतिहास — ७० अंक

उर्दू साहित्य का इतिहास सर सैयद से — ३० अंक

इन ३० अंकों में से १० अंक हिन्दी के खण्ड को उर्दू लिपि में लिखने पर आधारित होगा।

(अ) प्रतिनिधि लेखकों और उनके कालों के विशेष सन्दर्भ में हिन्दी साहित्य के विभिन्न युगों का आलोचनात्मक ज्ञान।

(ब) आधुनिक उर्दू साहित्य की रूपरेखा—२० अंकों की—सर सैयद हाली, शिबली, चकबस्त, इकबाल, अब्दुल हक, पतिरास, कृशन चन्दर, राजेन्द्र सिंह बेदी और इस्मत चगताई के साथ।

प्रश्नपत्र ४. साहित्यालोचन के सिद्धान्त

(अ)	साहित्यालोचन के सिद्धान्त (पाश्चात्य)	६० अंक
(ब)	साहित्यालोचन के सिद्धान्त (भारतीय)	४० अंक

(अ) आलोचना के कार्य, आलोचना के प्रकार, आलोचना के लाभ एवं हानि, हिन्दी में आलोचना का इतिहास।

साहित्य के तत्त्व, साहित्य में व्यक्तित्व, साहित्य और समाज शैली, तकनीक।

साहित्य का वर्गीकरण (काव्य, नाटक, कथा आदि)।

काव्य के तत्त्व, नाटकीय कथावस्तु का विभाजन, नाटक के विभिन्न प्रकार, काव्यगत, तकनीक, काव्य में प्रकृति का व्यवहार, काव्य जीवन के सुझाव रूप में, एकांकी, रंगमंच और छाया, रेडियो रूपक, कथा के तत्त्व, उपन्यास और लघु कथाएँ, जीवन की आलोचना के रूप में गल्प साहित्य, हिन्दी उपन्यासों का वर्गीकरण, जीवन कथा की विशेषताएँ।

निबन्ध के तत्त्व, हिन्दी निबन्ध का वर्गीकरण।

(ब) काव्य की परिभाषा और महत्त्व, निम्न सम्प्रदायों के विशेष सन्दर्भ में काव्य—धारणाओं का विकास, रस-अलंकार, वक्रोक्ति, ध्वनि रीति।

वर्गीकरण, श्रव्य काव्य, प्रबन्ध काव्य, मुक्तक, महाकाव्य, खण्ड काव्य, दृश्य काव्य, नाटक, प्रकरण, प्रहसन, कथा, आख्यायिका।

शब्द शक्ति, अभिधा, लक्षणा, व्यंजना-भेदों सहित।

रस और उसके पोषक, विभाव, अनुभाव, संचारी भाव।

गुण और दोष। शैली और उसके भेद, काव्य में अलंकारों की परिभाषा और महत्त्व, अलंकारों का विकास।

प्रश्नपत्र ५. आधुनिक काव्य

प्रश्नपत्र ६. भाषा विज्ञान और हिन्दी भाषा के विकास का इतिहास

(अ) सामान्य भाषा विज्ञान के सिद्धान्तों का परिचय :

भाषा और भाषा विज्ञान, भाषा विज्ञान के मुख्य भेद और उपभेद, रूपात्मक एवं पारिवारिक वर्गीकरण, भाषा वैज्ञानिक परिवर्तन, भाषा और बोलियाँ, भाषा और संस्कृति। पश्चिम और भारत में भाषा विज्ञान के विकास और उत्पत्ति का इतिहास, भाषा और लेखन (लिपि)।

(ब) ध्वनि विज्ञान, ध्वनि ग्राम और बोलियों का भौगोलिक विस्तार, ध्वनि यन्त्र, ध्वनियों का भाषा शास्त्र, व्यंजन और स्वर, संयुक्त ध्वनि, ध्वनि ग्राम, उसका स्वरूप और कार्य।

(स) हिन्दी भाषा का विकास और इतिहास

भारतीय आर्यभाषाएँ, हिन्दी भाषा—इसकी उत्पत्ति, उद्भव और विकास, मानक हिन्दी और हिन्दी की बोलियाँ, देवनागरी लिपि, उसका इतिहास, विकास और स्वरूप, हिन्दी में व्याकरणात्मक कोटियों का विकास और उत्पत्ति।

प्रश्नपत्र ७.	साहित्यिक विषय पर निबन्ध	८० अंक
	अंग्रेज़ी से हिन्दी में रूपान्तर	२० अंक
या	लघु प्रबन्ध और मौखिक परीक्षा	१०० अंक

यह या तो हिन्दी भाषा तथा साहित्य से सम्बन्धित विषय पर लिखा जायेगा,

या कश्मीरी भाषा और साहित्य का अध्ययन होगा।

या दोनों का तुलनात्मक अध्ययन होगा

या लोक साहित्य का अध्ययन।

प्रश्नपत्र ८. विशेष अध्ययन

यह दो रूपों में विभाजित किया गया है।

(अ) निम्न में से किसी एक साहित्यकार का अध्ययन

सूरदास, तुलसीदास, प्रसाद, प्रेमचन्द और केशव।

(ब) पाठालोचन

पाठालोचन का अर्थ, पाठ्यों के भेद, लिखित पाठ्यों में भ्रष्टाचार, हिन्दी में पाठालोचन, हिन्दी पाठ सम्पादन के समय उत्पन्न समस्याएँ।

या संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश

केवल उन विद्यार्थियों के लिए जिन्होंने इण्टरमीडिएट या उसकी समकक्ष कक्षाओं में संस्कृत पढ़ी है।

●

१६. जोधपुर विश्वविद्यालय

एम० ए० की परीक्षा पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो भागों में विभाजित होगी। दोनों ही विभागों में चार-चार प्रश्नपत्र होंगे। उत्तरार्द्ध में मौखिक परीक्षा भी होगी। कुल अंक १०००।

एम० ए० पूर्वार्द्ध

प्रश्नपत्र १. आधुनिक गद्य और पद्य।

प्रश्नपत्र २. आधुनिक कविता (खड़ी बोली एवं ब्रजभाषा)।

प्रश्नपत्र ३. (क) आलोचना के सिद्धान्त, (ख) हिन्दी साहित्य का इतिहास

(क) समालोचना, काव्यशास्त्र, नाट्यशास्त्र, छन्दशास्त्र।

(ख) हिन्दी साहित्य का इतिहास—मुख्य प्रवृत्तियाँ—सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, और साहित्य के विविध-कालों की साहित्यिक दशाएँ, मुख्य विचारों तथा प्रचलित शैलियों के साथ।

प्रश्नपत्र ४. प्रारम्भिक भाषा (संस्कृत और पालि) दोनों में से एक

या

आधुनिक भारतीय भाषाएँ (मराठी, बंगाली, डिंगल, गुजराती, तमिल, मलयालम) इनमें से एक

या

विशेष लेखक या कवि (नन्ददास, देव, रत्नाकर, हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त) में से एक।

उत्तरार्द्ध

प्रश्नपत्र १. मध्यकालीन काव्य (भक्ति और रीतिकाल)

प्रश्नपत्र २. प्राचीन काव्य (राजस्थानी और हिन्दी)

प्रश्नपत्र ३. साधारण भाषा विज्ञान और हिन्दी भाषा का इतिहास

प्रश्नपत्र ४. निबन्ध

मौखिक परीक्षा

●

१७. दिल्ली विश्वविद्यालय

एम० ए० परीक्षा १९६५

प्रश्नपत्र १. तुलनात्मक भाषाशास्त्र के सामान्य सिद्धान्त
(हिन्दी भाषा के विकास के विशेष सन्दर्भ में)

(i) तुलनात्मक भाषाशास्त्र — ६० अंक
(ii) हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि का विकास — ४० अंक

प्रश्नपत्र २. हिन्दी साहित्य का इतिहास और संस्कृत साहित्य की रूपरेखा

(i) हिन्दी साहित्य का इतिहास — ८० अंक
(ii) संस्कृत साहित्य की रूपरेखा — २० अंक

प्रश्नपत्र ३. साहित्यालोचन के सिद्धान्त (काव्यशास्त्र)

(i) भारतीय काव्यशास्त्र — ६० अंक
(ii) पाश्चात्य काव्यशास्त्र — ४० अंक

प्रश्नपत्र ४. प्राचीन और मध्यकालीन साहित्य

प्रश्नपत्र ५. आधुनिक काव्य

प्रश्नपत्र ६. आधुनिक साहित्य (गद्य तथा नाटक)

प्रश्नपत्र ७. विशेष अध्ययन—(i) हिन्दी में एक या एक से अधिक साहित्यकार, (ii) एक आधारभूत भाषा, (iii) एक सहायक आधुनिक भारतीय भाषा।

(अ) i. सूरदास, ii. तुलसीदास, iii. प्रेमचन्द के विशेष सन्दर्भ में हिन्दी उपन्यास

के विकास का अध्ययन, iv. जयशंकर प्रसाद (केवल कवि और नाटककार), (जयशंकर प्रसाद के काव्य और नाटक पर ही यह प्रश्नपत्र होगा।)

या

(ब) एक आधारभूत भाषा
पालि, प्राकृत

(स) एक आधुनिक भारतीय भाषा
बंगाली, उर्दू, पंजाबी, तमिल, तेलगु, कन्नड़, मलयालम, मराठी, गुजराती।

प्रश्नपत्र ८. निबन्ध और अनुवाद।

(i)	अंग्रेज़ी से हिन्दी में अनुवाद	२० अंक
(ii)	संस्कृत या उर्दू से हिन्दी में अनुवाद	२० अंक
(iii)	हिन्दी साहित्य से सम्बद्ध हिन्दी में निबन्ध	६० अंक

या

लगभग ७५ पृष्ठों का (निर्देशन में) लिखा गया हिन्दी में मौलिक लघु प्रबन्ध।

या

एक मानक पुस्तक का अनुवाद (निर्देशन में)।

●

१८. नागपुर विश्वविद्यालय

एम० ए० परीक्षा १९६६–६७

भाग—१

इस विषय की परीक्षा के दो भाग होंगे और प्रत्येक भाग में चार प्रश्नपत्र होंगे। प्रत्येक प्रश्नपत्र तीन घंटे तथा १०० अंकों का होगा।

प्रश्नपत्र—१. प्राचीन तथा मध्ययुगीन कविता

प्रश्नपत्र—२. गद्य

प्रश्नपत्र—३. नाटक अथवा उपन्यास

प्रश्नपत्र—४. साहित्य समीक्षा के सिद्धान्त

भारतीय तथा पाश्चात्य समीक्षा-सिद्धान्त तथा काव्य-रूप, मुख्यतः ऐतिहासिक क्रम से उनका स्वरूप और विकास, अध्ययन का विषय है। साहित्य और दर्शन, साहित्य और कला, साहित्य और विज्ञान, साहित्य और समाज तथा साहित्य और प्रकृति सम्बन्धी तथ्यों की तुलनात्मक जानकारी भी अपेक्षित है।

भारतीय समीक्षा सिद्धान्त :—

विषय-प्रवेश, काव्य और समीक्षा-विषयक भारतीय धारणा। रस-सम्प्रदाय : सैद्धान्तिक

विकास, अलंकार सम्प्रदाय, रीति और गुण सम्प्रदाय, वक्रोक्ति सम्प्रदाय, ध्वनि सम्प्रदाय, औचित्य सम्प्रदाय।

शब्द-शक्तियाँ :—

स्वरूप-ज्ञान, उनकी उपादेयता, शब्द-शक्तियों के मुख्य विभाग, पश्चिमी अलंकार-शास्त्र और शब्दशक्ति की पारस्परिक तुलना। काव्य-शास्त्र में विभिन्न काव्य-रूपों का उल्लेख तथा उनके स्वरूप का विवेचन।

अ—महाकाव्य, खण्डकाव्य, मुक्तकाव्य

इ—नाटक तथा उसके भेदोपभेद

उ—कथा, आख्यायिका आदि

पाश्चात्य समीक्षा सिद्धान्त :—

१. विषय-प्रवेश—यूरोपीय कला चिंतन और साहित्य तथा समीक्षा विषयक उसकी धारणा।

२. क्लासिकल युग—रोमन काव्य-चिन्तन, सिनेका और होरेस के काव्याभिमत, प्लेटो, अरस्तू और लैंजाइनस का साहित्य-चिन्तन, नियोप्लेटोनिक चिंतन, प्लोटिनस का मत, क्विन्क्वीलियन का भाषा संबंधी मत।

३. मध्ययुग—राष्ट्रीय प्रभाव से विकसित मध्ययुग के काव्य-सिद्धान्त स्कोलेस्टिक विचारधारा और दांते।

४. पुनरुत्थान युग—फिलिप, सिडनी और जॉन्सन के विचार तथा साहित्य सिद्धान्तों का पुर्निर्माण।

५. अभिनव परम्परावाद :—बोइलो, पोप, ड्राइडन, एडिसन और बर्क के विचार तथा कार्य। लेसिंग और विकलमेन का काव्यसिद्धान्त।

६. स्वच्छन्दतावादी काव्य-सिद्धान्त ब्लैक, वर्ड्सवर्थ, शेली, कोलरिज, गेटे, शिलर आदि का चिन्तन। कान्ट और हीगेल के कला संबंधी अभिमत सेण्ट बूव, मैथ्यू आर्नाल्ड और वाल्टर पेटर के विचार।

७. आधुनिक युग का महत्त्वपूर्ण चिन्तन-सरणियाँ :—

कलावाद, अभिव्यंजनावाद, मूल्यवाद, प्रतीकवाद, बिंबवाद, संवेदनावाद, अस्तित्ववाद, मनोवैज्ञानिक कलाचिन्तन, समाजवादी साहित्य-सिद्धान्त, यथार्थवाद और उसके प्रकारों का ऐतिहासिक विकास, मानववादी कलाचिन्तन के विविध पक्ष।

८. ऐतिहासिक क्रम से निम्नलिखित काव्यरूपों का अध्ययन :—

दुखान्त नाटक, महाकाव्य, आख्यानक काव्य, प्रगीतकाव्य, उपन्यास, कहानी, निबंध तथा आलोचना।

प्रश्नपत्र १, २ और ३ में छंद और अलंकार पर आलोचनात्मक प्रश्न पूछे जा सकते हैं।

भाग—२

प्रश्नपत्र—१. आधुनिक कविता

प्रश्नपत्र—२. विशेष कवि—तुलसीदास अथवा जयशंकर प्रसाद

प्रश्नपत्र—३. भाषा-विज्ञान और साहित्य का इतिहास

(क) भाषा-विज्ञान

विषय-प्रवेश, भाषा, भाषा का उद्गम, भाषा के आधार, भाषा की प्रकृति, भाषा-विज्ञान तथा व्याकरण, भाषा-विज्ञान तथा अन्य विज्ञान भाषा का विकास, विकास का कारण, ध्वनि-यंत्र, ध्वनियों का वर्गीकरण, ध्वनियों के गुण, संयुक्त ध्वनियाँ, ध्वनि-विकास, ध्वनि-नियम, ध्वनिग्राम, पद-रचना, पद-व्याख्या, पद विकास का कारण, अर्थविचार, भाषा की गठन, भाषा का वर्गीकरण, वाक्य विचार, भाषा विज्ञान का इतिहास, लिपि का इतिहास, लिपिशास्त्र, विविधभाषा परिवार, यूरेशिया के भाषा परिवार, आर्येतर भारतीय भाषा परिवार, आर्य परिवार की शाखायें, भारत ईरानी शाखा, हिन्दी भाषा और लिपि का उद्गम तथा इतिहास, भाषा संस्कार तथा लिपि सुधार के आधुनिक प्रयत्न, भाषा-विज्ञान पर आधारित प्रागैतिहासिक खोज।

इतिहास

हिन्दी साहित्य का इतिहास, विविध योगों के साहित्य पर समसामयिक संस्कृति का प्रभाव, काल-निर्धारण, काल-विभाजन युगों का नामकरण, साहित्यिक धाराओं का आरम्भ से लेकर १९६० ई० तक प्रवृत्तिमूलक विकास, काव्यरूपों, भाषा-प्रवृत्तियों और रचनाशैलियों तथा संबद्ध साहित्यिक मतवादों का ऐतिहासिक क्रम विकास, इतिहास लेखन की परम्परा और उसका पद्धतियों का अनुशीलन।

प्रश्नपत्र—४. निबंध

साहित्यिक विषयों पर निबंध

सूचना :—प्रश्नपत्र १ और २ में छन्द, अलंकार तथा आलोचना-विषयक प्रश्न पूछे जा सकते हैं।

●

२०. पंजाब विश्वविद्यालय

एम० ए० परीक्षा १९६५

प्रथम वर्ष

प्रश्नपत्र—१. आधुनिक काव्य

प्रश्नपत्र—२. आधुनिक गद्य (नाटक, निबंध, उपन्यास)

प्रश्नपत्र—३. साहित्य का इतिहास

हिन्दी साहित्य के विभिन्न युगों का आलोचनात्मक अध्ययन करते हुये उन युगों की प्रमुख प्रवृत्तियाँ, प्रतिनिधि लेखकों तथा ग्रंथों का विवेचन।

प्रश्नपत्र—४. भाषाविज्ञान और संस्कृति

(क) भाषा विज्ञान के सामान्य सिद्धान्त और हिन्दी का विकास ७० अंक

(ख) संस्कृत अनुवाद ३० अंक

(क) १. भाषा-विज्ञान—भाषा की उत्पत्ति और विकास, परिवर्तन के कारण भाषा और बोली, ध्वनि विज्ञान, ध्वनि और ध्वनिग्राम, ध्वनियंत्र, ध्वनियों का वर्गीकरण, ध्वनि-परिवर्तन और उसके नियम—ग्रिम, ग्रासमैन, वर्नर और तालव्यीभाव का नियम, रूपविज्ञान, अर्थ-विज्ञान, अर्थ-परिवर्तन और बौद्धिक नियम।

२. भाषाओं का वर्गीकरण और मुख्य आधार, संसार के भाषा परिवार, योरोपीय परिवार की विभिन्न शाखाएँ, योरोपीय ध्वनियाँ और रूप, भारत ईरानी शाखा और इसकी उपशाखाएँ—इरानी, दर्दी और भारतीय आर्यभाषा।

३. भारतीय आर्यभाषा का विचार, भारतीय आर्य विभाषाएँ, वैदिक और लौकिक संस्कृत, प्राचीन भारतीय आर्यभाषा का ध्वनि और रूप सबंधी मुख्य विशेषताएँ, संस्कृत का विकास।

४. मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा, पालि, अशोकी प्राकृत तथा साहित्यिक प्राकृत भाषाएँ, मध्यकालीन भारतीय आर्य-भाषा की भाषा, वैज्ञानिक विशेषताएँ भारत के आर्येतर परिवार और उनका भारतीय आर्यभाषा पर प्रभाव।

५. संक्रान्तिकाल, मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा का अपभ्रंश के द्वारा आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में परिवर्तन—रूप-रचना संबंधी विकास और शब्दकोश मुख्य आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का वर्गीकरण।

६. हिन्दी की प्रधानता:—हिन्दी भाषा का विकास, विभिन्न विभाषाएँ, हिन्दी उर्दू और हिन्दुस्तानी का परस्पर संबंध, हिन्दी की शब्दावली, राष्ट्रभाषा के रूप में संस्कृत का हिन्दी से संबंध, हिन्दी भाषा पर फारसी और अंग्रेजी का प्रभाव, संसार की भाषाओं में हिन्दी की रूप-रचना, हिन्दी की वाक्य-योजना।

७. हिन्दी लिखने की लिपि—देवनागरी, भारतीय लिपियाँ और उनका विकास देवनागरी लिपि की प्राचीनता और महत्त्व, इसके गुण और दोष, लिपि सुधार संबंधी आधुनिक प्रयास।

द्वितीय वर्ष

प्रश्नपत्र—१. प्राचीन और मध्यकालीन काव्य

प्रश्नपत्र—२. समीक्षा के सिद्धान्त

(क) पाश्चात्य समीक्षा के सिद्धान्त ६० अंक

(ख) भारतीय समीक्षा के सिद्धान्त ४० अंक

(क) समीक्षा के उद्देश्य, साहित्य तथा समाज का पारस्परिक संबंध, साहित्य में व्यक्तित्व, साहित्य तथा शैली। साहित्य का वर्गीकरण, काव्य नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध। काव्य के तत्त्व, काव्य के भेद, काव्य प्रकृति चित्रण। नाटक के तत्त्व, नाटक के भेद, नाटक तथा

रंगमंच। उपन्यास के तत्त्व, उपन्यास की प्रवृत्तियाँ, कहानी के तत्त्व भेद, निबंध के तत्त्व तथा भेद।

पाश्चात्य समीक्षा के सिद्धान्त, साहित्य और आदर्श, साहित्य और उपयोगिता, साहित्य और मनोविज्ञान, साहित्य और अभिव्यंजना। पाश्चात्य समीक्षा के वाद—रोमांसवाद, यथार्थ-वाद, कलावाद, प्रतीकवाद, अस्तित्ववाद।

(ख) काव्य का स्वरूप, काव्य के सम्प्रदाय—रस, ध्वनि, अलंकार, वक्रोक्ति, रीति, औचित्य। काव्य के रूप—दृश्य और श्रव्य। दृश्यकाव्य—रूपक का स्वरूप, रूपक के भेद, रूपक के तत्त्व, रूपक तथा रंगमंच। श्रव्य के भेद, प्रबंध काव्य, खण्डकाव्य, मुक्तक, प्रगीति काव्य। रस निष्पत्ति का स्वरूप साधारणीकरण का सिद्धान्त। हिन्दी समीक्षा का विकास। भारतीय समीक्षा के आधुनिक वाद—आदर्शवाद तथा मानवतावाद, सौष्ठववाद, प्रभाववाद मनोविश्लेषणवाद, प्रगतिवाद।

प्रश्नपत्र—३. विशेष अध्ययन

(१) कृष्णकाव्य : भक्तिकालीन
विद्यापति, मीराबाई, नन्ददास, परमानन्ददास, हितहरिवंश

(२) रीतिकालीन काव्य
पद्माकर, देव, घनानन्द, रसखान, मतिराम

(३) हिन्दी कथा-साहित्य—

(क) हिन्दी उपन्यास का अध्ययन — ६० अंक
जैनेन्द्रकुमार, 'अज्ञेय', यशपाल, 'अश्क', भगवतीचरण वर्मा, 'रेणु'

(ख) हिन्दी कहानी का अध्ययन — ४० अंक
'गुलेरी', प्रेमचन्द, प्रसाद, मोहन राकेश, निर्मल वर्मा, मन्नू भंडारी

प्रश्नपत्र—४. निबंध

किसी साहित्यिक विषय पर जो एम० ए० हिन्दी के पाठ्यक्रम से संबंधित हो।

या

लघुप्रबंध

●

२१. पंजाबी विश्वविद्यालय

एम० ए० परीक्षा १९६५

प्रथम वर्ष

प्रश्नपत्र—१. आधुनिक काव्य

प्रश्नपत्र—२. आधुनिक गद्य (नाटक, निबंध, उपन्यास)

प्रश्नपत्र—३. साहित्य का इतिहास

हिन्दी साहित्य के विभिन्न युगों का आलोचनात्मक अध्ययन करते हुये उन युगों की प्रमुख प्रवृत्तियों, प्रतिनिधि लेखकों तथा ग्रंथों का विवेचन।

प्रश्नपत्र—४. समीक्षा के सिद्धान्त ५० अंक

(क) भारतीय समीक्षा के सिद्धान्त ५० अंक

(ख) पाश्चात्य समीक्षा के सिद्धान्त ५० अंक

(क) काव्य का स्वरूप, काव्य के सम्प्रदाय—रस, ध्वनि, वक्रोक्ति, रीति, औचित्य दृश्यकाव्य—रूपक का स्वरूप, रूपक के भेद, रूपक के तत्त्व, रूपक तथा रंगमंच श्रव्य काव्य के भेद—महाकाव्य, खण्डकाव्य, मुक्तक, प्रगीति काव्य शब्द-शक्तियाँ, रस निष्पत्ति का स्वरूप (दार्शनिक पक्ष वर्जित) साधारणीकरण का सिद्धान्त, अलंकार और छंद, परिभाषा, भेद महत्त्व तथा उपयोगिता (छंदों, अलंकारों के लक्षण उदाहरण वर्जित) हिन्दी समीक्षा का विकास, भारतीय समीक्षा में प्रचलित आधुनिक वाद—आदर्शवाद, मानवतावाद, प्रभाववाद, मनो-विश्लेषणवाद, प्रगतिवाद।

(ख) समीक्षा के उद्देश्य, समीक्षा के प्रकार, साहित्य तथा समाज का पारस्परिक संबंध साहित्य में व्यक्तित्व, साहित्य के तत्त्व, कविता के तत्त्व, कविता के भेद, कविता में प्रकृतिचित्रण, महाकाव्य संबंधी अरस्तू के सिद्धान्त, नाटक के तत्त्व, नाटक के भेद, नाटक तथा रंगमंच, एकांकी, रेडियो प्ले, त्रासदी सम्बन्धी अरस्तू के विचार। उपन्यास के तत्त्व, उपन्यास की प्रवृत्तियाँ, कहानी के तत्त्व तथा भेद, निबंध के तत्त्व तथा भेद। साहित्य और आदर्श, साहित्य तथा उपयोगिता, साहित्य तथा मनोविज्ञान, सौहित्य और अभिव्यंजना। पाश्चात्य समीक्षा के वाद—रोमांसवाद, यथार्थवाद, कलावाद, प्रतीकवाद, अस्तित्ववाद।

द्वितीय वर्ष

प्रश्नपत्र—१. प्राचीनकाव्य और मध्यकालीन

प्रश्नपत्र—२. भाषाविज्ञान और संस्कृत

(क) भाषाविज्ञान के सामान्य सिद्धान्त और हिन्दी भाषा का विकास ६० अंक

(ख) संस्कृत—केवल अनुवाद :—(१) संस्कृत पद्यों का हिन्दी में २० अंक

(२) संस्कृत गद्यांशों का हिन्दी में २० अंक

(क) भाषा क्या है, भाषाशास्त्र या भाषा विज्ञान, अन्य शास्त्रों या विज्ञानों से संबध, भाषा के उद्गम संबंधी मत, परिवर्तन के कारण, ध्वनि-विज्ञान ध्वनि और ध्वनिग्राम, ध्वनियंत्र, ध्वनियों का वर्गीकरण, ध्वनि-परिवर्तन और उसके नियम—ग्रिम, ग्रासमैन, वर्नर और तालव्यीभाव का नियम, रूप-विज्ञान, अर्थ-विज्ञान, अर्थ-परिवर्तन और बौद्धिक नियम।

२. भाषाओं के वर्गीकरण का मुख्य आधार, संसार के विविध भाषा परिवार, भारोपीय परिवार की विभिन्न शाखायें, भारोपीय ध्वनियाँ और रूप, भारत, ईरानी शाखा और इसकी उपशाखायें—ईरानी, दर्दी, केंढुम, सतम् उनके भेद और लक्षण, आर्यों का मूल निवास स्थान, वीरा।

३. भारतीय आर्यभाषाएँ—वैदिक और लौकिक, संस्कृत, प्राचीन भारतीय आर्यभाषा की ध्वनि और रूप संबंधी मुख्य विशेषतायें, संस्कृत का विकास।

४. मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषायें, पालि, अशोकी प्राकृत तथा साहित्यिक प्राकृत भाषाएँ, भारत के आर्येतर भाषा परिवार और उनका भारतीय आर्यभाषा पर प्रभाव।

५. संक्रान्ति––अपभ्रंश और आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का विकास, रूप-रचना सम्बन्धी विकास और शब्द-कोष, मुख्य आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का ग्रियर्सन और चटर्जी द्वारा प्रतिपादित वर्गीकरण।

६. हिन्दी भाषा का विकास, विभिन्न विभाषाएँ, हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी का परस्पर संबंध, हिन्दी की शब्दावली, राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी, संस्कृत और हिन्दी का संबंध, हिन्दी भाषा पर फारसी और अंग्रेज़ी का प्रभाव, संसार की भाषाओं में हिन्दी का स्थान, हिन्दी की ध्वनियाँ और उसका विकास, हिन्दी की रूप-रचना, हिन्दी की वाक्य-योजना।

७. लिपि का इतिहास और विकास, देवनागरी लिपि की प्राचीनता और उसका महत्त्व, इसके गुण और दोष, लिपि-सुधार संबंधी आधुनिक प्रयास।

प्रश्नपत्र––३. विशेष अध्ययन

निम्नलिखित में से किसी एक का विशेष अध्ययन

सूरदास, तुलसीदास, केशवदास, प्रसाद, उपन्यासकार प्रेमचन्द

प्रश्नपत्र—४. निबंध अथवा शोध प्रबंध

१९६० तक के किसी साहित्यिक विषय पर जो एम० ए० हिन्दी के पाठ्यक्रम से संबंधित हो।

●

२२. प्रयाग विश्वविद्यालय

एम० ए० परीक्षा १९६५–६६

एम० ए० प्रथम वर्ष

प्रथम वर्ष में चार प्रश्नपत्र और एक मौखिक परीक्षा होगी।

प्रश्नपत्र—१. हिन्दी काव्य (प्रारम्भिक काल से सोलहवीं शताब्दी तक)

प्रश्नपत्र—२. गद्य और नाटक

प्रश्नपत्र—३. काव्यशास्त्र, अलंकार शास्त्र और नाट्यशास्त्र-उसका इतिहास और आधुनिक आलोचना के सिद्धान्त।

(अ) काव्यशास्त्र, अलंकार शास्त्र और नाट्यशास्त्र तथा हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास,

(१) काव्य लक्षण भेद, पदार्थ निर्णय (अभिधा लक्षणा, व्यंजना), ध्वनिभेद, अलंकार, शब्दालंकार, अर्थालंकार, चित्रालंकार, सामान्यालंकार, गुण, तुकनिर्णय, दोष, रसांगवर्णन,

(२) छंदशास्त्र का इतिहास, छंद और संगीत, प्रस्तार का सामान्य परिचय, हिन्दी छन्द शास्त्र का विकास।

(३) नाट्य लक्षण, रूप और उपरूपक उनके भेद, पूर्वरंग और प्रस्तावना, वस्तु, अवस्था, संधि, निषेध, अर्थोपक्षेपक, भाषण उसके भेद, प्रकाश, स्वगत, जानन्तिक अपवारित, आकाश भासित, नायक उसके गुण और भेद, नायक सहायक, नायिका उसके गुण और भेद, हाव और भाव, रस और उसकी निष्पत्ति, वृत्ति।

(४) हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास।

(ब) आधुनिक आलोचना के सिद्धान्त और इतिहास

(१) आलोचना का सामान्य स्वरूप और कार्य, अरस्तू, क्रोचे, रिचर्डस और इलियट के सिद्धान्तों के विशेष संदर्भ में पाश्चात्य साहित्यालोचन के इतिहास की रूप-रेखा।

(२) रामचन्द्र शुक्ल के विशेष संदर्भ में हिन्दी में आधुनिक आलोचना का इतिहास।

(३) साहित्यालोचन की कुछ समस्यायें :—शास्त्रीय रोमांसवाद और साहित्यिक मूल्यांकन की आधुनिक विचारधारा, साहित्य में व्यक्तित्व, आदर्शवाद, यथार्थवाद और प्रकृतिवाद, विभिन्न साहित्यिक रूपों की उत्पत्ति, साहित्य में नैतिकता के कारण और समस्यायें।

(४) पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धान्त और भारतीय काव्यशास्त्र का तुलनात्मक अध्ययन।

प्रश्नपत्र—४. हिन्दी साहित्य का इतिहास, उत्तर भारत का साहित्यिक और सांस्कृतिक इतिहास और उर्दू साहित्य का इतिहास और भाषा वैज्ञानिक तत्त्व।

मौखिक परीक्षा

द्वितीय वर्ष

१००-१०० अंकों के पाँच लिखित प्रश्न-पत्र तथा १०० अंक की मौखिक परीक्षा होगी।

प्रथम प्रश्न पत्र—मध्ययुगीन तथा आधुनिक काव्य : १६०० ई० से आज तक

मध्ययुगीन काव्य की पृष्ठभूमि—मध्ययुगीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ—

पाठ्यग्रंथ—आधुनिक हिन्दी काव्य की पृष्ठभूमि—हिन्दी काव्य का नया युग—भावना-चिंतन-विषय-वस्तु—भाषा-काव्यरूप-शैली—पाठ्यग्रंथ;

छायावाद युग—उदय और विकास—पाठ्य-ग्रंथ—छायावादी काव्य की रहस्यात्मक प्रवृत्ति। छायावादी काव्य : उपलब्धि, अभाव, दोष।

द्वितीय प्रश्न पत्र—निम्नलिखित साहित्यकारों में से किसी एक का विस्तृत एवं विशेष अध्ययन—

सूरदास, तुलसीदास, केशवदास, जयशंकर प्रसाद, प्रेमचंद

तृतीय प्रश्न पत्र—इस प्रश्नपत्र में निम्नलिखित विकल्प हैं। विद्यार्थी इनमें से कोई एक अपने अध्ययन के लिये चुन सकते हैं। 'संस्कृत और पालि' विकल्प केवल उन्हीं विद्यार्थियों

द्वारा लिया जा सकेगा जिन्होंने बी० ए० अथवा समकक्ष-परीक्षाओं में संस्कृत लेकर परीक्षा उत्तीर्ण नहीं की है।

विकल्प

(१) संस्कृत तथा पालि
(२) प्राकृत तथा अपभ्रंश
(३) जनपदीय बोलियाँ तथा लोक-साहित्य का अध्ययन
(४) पाठालोचन

चतुर्थ प्रश्न पत्र—भाषा-विज्ञान के सिद्धान्त तथा हिन्दी भाषा का इतिहास।

इस प्रश्नपत्र में अंकों का विभाजन अभी तक (१९६५ तक) इस प्रकार रहा है—

भाषा-विज्ञान के सिद्धान्त—	६० अंक
हिन्दी भाषा का इतिहास	४० अंक

निर्धारित पाठ्यक्रम एवं विषय—भाषा : लक्षण उत्पत्ति। भाषा-विज्ञान : परिभाषा अन्य विज्ञानों से तुलना, महत्त्व तथा इतिहास। भाषा-विज्ञान की शाखाएँ—भाषाओं का वर्गीकरण तथा विविध भाषा-परिवार। वर्णनात्मक, तुलनात्मक तथा ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान–अध्ययन की पद्धतियाँ। वर्णनात्मक ध्वनि विचार, ध्वनि-ग्राम, रूप-विचार, शब्द समूह तथा वाक्य-विचार। भाषा-वैज्ञानिक प्रयोग-कार्य (सिद्धान्त)। ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान—ध्वनि-परिवर्तन, रूप-परिवर्तन, शब्द और उसका अर्थ। अर्थ-परिवर्तन के कारण। भाषा-परिवर्तन के कारण। लिपि का विकास।

भारोपीय भाषा-विचार। भारतीय आर्य-भाषा। हिन्दी का विकास, हिन्दी बोलियाँ।

रचनात्मक उपसर्ग तथा प्रत्यय; हिन्दी के कारक रूपों का इतिहास : मूलरूप तथा विकृत-रूप; संज्ञा के भिन्न-भिन्न अंगों का इतिहास, वचन, लिंग; हिन्दी परसर्गों की व्युत्पत्ति, संख्यावाचक विशेषण, सर्वनाम; हिन्दी क्रिया का गठन, सहायक-क्रिया, कृदन्त, काल-रचना, वाच्य प्रेरणार्थक, संयुक्त-क्रिया, अव्यय।

पंचम प्रश्न पत्र—निबंध

●

२३. पूना विश्वविद्यालय

एम० ए० परीक्षा १९६२

सहायक प्रश्नपत्र

प्रश्नपत्र १—आधुनिक गद्य और पद्य
प्रश्नपत्र २—प्राचीन गद्य और पद्य

मुख्य प्रश्नपत्र

प्रथम तथा द्वितीय प्रश्नपत्र सहायक प्रश्नपत्रों के समान।

प्रश्नपत्र ३—१. किसी एक साहित्यकार का विशेष अध्ययन

२. साहित्य का एक रूप

३. हिन्दी साहित्य के इतिहास का एक विशेष युग जैसा कि बोर्ड आव स्टडीज़ के द्वारा समय-समय पर निर्धारित हो।

प्रश्नपत्र ४—(i) भाषाशास्त्र के सिद्धान्त और देवनागरी लिपि तथा हिन्दी भाषा का इतिहास (वही विद्यार्थी ले सकेंगे जिन्होंने सामान्य भाषा विज्ञान सहायक भाषा के अध्ययन में नहीं लिया है)।

अध्ययन के लिये निम्न अंश निर्धारित हैं:—

भाषा का स्वरूप, भाषा की उत्पत्ति और विकास, भाषा के विविध रूप-भाषा विज्ञान तथा अन्य विज्ञान, भाषा विज्ञान के अंग, ध्वनिविचार, ध्वनियंत्र, ध्वनियों का वर्गीकरण, ध्वनि-विकास, पद-विचार, पद-रचना, पद-विकास और उसका कारण, अर्थविचार, भाषा का वर्गीकरण, आकृतिमूलक और ऐतिहासिक, विविध भाषा परिवार—आर्य परिवार, भारत ईरानी शाखा, भारतीय भाषा परिवार, प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएं, मध्यवर्ती भारतीय आर्य भाषाएँ, आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएं, आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं और बोलियों का वर्गीकरण, हिन्दी शब्द समूह, हिन्दी की विविध बोलियाँ, लिपि का विकास, देवनागरी लिपि का इतिहास।

(ii) हिन्दी का विशेष भाषा वैज्ञानिक अध्ययन (जिन्होंने सहायक भाषाओं के अध्ययन में सामान्य भाषाविज्ञान लिया है)।

(अ) हिन्दी भाषा का विकास, हिन्दी शब्द समूह तथा व्युत्पत्तिविचार, हिन्दी ध्वनियाँ, हिन्दी की विविध बोलियाँ, पश्चिमी हिन्दी और पूर्वी हिन्दी, हिन्दी के संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रियाविशेषण, अव्यय तथा क्रियापदों का अध्ययन, हिन्दी प्रत्यय और उपसर्ग, हिन्दी वाक्य-रचना,

(ब) ब्रजभाषा अवधी का विशेष अध्ययन।

प्रश्नपत्र—५. काव्यशास्त्र के सिद्धान्त और साहित्यालोचन

निम्न निर्धारित अंश का अध्ययन अपेक्षित है।

काव्य का स्वरूप, काव्य लक्षण, काव्य के तत्त्व, कारण और प्रयोजन, काव्य और कला, काव्य के विविध रूप, गद्य के भेद महाकाव्य का स्वरूप, गद्य काव्य के भेद, नाटक के तत्त्व, नाटक के प्रकार तथा नाटक का रचना विधान, कहानी और उपन्यास का शिल्पविधान, विभिन्न भारतीय काव्यसिद्धान्त, पाश्चात्य काव्य सिद्धान्त, और वाद, ध्वनि, रस, रीति, वक्रोक्ति, अलंकार, आलोचना का स्वरूप, आलोचना और इतिहास, आलोचना और अनुसंधान, आलोचना का कार्य, आलोचना के गुण, आलोचना के विविध मानदंड, आलोचना के विविध प्रकार।

प्रश्नपत्र—६. निबंध और

(ii) हिन्दी साहित्य पर धार्मिक तथा दार्शनिक विचारों के प्रभाव का अध्ययन।

वैदिक तत्व, वैष्णव, शैव दर्शन और निर्गुण, सगुण भक्ति के रूप में उनकी परम्परा, नाथ सम्प्रदाय, सूफ़ीधर्म और मार्क्सवाद।

●

२४. एम० एस० विश्वविद्यालय बड़ौदा

एम० ए० परीक्षा १९६४–६५

प्रश्नपत्र—१. आधुनिक गद्य एवं पद्य (४० अंकों के व्याख्यात्मक एवं ४० अंकों के आलोचनात्मक प्रश्न इस प्रश्नपत्र में रहेंगे)।

प्रश्नपत्र—२. साहित्य के रूप—नाटक

प्रश्नपत्र—३. (अ) हिन्दी साहित्य का संपूर्ण इतिहास, हिन्दी साहित्य की विविध प्रवृत्तियों के विकास का अनुशीलन और प्रमुख कवियों का अध्ययन
(आ) भारतीय तथा पाश्चात्य समीक्षा सिद्धांतों एवं विविध साहित्य रूपों का अध्ययन।

प्रश्नपत्र—४. भाषाविज्ञान के सिद्धान्त और हिन्दी भाषा का इतिहास तथा हिन्दी का ऐतिहासिक व्याकरण।

(अ) भाषाविज्ञान के सिद्धान्त :—

परिभाषा, विज्ञान का इतिहास एवं क्षेत्र, उद्भव, प्रकृति और भाषा का वर्गीकरण, भाषावैज्ञानिक परिवर्तन और उसके कारण, भाषा का मेकेनिज्म और ध्वनियों का वर्गीकरण, ध्वनि-परिवर्तन, भाषा का रूपात्मक विकास, अर्थ-परिवर्तन और उसका कारण, ऐतिहासिक शब्दसमूह में परिवर्तन लिपि (लेखन) का इतिहास।

(ब) हिन्दी का इतिहास और हिन्दी का ऐतिहासिक व्याकरण :—

भाषा के परिवार, इण्डोआर्यन (भारतीय आर्यभाषा परिवार—उसका इतिहास, आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में हिन्दी का स्थान, हिन्दी और उसकी बोलियाँ, हिन्दी शब्द समूह, देवनागरी लिपि का इतिहास, संस्कृत भाषा की तुलना में हिन्दी का ध्वन्यात्मक एवं व्याकरणिक स्वरूप गठन, ध्वनि, समास, कृदन्त, तद्धित, स्त्री प्रत्यय और शब्द स्वरूप, हिन्दी ध्वनि प्रक्रिया और उसका विकास, विदेशी ध्वनियों का व्यवहार, संज्ञा का स्वरूप, कारक का इतिहास लिंग और वचन, परसर्गों की उत्पत्ति—संख्या, सर्वनाम, क्रिया रूपों का गठन और सहायक क्रियाएँ,. . .काल, वाच्य, संयुक्त क्रिया, अव्यय, आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं की मुख्य विशेषताओं का सामान्य तुलनात्मक ज्ञान, विशेषकर गुजराती।

अथवा

ऐच्छिक प्रश्नपत्र ४. (A)

ऐच्छिक चतुर्थ प्रश्नपत्र उन विद्यार्थियों के लिये होगा जिन्होंने एम० ए० में भाषा-विज्ञान

सहायक विषय लिया होगा। वर्ग अ में (भाषाविज्ञान के सिद्धान्त) उन्हें निम्न बोलियों में से किसी एक का गहन अध्ययन करना होगा :—

(१) खड़ीबोली, (२) अवधी, ब्रजभाषा

प्रश्नपत्र—५. प्राचीन काव्य

प्रश्नपत्र—६. मध्यकालीन काव्य

●

२५. बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय

एम० ए० परीक्षा १९६५

प्रथम वर्ष

एम० ए० प्रथम वर्ष की परीक्षा में चार प्रश्नपत्र होंगे। प्रत्येक प्रश्नपत्र ३ घण्टे की अवधि तथा १०० पूर्णांक का होगा।

प्रश्नपत्र—१. गद्य साहित्य

सूचना—इस प्रश्नपत्र में व्याख्या के लिये ४० अंक निर्धारित हैं तथा १५ अंकों का एक प्रश्न केवल सम्बद्ध ऐतिहासिक अनुशीलन पर आधारित होगा।

प्रश्नपत्र—२. आधुनिक काव्य

सूचना—प्रथम प्रश्नपत्र के अनुसार

प्रश्नपत्र—३. भाषाविज्ञान

१. भाषाविज्ञान के सामान्य सिद्धांत, भाषा-शास्त्र का इतिहास, भाषाओं में विकास और परिवर्तन, भाषाओं के परिवार, व्यावहारिक ध्वनिविज्ञान, नादयंत्र का गठन, उच्चारण स्थान और ध्वनियों का परिचय, हिन्दी ध्वनियाँ, रूपविचार का सामान्य ज्ञान, शब्द, पद, अर्थमात्र और रूपमात्र का परिचय, अर्थ-विचार, अर्थ-विचार संबंधी नये विचार, शब्दों की व्युत्पत्ति तथा वर्गीकरण।

२. संसार की भाषाओं का वर्गीकरण, योरोपीय परिवार की भाषायें, भारतीय आर्य-भाषाओं का विकास क्रम, प्राचीन भारतीय आर्यभाषाएँ, मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाएँ, आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ, हिन्दी भाषा और उसकी विभिन्न बोलियाँ, हिन्दी शब्द समूह, वाक्यविन्यास, हिन्दी व्याकरण का ऐतिहासिक विकास।

३. लिपि विज्ञान, भाषाओं के विकास में लिपियों का योग, देवनागरी लिपि का विकास।

प्रश्नपत्र—४. मूलभाषायें (बेसिक लैंग्वेजेज़)

सूचना—इस प्रश्नपत्र में संस्कृत, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश—इन चार भाषाओं में से प्रत्येक के लिए १०० अंक निर्धारित हैं। प्रत्येक परीक्षार्थी इनमें से कोई एक भाषा ही ले सकता है किंतु जिन लोगों ने इण्टरमीडियेट या ऊपर की परीक्षा में इन भाषाओं में से कोई भाषा पढ़ी होगी वे उसको नहीं ले सकेंगे। जो लोग शास्त्राचार्य परीक्षा उत्तीर्ण कर चुके हैं, वे संस्कृत या

प्राकृत नहीं ले सकेंगे। और जिन्होंने इण्टरमीडियेट या उससे ऊपर पालि पढ़ी है वे भी उसे नहीं ले सकेंगे।

द्वितीय वर्ष

प्रश्नपत्र—१. प्राचीन और निर्गुण काव्य

सूचना—इस प्रश्नपत्र में ५० अंक व्याख्या के लिये निर्धारित हैं। तथा १५ अंकों का एक प्रश्न केवल सम्बद्ध ऐतिहासिक अनुशीलन पर आधारित होगा।

प्रश्नपत्र—२. सगुण और रीतिकालीन काव्य

सूचना—प्रथम प्रश्नपत्र के अनुसार।

प्रश्नपत्र—३. समीक्षा-सिद्धान्त

१. भारतीय समीक्षा शास्त्र का संक्षिप्त इतिहास, अलंकार, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति, रस तथा औचित्य विचार के सम्प्रदायों का सामान्य परिचय, हिन्दी का रीतिकालीन काव्य-विवेचन,

२. काव्य के स्वरूप तथा उद्देश्य के सम्बन्ध में प्लेटो और आरिस्टाटिल के विचार, रोमन विचारकों के अनुसार काव्य का उद्देश्य—प्ररोचना (परसुएशन) शिक्षण (इंस्ट्रक्शन) आनन्द (डिलाइट) और उल्लास (एक्स्टैसी), रीतिवादी (क्लासिकल), और स्वच्छन्दतावादी (रोमाण्टिक) काव्यसिद्धांत, यथार्थवाद (रियलिज्म) और प्रकृतिवाद (नैचुरलिज्म) अभिव्यक्तिवादी (एक्सप्रेशनिज्म) मनोवैज्ञानिक और मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्तों की प्रतिक्रिया, समाजवादी—यथार्थवाद और मार्क्सवाद।

३. विविध साहित्य रूपों के स्वरूप और उपादान—नाटक, कहानी, उपन्यास, एकांकी, निबंध, समालोचना आदि और इन सबका आधुनिक हिन्दी साहित्य में स्थान और विकास-क्रम।

प्रश्नपत्र—४. विशेष अध्ययन

सूचना—विशेष अध्ययन का विषय विभागाध्यक्ष की आज्ञा से ही लिया जा सकेगा।

इस प्रश्नपत्र में क, ख, ग, घ, ङ और च में से किसी एक का अध्ययन अथवा बंगला, मराठी, गुजराती, उर्दू में से किसी एक आधुनिक प्रान्तीय भाषा का अध्ययन अपेक्षित है। आधुनिक प्रान्तीय भाषाओं में से केवल वही भाषा ली जा सकती है जो परीक्षार्थी की मातृभाषा न हो।

(क) संत काव्य (ख) रीति काव्य (ग) भारतेन्दुकालीन साहित्य (घ) सूरदास, (ङ) तुलसीदास (च) प्रेमाख्यानक काव्य (जायसी)

प्रश्नपत्र—५. निबंध

इसमें १०० पूर्णांक और तीन घण्टे की अवधि का एक प्रश्नपत्र होगा। इसमें साहित्यिक या भाषा विषयक कोई एक निबंध लिखना होगा।

२६. बम्बई विश्व-विद्यालय

एम० ए० परीक्षा

कुल ६ प्रश्नपत्र होंगे। प्रत्येक १०० अंक का होगा।

प्रथम प्रश्नपत्र—आधुनिक काव्य

द्वितीय प्रश्नपत्र—गद्य

तृतीय प्रश्नपत्र—प्राचीन और मध्ययुगीन काव्य

चतुर्थ प्रश्नपत्र—आलोचना के सिद्धान्त

पंचम प्रश्नपत्र—भाषा-विज्ञान के सिद्धान्त तथा हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास

षष्ठ प्रश्नपत्र—साहित्य का इतिहास ४० अंक

निबंध ६० अंक

●

२८. भागलपुर विश्वविद्यालय

एम० ए० परीक्षा १९६६

परीक्षार्थी को सभी प्रश्नपत्रों के उत्तर देवनागरी लिपि लिखित हिन्दी भाषा में देने होंगे। एम० ए० हिन्दी के आठ प्रश्नपत्र होंगे। प्रत्येक पत्र चार घंटे का होगा। पत्र का पूर्णांक १०० होगा। पत्रों का विषयगत विभाजन इस प्रकार होगा:—

प्रश्नपत्र—१. हिन्दी साहित्य का इतिहास

प्रश्नपत्र—२. भाषाविज्ञान के सामान्य सिद्धान्त और हिन्दी भाषा-विज्ञान का अध्ययन।

(क) भाषा-विज्ञान के सिद्धान्तों का अध्ययन

(ख) हिन्दी भाषा का अध्ययन

(ग) बिहार की निम्नलिखित सात भाषाओं एवं बोलियों में से किसी एक का सामान्य अध्ययन:—

मैथिली, मगही, भोजपुरी, उराँव, मुराडारी, संथाली और नागपुरी।

प्रश्नपत्र—३. आधुनिक गद्य और नाटक

प्रश्नपत्र—४. संस्कृत साहित्य अथवा प्राकृत एवं अपभ्रंश-साहित्य का अध्ययन इस प्रश्नपत्र में अंकों का विभाजन इस प्रकार होगा:—

(क) साहित्य के इतिहास की रूपरेखा ४० अंक

(ख) निर्धारित ग्रंथों से सम्बद्ध प्रश्न ६० अंक

प्रश्नपत्र—५. रीति-शास्त्र एवं साहित्यालोचन

प्रश्नपत्र—६. आधुनिक हिन्दी-काव्य—१८५० ई० से आधुनिक काल तक।

प्रश्नपत्र—७. किसी विशेष युग अथवा कवि की रचनाओं का विशेष अध्ययन यह

प्रश्नपत्र निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक परीक्षार्थी को विशेष अध्ययन के लिये अनिवार्यतः किसी एक वर्ग को चुन लेना चाहिए:—

(क) विद्यापति और उनका युग, (ख) वीरगाथा काव्य, (ग) सन्त साहित्य : ज्ञानाश्रयी शाखा, (घ) सन्त साहित्य : प्रेमाश्रयी शाखा, (ङ) सूरदास, (च) तुलसीदास, (छ) रीति-काव्य।

प्रश्नपत्र—८. विभिन्न पत्रों से सम्बद्ध निबंध

नोट:—कोई भी परीक्षार्थी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष की अनुमति से पत्र, और पत्र ८ के स्थान पर परीक्षार्थ प्रबंध प्रस्तुत कर सकता है। इसमें पूर्णांक २०० होंगे।

●

३१. मराठवाड़ा विश्व-विद्यालय

एम० ए० परीक्षा १९६३

प्रथम वर्ष

प्रश्नपत्र—१. आधुनिक कविता

प्रश्नपत्र—२. मध्ययुगीन काव्य

प्रश्नपत्र—३. काव्यशास्त्र और साहित्यालोचन के सिद्धान्त

काव्यशास्त्र तथा समीक्षा सिद्धान्त, काव्य के रूप, काव्य लक्षण, काव्य प्रयोग, काव्य हेतु, शब्द-शक्ति, रस, ध्वनि, गुण, रीति और अलंकार सम्प्रदाय तथा संस्कृत और हिन्दी के प्रमुख आचार्य, समीक्षा सिद्धान्त। भारतीय और पाश्चात्य।

सूचना—वे विद्यार्थी जिन्हें दो प्रश्नपत्र हिन्दी में सहायक विषय के लिये लेना है, वे प्रथमवर्ष परीक्षा का प्रथम प्रश्नपत्र ले सकते हैं।

प्रश्नपत्र—४. हिन्दी साहित्य का इतिहास १९५० तक

द्वितीय वर्ष

प्रश्नपत्र—५. आधुनिक गद्य

प्रश्नपत्र—६. प्रारंभिक काव्य

प्रश्नपत्र—७. भाषाविज्ञान के सिद्धान्त एवं हिन्दी भाषा का इतिहास तथा व्याकरण।

भाषा की उत्पत्ति, भारतवर्ष की भाषाएँ, आर्यभाषा परिवार, द्रविड़ भाषा परिवार तथा मुंडा पर प्रभाव, आर्य भाषा परिवार का वर्गीकरण डा० ग्रियर्सन तथा डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या के मत, वैदिक, संस्कृत, प्राकृत अपभ्रंश तथा विदेशी भाषाओं का हिन्दी पर प्रभाव, हिन्दी की भाषा, विभाषा तथा बोलियाँ और उनके मुख्य लक्षण, हिन्दी भाषा का विकास क्रम—ध्वनि-विचार, रूपविचार तथा अर्थविचार।

प्रश्नपत्र—. निबंध तथा आलोचनात्मक व्याख्या

सूचना—दो सहायक प्रश्नपत्रों को पढ़ने वाले विद्यार्थी एम० ए० द्वितीय वर्ष का पंचम प्रश्नपत्र पढ़ेंगे।

●

३२. मैसूर विश्वविद्यालय

एम० ए० परीक्षा १९६६

(दो वर्ष का पाठ्यक्रम)

प्रश्नपत्र—१. प्राचीन काव्य (आदिकाल और निर्गुण भक्तिधारा)

प्रश्नपत्र—२. मध्यकालीन काव्य (सगुण भक्तिधारा और रीतिकाल)

प्रश्नपत्र—३. आधुनिक काव्य

प्रश्नपत्र—४. आधुनिक गद्य और नाटक

प्रश्नपत्र—५. हिन्दी साहित्य का इतिहास

प्रश्नपत्र—६. हिन्दी व्याकरण और हिन्दी भाषा का इतिहास

प्रश्नपत्र—७. साहित्यालोचन—पाश्चात्य और पौर्वात्य (रस, छंद और अलंकार सहित)

प्रश्नपत्र—८. हिन्दी के अतिरिक्त एक भाषा

(क) संस्कृत, (ख) कन्नड़, (ग) अपभ्रंश, (घ) उर्दू

वे विद्यार्थी जिन्होंने एम० ए० हिन्दी में प्रवेश के पहले उक्त भाषाओं को नहीं पढ़ा है, वही ले सकेंगे।

कन्नड़ : निम्नलिखित कवियों पर विशेष अध्ययन देते हुए कन्नड़ साहित्य के इतिहास का सामान्य अध्ययन :—

पम्प, रान्ना, नागचन्द्र, बसवेस्वर, हरिहर, कुमारव्यास, रतनाकर और लक्ष्मीशा।

प्रश्नपत्र—९. विशेष विषय

(अ) तुलनात्मक भारतीय आर्य भाषाओं का अध्ययन हिन्दी के विशेष सन्दर्भ में।

(ब) भाषाविज्ञान के सिद्धान्त

(स) विशेष साहित्यकार : तुलसीदास

(द) विशेष साहित्यिक विधा महाकाव्य

प्रश्नपत्र—१०. मौखिक परीक्षा

●

३३. राजस्थान विश्वविद्यालय

एम० ए० परीक्षा १९६५

(एम० ए० प्रथम वर्ष और द्वितीय वर्ष परीक्षा)

कुल आठ प्रश्नपत्र होंगे जिनमें से प्रत्येक ३ घण्टे तथा १०० अंकों का होगा। इनमें से

आठवाँ प्रश्नपत्र द्वितीय वर्ष की परीक्षा के लिये निर्धारित है और अवशिष्ट सात प्रश्नपत्रों में से चार प्रश्नपत्र प्रथम वर्ष की परीक्षा में तथा अन्य तीन द्वितीय वर्ष में लिये जा सकेंगे।

प्रथम चार प्रश्नपत्र, प्रत्येक दो भागों में विभाजित किये जायेंगे।

(१) मुख्य पाठ्यग्रंथ — ८० अंक

(२) सहायक पाठ्यग्रंथ — २० अंक

व्याख्या के लिये निर्धारित खण्ड आलोचनात्मक होंगे और प्रश्न विषय से संबंधित पाठ्य से पूछे जायेंगे।

प्रश्नपत्र—१. गद्य

प्रश्नपत्र—२. आधुनिक काव्य

प्रश्नपत्र—३. मध्यकालीन काव्य

प्रश्नपत्र—४. प्राचीन काव्य (भक्तिकाल)

प्रश्नपत्र—५. साहित्यालोचन के सिद्धान्त (६० अंक) और हिन्दी साहित्य का इतिहास (४० अंक)

प्रश्नपत्र—६. भाषाविज्ञान के सिद्धान्त (६० अंक) और हिन्दी भाषा का इतिहास ४० अंक

(अ) भाषा विज्ञान का संक्षिप्त इतिहास, भाषा की उत्पत्ति के विभिन्न सिद्धान्त, भाषा की परिभाषा तथा भाषा की प्रवृत्तियाँ। भाषाओं का वर्गीकरण रूपात्मक और पारिवारिक वर्गीकरण। ध्वनिविचार, ध्वनियों का वर्गीकरण ध्वनि-तत्त्व, ध्वनि-विकार के प्रकार, ध्वनि-विकार के कारण, रूप-विचार, संबंध तत्त्व, रूप-विकार, रूप-विकार के कारण। अर्थ-विचार, अर्थ-तत्त्व, अर्थ-विकार, अर्थ-विकार के कारण। शब्द-शक्तियाँ—अभिधा, लक्षणा, व्यंजना, लिपि, लिपि का विकास, प्रमुख लिपियाँ, देवनागरी लिपि का इतिहास।

(ब) हिन्दी भाषा का इतिहास—४० अंक

भारत के भाषा-परिवार, उनका सामान्य परिचय। भारतीय आर्यभाषा, वैदिक, संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश तथा उनका सामान्य परिचय, आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएं तथा उनका सामान्य परिचय। हिन्दी, उसकी परिभाषा, उसके विकास का इतिहास। हिन्दी की उपभाषायें। उनकी विशेषताएँ, हिन्दी की ध्वनियाँ, उनका वर्गीकरण और इतिहास, हिन्दी से संबंधित कतिपय ध्वनि परिवर्तन के नियम, हिन्दी रूप-विचार, प्रमुख रूप और उनका इतिहास, हिन्दी शब्द-समूह, उसके प्रधान उद्गम।

प्रश्नपत्र—७. (अ) आधुनिक भारतीय भाषाओं में से एक

उर्दू, मराठी, बंगाली, गुजराती

(आ) संस्कृत, पालि, अपभ्रंश और डिंगल में से एक

(इ) किसी एक विशेष साहित्यकार अथवा युग विशेष का पूर्ण आलोचनात्मक अध्ययन

(ई) तुलसीदास, सूरदास, केशवदास, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जयशंकर प्रसाद

विशेष विषय—(i) काव्यशास्त्र, (ii) हिन्दी नाटक का उद्‌गम और विकास, (iii) हिन्दी उपन्यास का उद्‌गम और विकास, (iv) आधुनिक कविता।

प्रश्नपत्र—८. किसी साहित्यिक विषय पर उत्कृष्ट कोटि का निबंध।

●

३६. लखनऊ विश्वविद्यालय

एम० ए० परीक्षा १९६४-६५

एम० ए० भाग १ और २ दो पाठ्यक्रम होंगे। एक हिन्दी भाषा और साहित्य और दूसरा भाषा-विज्ञान। विद्यार्थी इन दोनों में से एक ले सकेंगे।

एम० ए० प्रथम वर्ष (साहित्य)

केवल पाँच प्रश्नपत्र होंगे:—

प्रश्नपत्र—१. प्रारंभिक साहित्य

रेवातट समय, विद्यापति पदावली, कबीर ग्रंथावली, पद्मावत, वेलि क्रिसन रुक्मिनी री

प्रश्नपत्र—२. मध्यकालीन साहित्य

भ्रमरगीतसार, विनयपत्रिका, रासपंचाध्यायी, रामचन्द्रिका, बिहारी सतसई

प्रश्नपत्र—३. आधारभूत भाषाएँ

संस्कृत, पालि और क्लैसिकल संस्कृत का इतिहास

या

संस्कृत, प्राकृत और क्लैसिकल संस्कृत का इतिहास?

या

संस्कृत अपभ्रंश और क्लैसिकल संस्कृत का इतिहास

प्रश्नपत्र—४. हिन्दी साहित्य का इतिहास और काव्यशास्त्र

(अ) उर्दू साहित्य की रूपरेखा के साथ हिन्दी साहित्य का इतिहास

(ब) काव्यशास्त्र और आधुनिक आलोचना के सिद्धान्त

काव्य की धारणा, साहित्य और समाज, साहित्य के रूप, शब्द-शक्ति, रस-सिद्धान्त, ध्वनि, गुण और अलंकार, नाटक की शिल्पविधि—नाटक में आदर्शवाद और यथार्थवाद, नायक की धारणा, उपन्यास और लघु कथा की रचना के सिद्धान्त, निबन्ध और उसके प्रकार, आलोचना, उसके प्रकार और कार्य।

एम० ए० द्वितीय वर्ष

प्रश्नपत्र—५. आधुनिक हिन्दी गद्य और नाटक

चन्द्रावली, चन्द्रगुप्त, दुर्गावती, गोदान, झाँसी की रानी, चिन्तामणि भाग १

प्रश्नपत्र—६. भाषाविज्ञान और हिन्दी का ऐतिहासिक व्याकरण

(अ) भाषाविज्ञान के सिद्धान्त :—

विज्ञान का इतिहास, भाषा का उद्गम और विकास, भाषा में परिवर्तन के कारण, ध्वनि-नियम, भाषा का रूपात्मक विकास, शब्दों के साथ अर्थ सामंजस्य के सिद्धान्त, भाषा के परिवार, लिपि का इतिहास,

(ब) हिन्दी का ऐतिहासिक व्याकरण और हिन्दी भाषा के विशेष सन्दर्भ में तुलनात्मक भाषाशास्त्र।

भारतीय आर्य और उसका इतिहास, भारतीय आर्यभाषा परिवार में हिन्दी का स्थान। हिन्दी और उसकी बोलियाँ, हिन्दी ध्वनि प्रक्रिया, विदेशी ध्वनियों का व्यवहार, स्वराघात, कारक का इतिहास, परसर्गों का उद्गम, सर्वनाम, विशेषण और लिंग, संख्यावाचक विशेषण, क्रियारूपों का इतिहास, संयुक्त क्रियाएँ, कृदन्त, काल रचना, अव्यय, देवनागरी लिपि का इतिहास।

प्रश्नपत्र ७. विशेष साहित्यकार

कबीरदास, सूरदास, तुलसीदास, केशवदास, हरिश्चन्द्र, जयशंकर प्रसाद, चन्दबरदाई, मलिक मुहम्मद जायसी, प्रेमचन्द।

प्रश्नपत्र ८. आधुनिक हिन्दी काव्य

प्रिय प्रवास, साकेत, कामायनी, गुंजन, गीतिका, नीरजा, उर्दू काव्य धारा।

प्रश्नपत्र ९. निबन्ध या लघु प्रबन्ध या लोक साहित्य या अपभ्रंश काव्य

लोक साहित्य :—

लोक साहित्य और लोक गीत की परिभाषा और विशेषताएँ, उसका क्षेत्र और सामाजिक विज्ञानों से सम्बन्ध, लोक साहित्य के विभिन्न रूपों का वर्गीकरण, लोक गीतों का अध्ययन, लोक मस्तिष्क, लोक संस्कृति, लोक धर्म, लोक मृत्यु, लोक संगीत, लोक नाटक, लोक कला, भारत और उसके बाहर लोक साहित्य के अध्ययन का संक्षिप्त इतिहास, भाषा और साहित्य के विकास में लोक साहित्य की देन। अवधी भाषा के सन्दर्भ में हिन्दी में लोक साहित्य का सामान्य सर्वेक्षण। हिन्दी लोक साहित्य में काव्य-कला।

अपभ्रंश काव्य :—

चर्यापद, नयकुमार चरिउ, पउम चरिउ, कीर्तिलता।

●

३७. विक्रम विश्वविद्यालय

एम० ए० परीक्षा

एम० ए० परीक्षा में १००-१०० अंक के आठ प्रश्नपत्र तथा १०० अंकों की मौखिक परीक्षा होगी। प्रश्नपत्र संख्या ८ तथा मौखिक परीक्षा एम० ए० फाइनल में होगी। शेष प्रश्न-पत्रों में से कोई भी चार प्रश्नपत्र एम० ए० प्रीवियस तथा शेष एम० ए० फाइनल में लिये जा सकेंगे।

प्रश्नपत्र १. आलोचना-शास्त्र और उसका इतिहास

१. भारतीय आलोचना शास्त्र—काव्य-सम्प्रदाय (रस, अलंकार, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति, अनुमिति और औचित्य सम्प्रदाय-ऐतिहासिक विकास एवं सिद्धान्तों का सामान्य परिचय) शब्द-शक्ति, रस, रीति, गुण दोष, अलंकार, भारतीय नाट्य सिद्धान्त तथा हिन्दी काव्य-शास्त्र का इतिहास (केशव, मतिराम, देव, पद्माकर, भिखारीदास, आदि रीतिकालीन तथा डॉ० श्यामसुन्दरदास, पं० रामचन्द्र शुक्ल आदि आधुनिक आचार्य)।

२. पाश्चात्य आलोचना शास्त्र—पाश्चात्य आलोचना शास्त्र के इतिहास और उसके प्रमुख सिद्धान्तों का सामान्य परिचय (अनुकरण सिद्धान्त, विरेचन सिद्धान्त, आभिजात्यवाद, स्वच्छन्दतावाद, अभिव्यंजनावाद, यथार्थवाद, अतियथार्थवाद, अस्तित्ववाद) कला और उसके भेद, विभिन्न साहित्य विधाएँ—नाटक, आलोचना, कहानी, उपन्यास, निबन्ध, रेखाचित्र आदि।

प्रश्नपत्र २. मध्यकालीन काव्य और उसका इतिहास

सूरदास, तुलसीदास, केशवदास, बिहारी और घनानन्द का अध्ययन।

प्रश्नपत्र ३. आधुनिक काव्य और उसका इतिहास

जगन्नाथ दास रत्नाकर, मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सुमित्रानन्दन पन्त तथा महादेवी वर्मा का अध्ययन।

प्रश्नपत्र ४. किसी एक कवि का विशेष अध्ययन अथवा एक भारतीय भाषा का अध्ययन

(क) सूर, तुलसी और प्रसाद में से किसी एक कवि का विस्तृत आलोचनात्मक अध्ययन।

अथवा

(ख) संस्कृत, अपभ्रंश, गुजराती, मराठी, बंगला, अथवा तमिल में से किसी एक भाषा का अध्ययन।

प्रश्नपत्र ५. भाषा विज्ञान

सामान्य भाषा ज्ञान तथा हिन्दी भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन, भाषा विज्ञान का इतिहास, भाषा और उसकी उत्पत्ति, भाषाओं का वर्गीकरण, भाषा की परिवर्तनशीलता और उसके कारण, ध्वनि विचार, रूप विचार, अर्थ विचार, शब्द समूह में परिवर्तन, भारतीय आर्य-भाषा परिवार की भाषाओं का इतिहास, हिन्दी की उत्पत्ति और उसका विकास, हिन्दी की विभाषाएँ और बोलियाँ, हिन्दी शब्द समूह, देवनागरी लिपि का विकास।

प्रश्नपत्र ६. प्राचीन काव्य और उसका इतिहास

प्रश्नपत्र ७. आधुनिक गद्य और गद्य साहित्य का इतिहास

प्रश्नपत्र ८.

(क) किसी उच्च साहित्यिक विषय पर निबन्ध लेखन अथवा

(ख) साहित्य या भाषा सम्बन्धी प्रबन्ध

विशेष—यह प्रबन्ध वे ही परीक्षार्थी ले सकेंगे जिन्हें प्रीवियस परीक्षा में कम से कम ५५% अंक प्राप्त हुए हों। प्राइवेट परीक्षार्थी प्रबन्ध न ले सकेंगे। प्रबन्ध लगभग ७५ टाइप

किए हुए फुल-स्केप आकार के पृष्ठों का होगा। प्रबन्ध की दो प्रतियाँ परीक्षा तिथि से तीन सप्ताह पूर्व रजिस्ट्रार के कार्यालय में भेज देनी चाहिए।

प्रश्नपत्र ९. मौखिक परीक्षा।

●

३८. विश्वभारती विश्वविद्यालय

एम० ए० परीक्षा १९६४

निम्नलिखित आठ प्रश्नपत्र होंगे, प्रत्येक चार घण्टे और १०० अंकों का होगा। यह दो भागों में विभाजित होगा। प्रत्येक भाग में चार प्रश्नपत्र होंगे।

प्रथम वर्ष

प्रश्नपत्र १. सन्त और सूफ़ी साहित्य

प्रश्नपत्र २. भक्तिकालीन साहित्य

प्रश्नपत्र ३. आधुनिक साहित्य—काव्य और नाटक

प्रश्नपत्र ४. हिन्दी साहित्य का इतिहास — ५० अंक

साहित्यालोचन — ५० अंक

साहित्य के विभिन्न रूपों का अध्ययन, काव्य, नाटक, उपन्यास, लघु कथा, एकांकी, आलोचना आदि, भारतीय अलंकार और छन्द के मुख्य मुख्य भेद और उनका परिचय, काव्यगत दोष, हिन्दी रीति काल के काव्यगत सिद्धान्तों का आलोचनात्मक अध्ययन, भारतीय काव्यशास्त्र का सामान्य परिचय, रस का अध्ययन, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि और औचित्य सम्प्रदाय का ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अध्ययन।

साहित्यालोचन के पाश्चात्य सम्प्रदाय, प्लेटो और अरस्तू, रोमन विचारक और साहित्यिक आलोचना, काव्य के कार्य, साहित्य और नैतिकता।

शास्त्रीय, रोमांसवाद, प्रकृतिवाद, यथार्थवाद, अभिव्यंजनावाद, साहित्य और मनोविश्लेषणवाद, मार्क्सवाद आदि।

द्वितीय वर्ष

प्रश्नपत्र १. अपभ्रंश और प्राचीन हिन्दी

प्रश्नपत्र २. सामान्य भाषाशास्त्र — ५० अंक

हिन्दी भाषा का इतिहास — ५० अंक

(अ) भाषा-शास्त्र, परिभाषा, क्षेत्र, विषय, शाखाएँ। भाषा—परिभाषा, उत्पत्ति, विकास, वर्गीकरण, भाषा और बोलियाँ, ध्वनि-नियम और ध्वनि सिद्धान्त, भाषा और अर्थ-विज्ञान के बौद्धिक नियम।

(ब) भारोपीय परिवार की भारतीय आर्य शाखा की ईरानी शाखा में हिन्दी का स्थान हिन्दी-विकास की अवस्थाएँ। हिन्दी और उसकी बोलियाँ, हिन्दी ध्वनियों की उत्पत्ति और विकास, रूप विज्ञान।

लिंग, वचन, कारक, परसर्ग, सर्वनाम, संख्यावाचक विशेषण, काल और भाव, वाच्य, हिन्दी वर्ण योजना। हिन्दी अर्थ विज्ञान, शब्द समूह, निजी और विदेशी।

प्रश्नपत्र ३. रीतिकालीन साहित्य

प्रश्नपत्र ४. आधुनिक साहित्य—निबन्ध और कथा साहित्य

●

३९. शिवाजी विश्वविद्यालय कोल्हापुर

एम० ए० परीक्षा १९६५–६६

दो सहायक तथा छः मुख्य प्रश्नपत्र होंगे।

सहायक (दो प्रश्नपत्र)

प्रश्नपत्र १. आधुनिक गद्य एवं पद्य।

प्रश्नपत्र २. प्राचीन गद्य एवं पद्य।

मुख्य (६ प्रश्नपत्र)

प्रश्नपत्र १. २. यथा सहायक पाठ्यक्रम के प्रश्नपत्र।

प्रश्नपत्र ३. एक साहित्यकार का विशेष अध्ययन।

सूरदास

प्रश्नपत्र ४. (क) भाषा-शास्त्र के सिद्धान्त और देवनागरी लिपि तथा हिन्दी भाषा का इतिहास (उन परीक्षार्थियों के लिए जिन्होंने सामान्य भाषा विज्ञान नहीं लिया है।)

निम्नलिखित अंश अध्ययन के लिए निर्धारित है :—

भाषा का स्वरूप, भाषा की उत्पत्ति और विकास, भाषा के विविध रूप, भाषा विज्ञान तथा अन्य विज्ञान, भाषा विज्ञान के अंग, ध्वनि-विचार-ध्वनि यंत्र, ध्वनियों का वर्गीकरण, ध्वनि विकास, पद विचार, पद रचना, पद विकास और उसका कारण, अर्थ विचार, भाषा का वर्गीकरण-आकृतिमूलक और ऐतिहासिक विविध भाषा परिवार, आर्य परिवार, भारत ईरानी शाखा, भारतीय भाषा परिवार, प्राचीन भारतीय आर्य भाषा, मध्यवर्ती भारतीय आर्यभाषाएँ, आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ, आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं तथा बोलियों का वर्गीकरण, हिन्दी शब्द समूह, हिन्दी शब्द समूह, हिन्दी की विविध बोलियाँ, लिपि का विकास, देवनागरी लिपि का इतिहास।

अथवा

(ख) हिन्दी का विशेष भाषा वैज्ञानिक अध्ययन (उन परीक्षार्थियों के लिए जो सामान्य भाषा विज्ञान पढ़ते हैं)।

निम्नलिखित अंश निर्धारित हैं :—

(अ) हिन्दी भाषा का विकास, हिन्दी शब्द समूह तथा व्युत्पत्ति विचार, हिन्दी ध्वनियाँ, हिन्दी की विविध बोलियाँ, पश्चिमी हिन्दी और पूर्वी हिन्दी, हिन्दी की संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया विशेषण, अव्यय तथा क्रिया पदों का अध्ययन, अध्ययन, हिन्दी प्रत्यय और उपसर्ग, हिन्दी वाक्य-रचना।

(ब) ब्रजभाषा अथवा अवधी का विशेष अध्ययन।

प्रश्नपत्र ५. काव्यशास्त्र और साहित्यालोचन के सिद्धान्त।

निर्धारित अंश :—

काव्य-स्वरूप, काव्य-लक्षण, काव्य के तत्त्व, कारण और प्रयोजन, काव्य और कला, काव्य के विविध रूप, पद्य के भेद, महाकाव्य का स्वरूप, गद्य काव्य के भेद, नाटक के तत्त्व, नाटक के प्रकार तथा नाटक का रचना-विधान, कहानी और उपन्यास का शिल्प विधान, विभिन्न भारतीय काव्य सिद्धान्त, पाश्चात्य काव्य सिद्धान्त और वाद, ध्वनि, रस, रीति, वक्रोक्ति, अलंकार आलोचना का स्वरूप, आलोचना और इतिहास, आलोचना और अनुसन्धान, आलोचना का कार्य, आलोचना के गुण, आलोचना के विविध मानदण्ड, आलोचना के विभिन्न प्रकार।

प्रश्नपत्र ६. निबन्ध—धार्मिक और दार्शनिक विचारों के हिन्दी साहित्य पर प्रभाव का अध्ययन।

निम्न अंश निर्धारित है :—

वैदिक तत्व, वैष्णव, शैव दर्शन और सगुण, निर्गुण, भक्ति नाथ सम्प्रदाय, सूफीमत, मार्क्सवाद।

●

४०. श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय

एम० ए० परीक्षा १९६५

प्रथमवर्ष

प्रश्नपत्र १. मध्यकालीन काव्य।

प्रश्नपत्र २. आधुनिक काव्य।

प्रश्नपत्र ३. गद्य और नाटक।

प्रश्नपत्र ४. हिन्दी साहित्य का इतिहास और आलोचना के सिद्धान्त।

द्वितीयवर्ष

प्रश्नपत्र १ प्राचीन काव्य।

प्रश्नपत्र २ भाषा विज्ञान।

प्रश्नपत्र .३. ऐच्छिक कवि या भाषा

सूरदास, तुलसीदास, प्रसाद, केशवदास

या

संस्कृत

प्रश्नपत्र ४. निबन्ध या शोध निबन्ध।

●

४१. एस० एन० डी० टी० महिला विश्वविद्यालय

एम० ए० परीक्षा

छः प्रश्नपत्र होंगे। प्रत्येक प्रश्नपत्र ३ घण्टा और १०० अंक का होगा।

प्रश्नपत्र १. निबन्ध तथा मध्यकालीन काव्य

(अ) निबन्ध	५० अंक
१. अपठित गद्य खण्डों की व्याख्या और उनकी हिन्दी में आलोचना	२० अंक
२. निबन्ध	३० अंक
(ब) मध्यकालीन काव्य	५० अंक

प्रश्नपत्र २. आधुनिक काव्य और गद्य

(अ) गद्य	५० अंक
(ब) पद्य	५० अंक

प्रश्नपत्र ३. भाषा-शास्त्र और हिन्दी भाषा का इतिहास तथा विकास

भाषा-विज्ञान :—

भाषा क्या है, भाषा-विज्ञान क्या है, भाषा-विज्ञान तथा अन्य विज्ञान, भाषा के उद्गम के विभिन्न वाद, भाषा का विकास, तथा उसके विभिन्न वाद, ध्वनि विचार, ध्वनि यन्त्र, ध्वनियों का वर्गीकरण, ध्वनियों के गुण, संयुक्त ध्वनियाँ, ध्वनि विकास, पद विचार (रूप विचार), पद रचना, पद विकास, पद व्याख्या, पद विकास का कारण, अर्थ विचार, भाषा का गठन, भाषा का वर्गीकरण, वाक्य विचार, भाषा विज्ञान का इतिहास, लिपि का इतिहास।

हिन्दी भाषा का इतिहास :—

हिन्दी ध्वनि समूह, हिन्दी ध्वनियों का इतिहास, विदेशी शब्दों में ध्वनि परिवर्तन, रचनात्मक उपसर्ग तथा प्रत्यय, संज्ञा, संख्यावाचक विशेषण, सर्वनाम, क्रिया, अव्यय।

प्रश्नपत्र ४. साहित्य-रूप नाटक की उत्पत्ति तथा विकास विस्तृत इतिहास के साथ।

प्रश्नपत्र ५. साहित्यालोचन और काव्य शास्त्र।

साहित्य का उदय, साहित्य और समाज, साहित्य और नीति, साहित्य का अध्ययन, साहित्य की परिभाषा, शब्द शक्ति, विभिन्न भारतीय काव्य सिद्धान्त और सम्प्रदाय, अलंकार-रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि-रस, रस विचार, काव्य में छन्द और अलंकार की आवश्यकता, पाश्चात्य

काव्य सिद्धान्त और वाद, नाट्य शास्त्र पूर्वी और पाश्चात्य, आलोचना शास्त्र, आलोचना का स्वरूप, कार्य, विविध मानदण्ड तथा प्रकार, आलोचक के गुण, कला की परिभाषा और वर्गीकरण, विभिन्न कलाओं के साथ काव्य कला का सम्बन्ध।

प्रश्नपत्र ६. विशेष एवं विशद् अध्ययन – मैथिलीशरण गुप्त।

●

४२. सरदार वल्लभभाई विद्यापीठ

एम० ए० परीक्षा १९६५

प्रश्नपत्र १. आधुनिक गद्य और नाटक (संवत् १९०० से अब तक)।

प्रश्नपत्र २. आधुनिक काव्य (संवत् १९०० से अब तक)।

प्रश्नपत्र ३. मध्यकालीन काव्य (संवत् १५०० से १९०० तक)।

प्रश्नपत्र ४. आलोचना के सिद्धान्त, काव्यशास्त्र तथा हिन्दी साहित्य का इतिहास।

सूचना—हिन्दी साहित्य के इतिहास से सम्बन्ध रखनेवाले प्रश्न युग विशेष से सम्बद्ध प्रथम, तृतीय और षष्ठ प्रश्नपत्रों में भी पूछे जा सकते हैं।

प्रश्नपत्र ५. तुलनात्मक भाषा-विज्ञान, हिन्दी भाषा की उत्पत्ति और विकास एवं देवनागरी लिपि का विकास।

प्रश्नपत्र ६. प्राचीन काव्य (संवत् १००० से १६०० तक)।

प्रश्नपत्र ७. (अ) विशेष अध्ययन

तुलसीदास—तुलसी की समस्त कृतियों एवं तुलसी विषयक समस्त साहित्य का अध्ययन।

अथवा

प्रसाद—जयशंकर प्रसाद की समस्त कृतियों एवं प्रसाद विषयक समस्त साहित्य का अध्ययन।

प्रश्नपत्र ८. (साहित्यिक लेख और हिन्दी में अनुवाद) :

●

४३. सागर विश्वविद्यालय

एम० ए० परीक्षा १९६५–६६

एम० ए० परीक्षा में आठ प्रश्नपत्र होंगे तथा १०० अंकों की मौखिक परीक्षा होगी। प्रत्येक प्रश्नपत्र सौ अंकों का और तीन घण्टों का होगा। एम० ए० पूर्वार्द्ध परीक्षा में प्रथम चार प्रश्नपत्र होंगे। उत्तरार्द्ध परीक्षा में शेष चार प्रश्नपत्र तथा मौखिक परीक्षा होगी।

प्रश्नपत्र १. हिन्दी सगुण-भक्ति काव्य तथा रीति काव्य :—

रामचन्द्रिका, गीतावली, भ्रमरगीत सार, मीराबाई पदावली, बिहारी, घनानन्द कवित्त।

प्रश्नपत्र २. आधुनिक काव्य :—

साकेत, कामायनी, अपरा, रश्मिबन्ध, आधुनिक कवि १. सप्तपर्णी।

प्रश्नपत्र ३. भारतीय तथा पाश्चात्य समीक्षा-सिद्धान्त तथा काव्य-रूपों का अध्ययन मुख्यतः ऐतिहासिक क्रम से ही विविध सिद्धान्तों का स्वरूप और विकास अध्ययन का विषय होगा, किन्तु सिद्धान्तों का स्वरूप ज्ञान भी आवश्यक होगा। इसके अतिरिक्त साहित्य और दर्शन साहित्य और कला, साहित्य और विज्ञान, साहित्य और समाज सम्बन्धी तथ्यों की तुलनात्मक जानकारी अपेक्षित होगी। भारतीय और पश्चिमी सिद्धान्तों और काव्यरूपों में प्रदर्शित समान भूमिकाओं का ज्ञान भी आवश्यक होगा।

भारतीय काव्य सिद्धान्त

१. **रससम्प्रदाय**—भरत मुनि की रस की व्याख्या और परिभाषा, रस के विविध अवयव या उपकरण, रसानुभूति का स्वरूप, नाटक में रस का प्रयोग।

२. **अलंकार सम्प्रदाय**—अलंकार वादियों का काव्य सिद्धान्त, अलंकार सम्प्रदाय का क्रमिक विकास, अलंकार की सर्वातिशयता, और रस से उसका सम्बन्ध, अलंकार और रीति, अलंकार और वक्रोक्ति, अलंकार का मम्मट के द्वारा काव्य सिद्धान्त के अन्तर्गत पर्यावसान। अलंकारों का वर्गीकरण और कतिपय मुख्य अलंकारों का ज्ञान। आधुनिक युग का अलंकार सम्बन्धी नया विवेचन।

३. **रीति सम्प्रदाय**—रीति की व्याख्या और परिभाषा, रीति सम्प्रदाय का क्रमिक विकास, रीति और काव्य शैली, रीति और गुण, रीति और रस, रीति का भारतीय काव्यशास्त्र में समाचार, आधुनिक युग में रीति या स्टाइल सम्बन्धी नवीन विवेचन।

४. **वक्रोक्ति सम्प्रदाय**—वक्रोक्ति सम्प्रदाय का मूल वक्तव्य, वक्रोक्ति काव्य जीवित, वक्रोक्ति और रस, वक्रोक्ति और रीति, वक्रोक्ति के विभिन्न रूप या वर्ग, वक्रोक्ति के सम्बन्ध में आधुनिक अभिमत।

५. **ध्वनि सम्प्रदाय**—ध्वनि की स्थापना, ध्वनि विरोधी मतों का स्वरूप और ध्वनि से उनका तारतम्य, ध्वनि और रस, पारस्परिक सम्बन्ध का स्पष्टीकरण, काव्य की आत्मा ध्वनि या रस? इसका विवेचन, ध्वनि की सर्वातिशयिता और उसका परिणाम, आधुनिक समीक्षा में ध्वनि के समकक्ष तत्व।

६. **औचित्य सम्प्रदाय**—औचित्य सम्प्रदाय की रूप-रेखा, क्या यह स्वतन्त्र सम्प्रदाय है? औचित्य का स्वरूप लक्ष्य, अवयव संगति का पश्चिमी सिद्धान्त तथा औचित्य मत की तुलना।

७. **शब्द शक्तियों का विवेचन**—स्वरूप ज्ञान, काव्य में उनकी उपादेयता, शब्द शक्तियों के मुख्य विभाग, पश्चिमी अलंकार-शास्त्र और शब्द-शक्ति की तुलना।

८. काव्य-शास्त्र में विभिन्न काव्य रूपों का उल्लेख तथा उनके स्वरूप का विवेचन।

अ. महाकाव्य, खण्ड काव्य, मुक्तक काव्य।
ब. नाटक तथा उसके भेदोपभेद।
स. कथा, आख्यायिका आदि पर विवेचन।

पाश्चात्य समीक्षा सिद्धान्त

१. **क्लासिकल युग**—अनुकृति-सिद्धान्त की पूर्व-पीठिका, होमर और प्लेटो आदि के सूत्र, अरिस्टाटल का अनुकृति सिद्धान्त, अनुकृति का अर्थ, कलापों का वर्गीकरण अनुकृति सिद्धान्त पर नये विचार, प्लेटो और अरिस्टाटल के मतों का तुलनात्मक विवेचन, क्या यह स्वयं सम्पूर्ण सिद्धान्त है?

अनुकृति-सिद्धान्त में रीति बाहुल्य का प्रवेश, और लौंजाइनस की प्रतिक्रिया, लौंजाइनस का काव्य-सौष्ठव का सिद्धान्त। रोमन सभ्यता में विकसित काव्य चिन्तन का रूप, सिनेका और होरेस के काव्याभिमत, नियोप्लेटोनिक प्रगति काव्य—विषयक दार्शनिक चिन्तन-प्लोटिनस का मत, क्विन्टीलियन का भाषा-सम्बन्धी अभिमत।

२. **मध्ययुग**—राष्ट्रीय प्रभाव से विकसित मध्ययुग के काव्यसिद्धान्त, नाटकों में (Moral cycles) और (Mystics cycles) का प्रवेश, काव्य और धार्मिकता, काव्य और तत्कालीन रहस्यवाद, खिष्टीय संकीर्णता की प्रतिक्रिया, लोक साहित्य के सिद्धान्तों का अभाव, भाषा की अराजकता, रूप की अराजकता, बौद्धिक और वैचारिक आधार का अभाव। मध्य-युगीन चिन्तन में रीति का प्राधान्य स्कोलेटिक विचारधारा, भाषा की कृत्रिमता और लोक जीवन से उसका सम्बन्ध-विच्छेद। दान्ते के विचारों के रूप में मध्ययुग की परिणति और पुनरुत्थान का आरम्भ, दाँते की परिष्कृत लोक भाषा, दाँते के भाषा सम्बन्धी विचार, काव्य में भाषा और भाव का पारस्परिक सम्बन्ध।

३. **पुनरुत्थान**—मध्य युग के विरुद्ध प्रतिक्रिया, शिष्ट समाज में साहित्य के पुनरुत्थान के प्रयत्न, फिलिप सिडनी का अपोलॉजी फार पोयट्री। नये सिद्धान्तों का पुनर्निर्माण-जानसन।

४. **अभिनव-परम्परावाद**—बोइलो, पोप इत्यादि का कार्य, ड्राइडिन एडिसन और बर्क के विचार, लेसिंग और विंकिलमेन का नया काव्य चिन्तन।

५. **स्वच्छन्दतावादी काव्य सिद्धान्त का निर्माण और उसके निर्माता**—ब्लैक, वर्ड्सवर्थ, शेली, कॉलरिज, गेटे, शिलर आदि का चिन्तन स्वच्छन्दतावादी काव्य मत का स्वरूप। स्वच्छन्दता-वाद की दार्शनिक भूमिका, काण्ट और हेगेल के कला सम्बन्धी दार्शनिक मत। पश्चिमी स्वच्छन्दता-वाद तथा हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी काव्य-सम्बन्धी प्रतिमान : तुलनात्मक अध्ययन। स्वच्छन्दता-वाद पर परवर्ती विचारकों के अभिमत काडवेल, टी० एस० इलियट तथा आधुनिक मनोवैज्ञानिकों के विचार। इस काल के अन्य महत्वपूर्ण विचारक : सेंट बूब, मैथ्यू आर्नल्ड, वाल्टर पेटर।

६. **आधुनिक युग**—यथार्थवाद और प्रगतिवाद, प्रतीकवाद, फ्यूचरिज्य, तालस्ताय का मानवतावादी कला चिन्तन, प्रगतिवाद और समाजवादी यथार्थवाद, साहित्य सम्बन्धी आधुनिक मनोवैज्ञानिक विचार, अतियथार्थवाद कलावाद और उसके प्रवर्तक, क्लाइव बेल, ब्रेडले क्विलर

काउच, रोजर फ्राइ आदि। दार्शनिक साहित्य चिन्तन, क्रोचे का अभिव्यंजनावाद और अस्तित्ववाद, नवीनतम समन्वय के प्रतिनिधि : आई० ए० रिचर्ड्स और टी० एस० इलियट। ऐतिहासिक क्रम से निम्नलिखित काव्य रूपों का अध्ययन—दुखान्त नाटक : नाटक के अन्य रूप, महाकाव्य, आख्यानक काव्य, प्रगीत काव्य, उपन्यास और लघुकथा, निबन्ध तथा आलोचना के रूप-भेद।

प्रश्नपत्र ४. हिन्दी साहित्य तथा समसामयिक भारतीय संस्कृति का इतिहास।

प्रश्नपत्र ५. प्राचीन काव्य :—

वीरकाव्य, कबीर ग्रन्थावली, पद्मावत, विद्यापति।

प्रश्नपत्र ६. गद्य साहित्य

चन्द्रावली, चन्द्रगुप्त, वितस्ता की लहरें, गोदान, कंकाल, परती परिकथा, सप्तदशी, चिन्तामणि भाग १, हिन्दी साहित्य, बीसवीं शताब्दी।

प्रश्नपत्र ७. भाषा विज्ञान :—

१. परिचय : भाषा विज्ञान की परिभाषा तथा उसके विभिन्न नाम, भाषा विज्ञान की विभिन्न शाखाएँ तथा प्रत्येक की देन। भाषा विज्ञान की व्याप्ति, भाषा विज्ञान तथा व्याकरण का अन्तर, भाषा विज्ञान कला तथा विज्ञान के रूप में, भारत तथा यूरोप में भाषा विज्ञान का इतिहास (प्राचीन काल से आधुनिक काल तक)।

भाषा विज्ञान की आधुनिक प्रवृत्तियाँ

२. **ध्वनि विज्ञान**—ध्वनि की परिभाषा, गुण तथा भेद, व्याकृता वैखिरी ध्वनि की विशेषताएँ, ध्वनि यन्त्र के चित्र द्वारा उच्चारणोपयोगी अवयवों की पहचान। ध्वनि स्थान, प्रयत्न तथा उच्चारण के भेदोपभेदों का ज्ञान, उच्चारण प्रक्रिया तथा प्रयत्न के भेदों का आधार, ध्वनि वर्गीकरण का आधार तथा सिद्धान्त, यूरोपीय ध्वनियों का ज्ञान, यूरोपीय मूल स्वरों का सम्यक् ज्ञान, स्थान प्रयत्न तथा उच्चारण के आधार पर हिन्दी ध्वनियों का वर्गीकरण तथा उनका विस्तृत ज्ञान, हिन्दी में प्रयुक्त विदेशी ध्वनियों का ज्ञान, स्वराघात के कारण तथा भेद। अभिश्रुति के कारण, भेद तथा प्रभाव। ध्वनि परिवर्तन के कारण।

३. **ध्वनि-सिद्धांत**—ध्वनि-नियम तथा ध्वनि सिद्धान्त का अन्तर, ध्वनिपरिवर्तन की दिशाएँ, उनके विभिन्न प्रकारों तथा उनके कारणों का सम्यक् ज्ञान। शब्दों की व्युत्पत्ति और उन्हें निकालते समय की जाने वाली सावधानियाँ। हिन्दी के विभिन्न प्रकार के कुछ तद्भव शब्दों की व्युत्पत्ति निकालने का अभ्यास। ध्वनि नियम की वैज्ञानिक परिभाषा, प्राकृतिक नियम एवं ध्वनि-नियम में अन्तर, ध्वनि नियम के अपवाद तथा उसके कारण। कुछ प्रसिद्ध ध्वनिनियमों का अध्ययन, ग्रिम-नियम, ग्रासमैन-नियम, वर्नर्स-नियम।

४. **रूप-विचार**—सामान्य रूप विचार एवं विशेष रूप विचार, रूपमात्र एवं अर्थमात्र का अन्तर, रूपमात्र के प्रमुख भेद, वाक्य के अवयव, प्रकार तथा तत्वों का अध्ययन, शब्द, पद तथा उनके सम्बन्ध तत्व के प्रकार। शब्द तत्व एवं अर्थतत्व का सम्बन्ध। भाषा की रूप रचना के

प्रमुख सिद्धान्त तथा हिन्दी भाषा की रूप-रचना के अध्ययन में उनके प्रभावों का अध्ययन। रूप विचार के कारण, हिन्दी के विभिन्न पदों की उत्पत्ति एवं विकास का अध्ययन। संज्ञा, सर्वनाम, कारक, विशेषण, क्रिया, अव्यय, क्रिया-विशेषण।

५. अर्थ परिवर्तन—अर्थ का शब्द से सम्बन्ध, अर्थ परिवर्तन के निर्णायक तत्व, अर्थ का निश्चयी करण, अर्थ भेद के कारण, और उनके उदाहरण, अर्थ विकास के मूल कारण, अर्थ विकास की धाराएँ तथा प्रत्येक के श्रोत का कारण, अर्थ परिवर्तन का अलंकारों एवं शब्द-शक्तियों से सम्बन्ध। अर्थ परिवर्तन के नियम तथा सिद्धान्त। शब्दों की अर्थ-शक्ति घटने बढ़ने की प्रक्रिया का सोदाहरण सम्यक् ज्ञान।

६. भाषा-अध्ययन के आधार पर प्रागैतिहासिक खोज—भाषा विज्ञान के द्वारा प्रागैतिहासिक खोज की प्रणाली, भाषा विज्ञान के आधार पर प्रागैतिहासिक खोज करते समय की जाने वाली सावधानियाँ। भाषा विज्ञान के आधार पर प्रागैतिहासिक खोज करने के विविध विषयों के ज्ञान की आवश्यकता। भारतीय वर्ग की प्राचीनतम भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर आर्यों की प्राचीनतम निवास-भूमि एवं उनकी सभ्यता एवं संस्कृति की खोज। आर्यों की निवास-भूमि विषयक विभिन्न मत तथा उनका निराकरण।

७. भाषा-दर्शन—भाषा की विभिन्न परिभाषाएँ, उनका खण्डन एवं मण्डन करते हुए वैज्ञानिक परिभाषा की स्थापना। भाषा शब्द के विभिन्न अर्थ। भाषा, विभाषा और बोली का अन्तर। भाषा के विभिन्न पक्ष, आधार-स्वरूप, प्रकृति नियम शक्ति तथा विकास का अध्ययन। भाषा उत्पत्ति विषयक विभिन्न मत या वाद तथा उनकी समीक्षा। भाषा उत्पत्ति विषयक आधुनिकतम वाद का अध्ययन। भाषा के विभिन्न कार्य तथा प्रयोजन। भाषा विकास की विभिन्न अवस्थाएँ। भाषा परिवर्तन के कारण।

८. विश्व भर की भाषाओं का वर्गीकरण तथा इतिहास—भाषा-वर्गीकरण के भीतर निहित प्रमुख सिद्धान्त तथा उनका आधार। भाषा-वर्गीकरण के प्रकार। मूल भाषा की धारणा का ज्ञान। ऐतिहासिक तथा रूपात्मक दृष्टि से विश्व भर की भाषाओं का वर्गीकरण एवं उनकी विशेषताओं का अध्ययन। एशिया, यूरोप एवं भारत में बोली जाने वाली भाषाओं के परिवारों का विस्तृत अध्ययन। भारतीय परिवार का सम्यक् अध्ययन, भारतीय परिवार की मुख्य विशेषताएँ तथा इस नामकरण का कारण। केन्टुम और सतम् वर्ग की विशेषतायें तथा उनकी भाषाओं का ज्ञान। संस्कृत एवं अवस्ता की तुलना। आर्य भाषा परिवार के विकास की अवस्थाएँ। प्राकृत शब्द के विभिन्न अर्थ—प्रथम, द्वितीय, तृतीय प्राकृत का ज्ञान तथा उनके विकास का अध्ययन।

संस्कृत, प्राकृत, पालि एवं अपभ्रंश की उत्पत्ति एवं उनके विकासात्मक इतिहास का उनकी देन तथा विशेषताओं सहित अध्ययन। आधुनिक प्रान्तीय भाषाओं का विभिन्न प्राकृतों से सम्बन्ध। भारत की आधुनिक आर्यभाषाओं में ग्रियर्सन के अन्तरंग एवं बहिरंगवाद का अर्थ तथा उसके भीतर निहित सिद्धान्त और उनका खरापन।

चटर्जी के भौगोलिक वर्गीकरण के सिद्धान्त का ज्ञान तथा इस दृष्टि से भारत की आधुनिक

प्रान्तीय आर्य भाषाओं का वर्गीकरण तथा प्रत्येक के ऐतिहासिक विकास एवं उनकी विशेषताओं का अध्ययन। ब्रज, अवधी, खड़ीबोली, बुन्देलखण्डी और राजस्थानी का विस्तृत तुलनात्मक अध्ययन। भाषा-शास्त्र की दृष्टि से हिन्दी शब्द के विभिन्न अर्थ नाम तथा विभिन्न प्राकृतों से इसका सम्बन्ध राष्ट्रभाषा के लक्षण तथा उनकी कसौटी पर हिन्दी भाषा की परीक्षा।

९. **लिपि ज्ञान**—देवनागरी लिपि की उत्पत्ति, विकास तथा विशेषतायें। रोमन, फारसी तथा भारत की अन्य लिपियों से देवनागरी लिपि की तुलना। देवनागरी लिपि के भीतर किये जाने वाले सुधारों की समीचीनता का सम्यक् अध्ययन।

प्रश्नपत्र ८. विकल्प : १

निम्नलिखित में से किसी एक का विशेष अध्ययन :—

तुलसीदास, सूरदास, जयशंकर प्रसाद, प्रेमचन्द, निराला।

विकल्प : २

जो विद्यार्थी संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश विषय के साथ बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण हों अथवा जो गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज वाराणसी की मध्यमा परीक्षा अथवा उसकी समतुल्य अन्य संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश परीक्षा उत्तीर्ण हों, वे तद्विषयक विकल्पों को इस प्रश्नपत्र में नहीं ले सकेंगे।

मूल भाषाएँ – निम्न में से कोई एक :—

संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश।

विकल्प : ३

निम्नलिखित विषयों में से कोई एक निबन्ध :—

१. साहित्यिक एवं सैद्धान्तिक विषय।
२. सामयिक साहित्य, भाषा तथा लिपि सम्बन्धी समस्याएँ।
३. लोक साहित्य तथा लोक संस्कृति विषयक प्रश्न।

विकल्प : ४

हिन्दी भाषा अथवा साहित्य विषयक प्रबन्ध :—

सूचना—यह विकल्प उन नियमित परीक्षार्थियों के लिए है जो पूर्वार्द्ध परीक्षा में पचास प्रतिशत या इससे अधिक अंक प्राप्त कर सकने में समर्थ हैं :—

सूचना—प्रथम, द्वितीय, पंचम और अष्टम प्रश्नपत्रों में शब्द-शक्ति, अलंकार, गुण, दोष, तथा छन्द सम्बन्धी प्रश्न भी रक्खे जा सकेंगे।

प्रश्नपत्र ९. मौखिक परीक्षा।

डॉ० बलभद्र प्रसाद

उपकुलपति का वक्तव्य

देवियो और सज्जनो,

बड़ी खुशी की बात है कि हिन्दी के बड़े बड़े विद्वान् यहां जमा हुए हैं और यह विचार करेंगे कि हिन्दी पोस्ट ग्रेजुएट के पाठ्यक्रम में क्या परिवर्तन करने की जरूरत है और हिन्दी में एम० ए० के बाद अनुसंधान का क्या रूप होना चाहिए और उसके क्या तरीके होने चाहिए। मैं इन विद्वानों का अपनी ओर से और इलाहाबाद यूनिवर्सिटी की तरफ से स्वागत करता हूं।

युनिवर्सिटी ग्रान्ट्स कमीशन को भी इस बात का धन्यवाद देता हूँ कि उसने इलाहाबाद को आप लोगों का स्वागत करने का मौका दिया।

पढ़ने लिखने से मेरा सम्पर्क विज्ञान से रहा है। इसलिए हिन्दी के बारे में कुछ कहना मैं धृष्टता समझता हूं। लेकिन विश्वविद्यालयों के साथ मेरा पुराना सम्बन्ध है और मुझे अपने विषय के अलावा अन्य विषयों पर भी सोचने का मौका मिला है। सोचने का फल यह हुआ कि हिन्दी के विषय में कुछ मेरे विचार हैं। ये विचार ठीक हैं कि गलत हैं, इसका निर्णय मैं आप पर छोड़ता हूँ।

बहुत दिनों तक तो हिन्दी की पढ़ाई एम० ए० में होती ही नहीं थी। जब हिन्दी में एम०-ए० की पढ़ाई शुरू की गयी तो भारतीय विश्वविद्यालयों में जो अंगरेजी एम० ए० का कोर्स था, उसके आधार पर हिन्दी एम० ए० का कोर्स बना। होना यह चाहिए था कि जो इंगलैण्ड में एम०-ए० या आनर्स का कोर्स है उसके आधार पर हिन्दी एम० ए० का कोर्स बनना चाहिए था। इंगलैंड में अंग्रेजी में डिग्री लेना और विषयों में डिग्री लेने से आसान नहीं है।

कभी कभी कोई लड़का जब मुझसे कहता है कि हिन्दी में एम० ए० करना आसान है, इसलिए वह हिन्दी में एम० ए० करना चाहता है तो मैं दुःखी होता हूँ और मैं आशा करता हूँ कि लड़के का यह खयाल गलत है।

इंग्लैंड में कुछ ऐसे विश्वविद्यालय हैं जहाँ अंग्रेजी में डिग्री लेने के लिए फ्रेंच में भी पास करना पड़ता है और वह फ्रेंच शायद काफी उच्च स्तर की होती है। अगर हमारे हिन्दी में एम०-ए० के विद्यार्थी बी० ए० के स्तर की एक भारतीय भाषा जानें तो यह भी जान सकेंगे कि भारत के अन्य भाषा-भाषी क्या सोचते हैं।

आज से १५०० साल पहले भारत सब देशों से आगे था। हमारे यहाँ खेती होती थी और विद्या भी थी। फिलासफी, साइंस लिटरेचर सब विषयों में हम अग्रसर थे। इसलिए सारे संसार के लोग हमारे यहाँ की बातों को सीखना चाहते थे। आज यूरोप अग्रसर है। ज्ञान विज्ञान साहित्य सब में बहुत आगे हैं। आज यूरोप से हमें सीखना है। जब तक जर्मनी विज्ञान में बहुत

आगे बढ़ा था तब तक इंगलैंड में विज्ञान के विद्यार्थियों के लिए जर्मन तथा फ्रेंच में पास करना अनिवार्य था। आज भी इलाहाबाद यूनीवर्सिटी में जो विद्यार्थी M. tech. पढ़ता है उसके लिए जर्मन या रूसी भाषा जानना जरूरी है। लिटरेरी क्रिटीसिज़्म तो शायद हमने यूरोप से ही सीखा है। कहते हैं कि हिन्दुस्तान में बंगला साहित्य के इतना आगे बढ़ने का कारण यह है वहाँ के लेखकों का अंग्रेजी साहित्य का ज्ञान। हमारे एम० ए० के विद्यार्थियों को कुछ यूरोपीय साहित्य का ज्ञान रखना उनके लिए लाभदायी होगा।

रही शोध की बात। कुछ लोगों का मत है हम पी-एच० डी० को एम० ए० से भी सस्ता बना रहे हैं। समय पी-एच० डी० के लिए निर्धारित रहने पर भी निर्धारित नहीं है। पी-एच०-डी० के विद्यार्थियों से हम खास विषय पर काम तो कराते हैं। उनकी विद्वत्ता उसमें ऊंचे दर्जे की होनी चाहिए। साथ-ही-साथ विषय से मिले जुले विषयों का ज्ञान भी अच्छे दर्जे का होना जरूरी है। पी-एच० डी० वालों का अपने विषय का साधारण ज्ञान एक फर्स्ट क्लास एम० ए० से कम नहीं होना चाहिए। जो कुछ त्रुटियाँ पहले हों, उनकी पूर्ति हो जानी चाहिये। जिसमें पी-एच० डी० पाने के बाद इण्टरव्यू बोर्ड यह न महसूस करे कि एक पी-एच० डी० एक एम० ए० से बदतर है। इस विषय पर और लोग भी विचार कर रहे हैं। आप भी इस पर विचार करें।

आखिर में अपनी धृष्टता के लिए माफी मांगता हूँ और आपका फिर स्वागत करता हूँ।

डॉ० रामकुमार वर्मा

हिन्दी में शोध की समस्याएं

यह प्रसन्नता की बात है कि इस देश का प्रत्येक विश्वविद्यालय जिसमें हिन्दी की स्नातकोत्तर शिक्षा का प्रबन्ध है, शोध की दिशा में भी सक्रिय हो रहा है। यह सक्रियता कहीं तो अधिक है और कहीं कम। किन्तु सक्रियता का उतना महत्व नहीं है जितना शोध के धरातल का होना चाहिए। अनेक कंठों से तो ऐसी बातें सुनने में आती हैं कि शोध का धरातल दिन-प्रतिदिन गिरता जा रहा है। हम धरातल के गिरने की बातें तो करते और सुनते हैं, किन्तु उसकी समस्याओं पर अधिक गम्भीरता से विचार नहीं करते। आज इन्हीं समस्याओं पर विचार करने के लिए हम एकत्र हुए हैं।

इन समस्याओं को हम चार कोटियों में विभाजित कर लें तो विचार करने में सुगमता होगी।

१—विश्वविद्यालय संबंधी
२—पाठ्यक्रम सम्बन्धी
३—पुस्तकालय सम्बन्धी
४—विषय और निर्देशक सम्बन्धी।

पहले हम विश्वविद्यालय सम्बन्धी समस्याओं पर विचार करें। जहां बहुत से विश्वविद्यालय हिन्दी भाषी क्षेत्र में हैं, वहाँ अनेक विश्वविद्यालय हिन्दीतर क्षेत्रों में भी हैं। इन दोनों वर्गों के विश्वविद्यालयों में शोधसम्बन्धी दृष्टिकोणों में भी अन्तर हो सकता है। हिन्दी के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण अनेक स्थानों पर आज भी नहीं है, परिणामस्वरूप अधिकारियों द्वारा जैसी सुविधा और सहायता हिन्दी शोध के लिए प्राप्त होनी चाहिए, वैसी प्राप्त नहीं हो पा रही है। आवश्यकता इस बात की है कि हिन्दी विभाग के प्राध्यापक चाहे जहाँ के विश्वविद्यालय में हों, उन्हें बिना किसी अप्रिय प्रसंग को सामने लाए दृढ़तापूर्वक शोध की संभावित सुविधाओं को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अनुदान और संयोजन नीति से इस सन्दर्भ में सहायता प्राप्त करने की भरपूर चेष्टा होनी चाहिए। देश के विविध क्षेत्रों में अलभ्य प्राचीन पाण्डुलिपियाँ बिखरी पड़ी हैं। उन्हें मूल्य दे कर क्रय करने, संग्रह करने और सम्पादन करने का बहुत महत्वपूर्ण कार्य अभी काफ़ी बड़े पैमाने पर करने की आवश्यकता है। मेरी दृष्टि में हिन्दीतर क्षेत्रों के विश्वविद्यालयों में यदि साहित्य की अपेक्षा भाषा सम्बन्धी विषयों पर शोध हो अथवा क्षेत्र विशेष की भाषा और साहित्य से हिन्दी भाषा और साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन हो तो हिन्दी के लिए विशेष लाभ की बात हो सकती है।

आजकल विश्वविद्यालयों का शोध सम्बन्धी दृष्टिकोण जितना प्रखर हो रहा है, वातावरण

उतना ही प्रतिकूल बनता जा रहा है। आए दिन छात्रों का असन्तोष और असंयमित प्रदर्शन विश्वविद्यालयों के नियमित कार्य-कलाप और शोध-कार्य में बहुत बाधाएं उपस्थित करता है। या तो छात्रसंघ के विधान में कुछ संशोधन होना चाहिए या विश्वविद्यालय की स्नातक और विधि कक्षाएं कालेज़ों को सौंप देनी चाहिए और विश्वविद्यालय का सम्बन्ध केवल स्नातकोत्तर अध्ययन और शोध तक सीमित रहना चाहिए। आजकल मेडिकल, इंजीनियरिंग और एग्रीकल्चर कालेज दिन पर दिन खुल रहे हैं, लॉ कालेज भी खुलने चाहिए और अन्य कालेजों की भांति लॉ कालेज भी यूनिवर्सिटी से सम्बन्धित हों, सम्बद्ध न हों। इससे वातावरण अपेक्षाकृत अधिक शान्त रहेगा और शोध की परिस्थितियाँ अधिक अनुकूल होंगी। किन्तु इस परिस्थिति के निर्माण की क्षमता हममें नहीं, विश्वविद्यालय और शासन के अधिकारियों में है।

एक बात और विचारणीय है। विश्वविद्यालयों में भले ही शोध के लिए अधिकाधिक आग्रह हो किन्तु देखना यह है कि उनके द्वारा शोध को प्रोत्साहन कितना मिलता है। शोध के अधिकांश विद्यार्थियों की आर्थिक स्थिति इतनी दयनीय होती है कि वे एम० ए० पास करने के अनन्तर तीन या चार वर्षों तक बिना आर्थिक सहायता के काम करने में असमर्थ रहते हैं। आज की बढ़ती हुई महंगाई में तो बिना किसी आय का साधन बनाये, विद्यार्थी चार वर्ष की लम्बी अवधि पार ही नहीं कर सकता। परिणाम यह होता है कि वह आंशिक-काल के लिए कोई कार्य खोजता है और बचे हुए समय में शोध करता है। इससे शोध की एकाग्रता और एक-निष्ठा को भारी आघात पहुंचता है और वह न तो शोध का स्तर ही उच्च रख सकता है और न निश्चित अवधि में अपना कार्य ही पूर्ण कर सकता है। दक्षिण नायक की भांति उसे अनेक पात्रों को प्रसन्न करना पड़ता है। परिणामस्वरूप उसे दो-दो और तीन-तीन बार अवधि बढ़ाने के लिए उपकुलपति से प्रार्थना करती पड़ती है और बड़ी कठिनाई से धन एकत्र कर शोध प्रबन्ध को टंकित कराता है और अपना शोध-प्रबन्ध रजिस्ट्रार के कार्यालय तक पहुंचाने में समर्थ होता है। इस भारी समस्या को सुलझाने का कोई हल विश्वविद्यालयों के पास नहीं है। विभाग के पास ५०) की केवल एक छात्र-वृत्ति होती है जो एक वर्ष योग्यतापूर्वक कार्य करने वाले छात्र को दी जा सकती है। जिस विभाग में पचास और साठ के लगभग शोधछात्र कार्य करते हों, वहां केवल ५०) की एक छात्रवृत्ति होती है जो एक वर्ष योग्यतापूर्वक कार्य करने वाले छात्र को दी जा सकती है। जिस विभाग में पचास और साठ के लगभग शोधछात्र कार्य करते हो, वहाँ केवल ५०) की एक छात्रवृत्ति हास्यास्पद नहीं तो और क्या है? जैसे पचास सदस्यों के परिवार को एक किलो यूनिट अन्न दिया जाय। इस पर भी विश्वविद्यालयीन शिक्षा का मेरुदण्ड शोध के द्वारा सुदृढ़ बनाने की बात कही जाती है। यूनिवर्सिटी अथवा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की ओर से शोध के लिए विभाग के कार्यों के अनुपात से पर्याप्त संख्या में छात्र-वृत्तियाँ होनी चाहिए तभी शोध का परिमाण और स्तर संतोषजनक होगा। शोध की स्थिति स्वर्गीय पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में 'रूपवती भिखारिणी' की भांति नहीं होनी चाहिए।

समस्याओं की दूसरी कोटि पाठ्यक्रम सम्बन्धी है। स्नातकोत्तर विद्यार्थी जब शोध करने आते हैं तब वे शोध के रीति-विधान से बिलकुल ही अपरिचित रहते हैं। विषय को किस तरह

समझा जाय, उसका योजनासूत्र किस प्रकार बनाया जाय, विषय की किन दिशाओं में प्रवेश किया जाय, लिखना कैसे आरम्भ किया जाय, आदि उलझनें उनके सामने सदैव आया करती हैं। बिना इन विषयों का ज्ञान हुए विद्यार्थी शोध का महत्व ही नहीं निरूपित कर सकता और उसके शोध का धरातल किस सीमा तक जा सकता है, इसका अनुमान सहज में किया जा सकता है। शोध-उपाधि के लिए कार्य करने के पूर्व यदि विद्यार्थी शोध के रीति विधान से परिचित हो जाय तो शोध-कार्य में उसकी रुचि और उसकी महत्ता अपने आप ही बढ़ जायगी। इसी दृष्टि को सामने रखते हुए सम्भवतः दिल्ली विश्वविद्यालय ने पूर्व पी० एच-डी० कोर्स की व्यवस्था की है। सभी विश्व-विद्यालयों में ऐसा नहीं हुआ या नहीं हो सकता। यदि हो सकता तो शोध का मार्ग अवश्य ही अधिक प्रशस्त होता। कुछ विश्वविद्यालयों में एक अन्य व्यवस्था है। एम० ए० उत्तरार्द्ध में निबन्ध प्रश्नपत्र के विकल्प में शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत किया जा सकता है। जो विद्यार्थी शोध-कार्य में अभिरुचि रखते हैं और आगे शोध-कार्य करना चाहते हैं, वे निबन्ध के स्थान पर प्रबन्ध ले लेते हैं और एम० ए० के पाठ्यक्रम के साथ शोध के रीति विधान से किसी प्रकार परिचित हो जाते हैं। किन्तु जहाँ एम० ए० के प्रबन्ध की व्यवस्था भी नहीं है, वहाँ विद्यार्थियों को शोध विधान की रीति और शैली से अपरिचित ही रहना पड़ता है। ऐसी परिस्थिति में मेरा यह सुझाव है कि निबन्ध का प्रश्नपत्र सुरक्षित रखते हुए विशेष विषय के अन्यान्य विकल्पों में एक विकल्प शोध-रीति-विधान का भी रक्खा जा सकता है। विद्यार्थी पाठालोचन अथवा लोक-साहित्य के विकल्प में शोध रीति विधान सरलता से ले सकता है और अपने आगे किए जाने वाले शोधकार्य की भूमिका से परिचित हो सकता है।

समस्याओं की तीसरी कोटि पुस्तकालय से सम्बन्ध रखती है। पुस्तकालय जितना व्यवस्थित होगा उतना ही शोध का स्तर ऊपर उठेगा। पुस्तकालय में ऐसे कर्मचारी होने चाहिए जो शोध के विद्यार्थियों का विषय समझ कर तत्सम्बन्धी समस्त सामग्री का विवरण दे सकें, उन्हें अलग-अलग सैक्शन में बँटी हुई पुस्तकों और निर्देश ग्रन्थों की सूची दे सकें और शोधछात्रों को सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची बनवा सकें। समय समय पर प्रकाशित होने वाली साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक, अर्द्धवार्षिक और वार्षिक पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाले लेखों की विषयवार सूची होनी चाहिए जिससे शोधछात्र के बहुमूल्य समय की बचत हो और सामग्री की खोज में वह व्यर्थ ही समय नष्ट करने से बच जाय। उसके लिए विशिष्ट स्थान हो जहाँ वह बैठ कर एकाग्रता से अपने शोधकार्य में संलग्न हो। यह स्पष्ट है कि पुस्तकालयों की व्यवस्था पर शोध कार्य बहुत बड़ी मात्रा में व्यवस्थित हो सकता है और सामग्री के लिए भटकने का श्रम और समय बनाकर वह निश्चित अवधि के भीतर ही अपना कार्य समाप्त कर सकता है। हिन्दी विभाग के अध्यक्षों और अनुभवी अध्यापकों से मेरा विशेष आग्रह है कि वे पुस्तकाध्यक्षों से सम्पर्क स्थापित कर अपने विषय के अनुभाग (Section) को ऐसा व्यवस्थित करा दें कि उनके शोधछात्रों की सन्दर्भ-ग्रन्थ सम्बन्धी समस्याएँ न उठ सकें और बिना विशेष परिश्रम के शोधछात्र यथेष्ट सामग्री प्राप्त कर लें।

चौथी समस्या विषय और निर्देशक सम्बन्धी है। यह समस्या सबसे विषम है, इसी

कारण शोध का स्तर गिर रहा है और कच्चे विद्यार्थियों को सस्ती डिगरियाँ मिल रही हैं। इस समस्या के सम्बन्ध में मेरे मन में अनेक विचार हैं, उनमें से कुछ आपके सामने रखना चाहता हूँ।

विषय की समस्या हम अन्तर्विश्वविद्यालय के सन्दर्भ में भी सोच सकते हैं। देश के सभी विश्वविद्यालयों के हिन्दी विभागाध्यक्षों की एक समिति हो, जिसकी एक बैठक सत्रान्त में हो। वर्ष भर के शोधकार्यों की रिपोर्ट प्रत्येक विभाग के द्वारा प्रस्तुत हो और शोध की उपलब्धियों पर एक सम्मिलित परिपत्र प्रकाशित हो। साथ ही, अगले वर्ष की शोध योजना पर प्रकाश डाला जाय और यदि आवश्यक हो तो कार्य का विभाजन भी विश्वविद्यालयीन स्तर पर हो। इससे विषयों की द्विकृति न होगी और प्रत्येक विश्वविद्यालय अन्य विश्वविद्यालयों के कार्य से परिचित रहेगा। यह भी सम्भव हो सकता है कि हिन्दी की क्षेत्रीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए विशिष्ट विषय विशिष्ट विश्वविद्यालयों को सौंपे जा सकते हैं। प्राचीन पाण्डुलिपियों के पाठानुशीलन के आधार पर वैज्ञानिक संस्करण और सम्पादन, भाषा विज्ञान के विविध पार्श्व भाषाओं और बोलियों के अध्ययन, प्रवृत्तियों की सम्यक् और तुलनात्मक समीक्षा, ऐतिहासिक खण्ड-अध्ययन, आलोचनात्मक सिद्धान्तों का मानकीकरण, साहित्यशास्त्र एवं विशिष्ट लेखकों और कवियों का अध्ययन आदि विषय या तो परस्पर बाँट लिए जा सकते हैं अथवा उनके सम्बन्ध में विशिष्ट योजनाएँ बनायी जा सकती हैं। इस बात का भी ध्यान रखा जा सकता है कि प्राथमिकता की दृष्टि से हिन्दी के किस अंग को शोध के द्वारा समृद्ध करना आवश्यक है और हिन्दी भाषा और साहित्य के इतिहास की कौन-सी कड़ी कमजोर है जिसे मजबूत करने के लिए हमें शीघ्रातिशीघ्र प्रयत्नशील होना है। यह भी सोचा जा सकता है कि भाषा या साहित्य के किस भाग पर प्रामाणिक शोध करने की सम्भावना और परिस्थितियाँ किस विश्वविद्यालय के पास हैं। संक्षेप में, इस सम्मिलित सहयोग से हमारे शोध-कार्य में प्रगति आएगी और अन्य विश्वविद्यालयों के सम्बन्ध में अनिश्चय और अज्ञान के कारण हमारे शोध कार्य में व्यर्थ पिष्टपेषण और दुहराहट की सम्भावना भी दूर हो जायगी। प्रत्येक विभाग भी अपनी त्रिवर्षीय अथवा पंचवर्षीय योजना बना कर अपने शोधकार्य की विशिष्ट दिशा का निर्धारण कर सकता है।

विषयों के सम्बन्ध में भी पर्याप्त ध्यान रखना आवश्यक है। शोधछात्र प्रायः बहुत हलके और पिटे हुए विषय लेने की चेष्टा करते हैं, इसका कारण यही है कि वे सामान्य आलोचना और शोध का अन्तर ही नहीं समझते और बिना परिश्रम के ही अपना कार्य पूरा कर लेना चाहते हैं। वे आसन्दिक विषय––Armchain subject की ही खोज करते हैं और रिसर्च के नाम पर उपलब्ध सामग्री का रिहर्सल करते हैं। ऐसे रिसर्च को 'भानुमती के कुनबे' की संज्ञा दी जाती है। ऐसे शोधप्रबन्ध किसी नए तथ्य का उद्घाटन नहीं करते, वे विषय पर बिखरी सामग्री को एक स्थान पर एकत्र अवश्य कर लेते हैं। ऐसे शोध प्रबन्धों से विश्वविद्यालय और विभाग का गौरव भी गिरता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास को व्यवस्थित करने के लिए ऐसे दर्जनों विषय हैं जिनमें शोध की आवश्यकता है। ऐसी दर्जनों प्रवृत्तियाँ और रूढ़ियाँ हैं जो अधूरी और टूटी हुई हैं, उनके अन्तर्प्रवाह को ऊपर लाने की आवश्यकता है। शोधछात्रों को ऐसे ही विषय लेने चाहिए जिनका वास्तविक और स्थायी महत्व है।

एक-आध बात मुझे शोध निर्देशकों से भी कहनी है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमारे विश्वविद्यालयों में ऐसे कुछ समर्थ शोध-निर्देशक अवश्य हैं जिनके निर्देशन में बहुत अच्छा और ऊँचे स्तर का कार्य हो रहा है, किन्तु ऐसे निर्देशक भी हैं जो निर्देशन के कार्य से पूर्ण परिचित नहीं हैं। विद्यार्थी जो कार्य करता है उसकी दिशा, प्रवृत्ति, सीमा और स्तर में कोई संशोधन नहीं होता। मैंने अनेक शोध-प्रबन्ध ऐसे देखे हैं जिनके कच्चेपन को निर्देशक दूर नहीं कर सके। या तो उन्हें समय नहीं मिला कि वे शोधप्रबन्ध को देख सकें या उन्होंने उसमें संशोधन करने की आवश्यकता नहीं समझी। कहा नहीं जा सकता कि उन्होंने नियमित रूप से शोधछात्र का कार्य देखा भी या नहीं। समय समय पर उसकी कठिनाइयाँ सुलझा कर उसे शोध-प्रबन्ध की दिशा में आगे बढ़ने में सहायता पहुँचाई है या नहीं। ऐसा भी होता है कि विषय के अनुरूप निर्देशकों की नियुक्ति नहीं होती। सामान्य रूप से निर्देशक को तो शोधछात्र के विषय का विशेषज्ञ होना चाहिए और विशेषज्ञों के पास उनके विषय के छात्र ही आने चाहिए। किन्तु प्रायः होता यह है कि कोई भाषा विज्ञान का विशेषज्ञ है, उसे छात्र मिलता है साहित्य का और साहित्य विशेषज्ञ भाषा विज्ञान के किसी विषय का मार्ग-निर्देशन करता है। जब विश्वविद्यालय उपाधि प्रदान की अपेक्षा में तथ्यान्वेषण (Discovery of fact) विवेचन की नयी दृष्टि (fresh interpretation) समीक्षा और निर्णयात्मक क्षमता (critical examination and sound judgment) को आवश्यक समझता है तो विषय का विशिष्ट ज्ञान रखने वाला निर्देशक ही शोध की वास्तविक उपलब्धियाँ करा सकता है। अतः सुधी निर्देशक को अपने महान् दायित्व का अनुभव सदैव ही होना चाहिए।

इस सन्दर्भ में अनेक प्रसंग ऐसे हैं जिन पर विस्तार में चर्चा की जा सकती है, किन्तु समय के संकोच से मैंने कुछ विशिष्ट समस्याओं पर ही प्रकाश डालने की चेष्टा की है। विद्वान् अध्यापक स्वयं अपनी कठिनाइयों के परिप्रेक्ष्य में इस विषय पर विचार करेंगे।

डॉ० श्रीकृष्ण लाल

स्नातकोत्तर हिन्दी-शिक्षण में गद्य का स्थान

१—विषय का विस्तार

स्नातकोत्तर हिन्दी-शिक्षण में गद्य साहित्य का शिक्षण विशेष विस्तार की अपेक्षा रखता है। इसके अध्ययन के विशेष चार खण्ड हैं।

(क) भाषा वैविध्य—हिन्दी में अनेक बोलियों या विभाषाओं में गद्य की रचना समय-समय पर होती रही है। हिन्दी के विस्तृत भूखण्ड में पिछले छः सात सौ वर्षों से काव्य के अतिरिक्त गद्य में भी कुछ लिखा जाता रहा है जिनमें केवल कुछ ही कृतियाँ आज उपलब्ध हैं। इनमें सबसे प्राचीन और अपेक्षाकृत सबसे महत्वपूर्ण चौदहवीं शताब्दी की रचना ज्योतिरीश्वर ठाकुर का वर्ण-रत्नाकर है, जिसकी खण्डित प्रति सुसम्पादित होकर प्रकाशित हो चुकी है। प्रायः उसी काल की एक दूसरी कृति 'शिष्ट प्रमाण' का पता बहुत पहले ही चल गया था जो गोरखनाथ की शिष्य परम्परा में रचित सं० १४५७ की रचना है। इसकी भाषा ब्रज है, परन्तु साथ ही उसमें पूर्वी भाषा का भी मेल है। पहले यह गुरु गोरखनाथ की रचना कही जाती थी और इसी के आधार पर मिश्रबन्धुओं ने गोरखनाथ को हिन्दी का प्रथम गद्य-लेखक माना था, परन्तु आज यह निश्चित हो चुका है कि गोरखनाथ इस ग्रन्थ की रचना से बहुत पूर्व हो चुके हैं और यह रचना उनकी शिष्य परम्परा के किसी नाथ-सिद्ध की रचना है। कालक्रम से तीसरा उल्लेख अकबर के दरबारी भाट कवि गंग की खड़ी बोली में रचित 'चन्द छन्द बरनन की महिमा' का मिलता है, जिसे आज के आलोचक पर्याप्त परवर्ती रचना स्वीकार करने लगे हैं। फिर भी दक्खिनी हिन्दी के प्राचीन हस्तलेखों की प्राप्त खड़ी बोली गद्य की प्राचीनता को कोई ठेस नहीं लगी साथ ही पन्द्रहवीं शताब्दी से आज तक खड़ी बोली की गद्य परम्परा की टूटी हुई शृंखला भी प्रायः जुड़ सी गयी है।

मैथिली, ब्रज और खड़ी बोली गद्य के अतिरिक्त आधुनिक साधकों ने प्राचीन राजस्थानी के गद्य की पर्याप्त सामग्री ढूँढ़ निकाली है। प्राचीन ख्यातों और बातों के अतिरिक्त प्राचीन पट्टे, परवाने भी उपलब्ध हो रहे हैं। मैथिली, ब्रज, खड़ी बोली, राजस्थानी के अतिरिक्त अवधी, बघेली और बुन्देलखण्डी गद्य के नमूने भी प्राप्त कर लेने कुछ कठिन नहीं रह गए हैं। इस प्रकार हिन्दी गद्य में भाषा सम्बन्धी वैविध्य से उसकी प्राचीन असम्पन्नता की पर्याप्त क्षतिपूर्ति हो जाती है।

(ख) ऐतिहासिक अध्ययन—प्राचीन हिन्दी गद्य में भाषा की विविधता के साथ ही आधुनिक युग में हिन्दी गद्य में प्रायः सम्पूर्णतः खड़ी बोली का गद्य है। विविध उत्थानों में अनेक प्रभावों को ग्रहण करता हुआ विकसित हुआ है, जिसका इतिहास बहुत महत्वपूर्ण है। पाठ्य पुस्तकों के निर्माण के लिए माध्यम स्वरूप एक प्रतिष्ठित भाषा का स्वरूप पहले लल्लू जी लाल ने और बाद में राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द ने उपस्थित किया, जिसकी प्रतिक्रिया स्वरूप राजा

लक्ष्मणसिंह ने 'हिन्दी उर्दू दो न्यारी बोलियाँ हैं' के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए अपनी अलग विशिष्ट शैली का प्रवर्तन किया और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने १८७३ में हरिश्चन्दी हिन्दी का प्रारम्भ कर एक नये युग का संकेत दिया। हरिश्चन्द्री हिन्दी मुख्यतः एक तद्भव-प्रधान उच्चारण सम्मत भाषा थी। परन्तु भाषा प्रेमी अंग्रेज़ साहबों को उसमें भी कठिनता का अनुभव होता था और बहुत कुछ उन्हीं की प्रेरणा से अयोध्यासिंह उपाध्याय ने 'ठेठ हिन्दी' का प्रवर्तन किया। महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी ने ठेठ हिन्दी का विरोध कर 'सरल हिन्दी'के प्रचलन पर बल दिया और सरल हिन्दी के नमूने के स्वरूप 'रामकहानी' लिख डाली। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की तद्भव प्रधान उच्चारण सम्मत हिन्दी का विरोध किया, साथ ही ठेठ हिन्दी और सरल हिन्दी की अवज्ञा करते हुए तत्सम प्रधान व्याकरण सम्मत हिन्दी का प्रवर्तन किया, जिससे हिन्दी का समुचित सत्कार हुआ और वह भाषा प्रतिष्ठित और प्रवाहपूर्ण बनी। इस विकास की प्रक्रिया में हिन्दी हिन्दुस्तानी का विवाद और भाषा के विकेन्द्रीकरण के आन्दोलन से अनेक नयी प्रवृत्तियों का प्रचलन हुआ, जिसका इतिहास विद्यार्थियों को मान लेना परमावश्यक है।

(ग) शैलीगत अध्ययन—आधुनिक युग से पूर्व गद्य की स्थिति साहित्यशास्त्र की दृष्टि से नगण्य थी। हिन्दी के प्रथम नाटक 'आनन्द रघुनन्दन' में सम्वाद गद्य में हैं, परन्तु जहाँ शीर्षक 'गद्य' का दिया गया है वह वास्तव में 'अपादौवद सन्तानम्' गद्य-काव्य है, जिसमें केवल चरणों का अभाव है, अन्यथा अलंकरण और नाद संगीत में वह रसात्मक काव्य ही है। परन्तु आज का गद्य गद्यात्मक हो गया है जो नीरस तो नहीं कहा जा सकता, फिर भी उसे रसात्मक भी कहना कठिन है, जो नितान्त अरमणीय तो नहीं है, फिर भी उसे रमणीयता प्रतिपादक शब्द काव्य भी परिभाषा के अनुसार रमणीय भी नहीं कह सकते।

आज का गद्य अंगरेज़ी का 'प्रोज़' है जो 'प्रोजेक (गद्यात्मक) है, उसमें स्पष्टता है, सीधापन है, वक्रोक्ति के चमत्कार का अभाव है। बीसवीं शताब्दी की दूसरी तीसरी शताब्दी में गद्य-काव्य के स्थान पर तत्कालीन छायावादी प्रवृत्ति के अनुरूप गद्य गीतों का प्रवर्तन हुआ। इस प्रकार गद्य काव्य गद्य गीत और सामान्य गद्य की विविध शैलियों का प्रादुर्भाव आधुनिक युग में दिखायी पड़ता है, जिसका अध्ययन साहित्यिक शैली की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

(घ) आधुनिक गद्य की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि गद्य के विविध साहित्यिक रूपों का उद्भव और विकास है। आधुनिक युग आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में पत्रोद्गम काल है और इसकी अनेक विधाओं;—नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध, आलोचना तथा एकांकी का जो क्रमिक विकास हुआ है उससे आधुनिक साहित्य को विशिष्ट रूप से सम्पन्न बना दिया है।

प्रायः विश्वविद्यालयों के स्नातकोत्तर हिन्दी गद्य के पाठ्यक्रम में गद्य के विविध साहित्य रूपों के अध्ययन पर विशेष बल दिया जाता है। गद्य के भाषा-पक्ष को भाषाविज्ञान के प्रश्नपत्र में समाहित किया जा सकता है, ऐतिहासिक पक्ष को साहित्य के इतिहास के प्रश्नपत्र में विस्तार से समझाया जा सकता है। गद्य की विविध शैलियों का अध्ययन स्नातक स्तर पर पर्याप्त हो जाता है, ऐसा विश्वास किया जाता है, अस्तु, स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में गद्य के विविध रूपों को एक प्रश्नपत्र में समेटने का प्रयत्न प्रायः अधिकांश विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में देखा जा सकता

है। केवल हैदराबाद के समीपस्थ मराठवाड़ा, पूना और कोल्हापुर विश्वविद्यालयों के पाठ्य-क्रम में गद्य के दो प्रश्नपत्रों को स्थान प्राप्त हुआ है, जिसका कारण सम्भवतः दक्खिनी हिन्दी की पर्याप्त सामग्री का उद्घाटन है और इसीलिए आधुनिक हिन्दी गद्य के साथ एक प्रश्नपत्र प्राचीन गद्य साहित्य के अध्ययन के लिए अलग रख लिया गया है।

तीन घण्टे के एक प्रश्नपत्र के लिए हिन्दी गद्य के पाँच प्रधान विधियों के अध्यापन और परी-क्षण में अनेक असंगतियाँ दिखायी पड़ती हैं। १०० अंक के इस प्रश्नपत्र में प्रायः ३५-४० अंक के व्याख्यात्मक अंश और केवल ४ आलोचनात्मक प्रश्न होते हैं। पाँच विधाओं पर केवल ४ प्रश्न, प्रत्येक विधा के लिए एक प्रश्न का औसत भी नहीं पड़ता। आधुनिक युग में नाटक और उपन्यास विधा की जो शिल्प की दृष्टि से विकास हुआ है, उसके सम्बन्ध में परीक्षक केवल एक प्रश्न पूछ सकता है। अध्यापन के लिए कुछ कम असुविधा नहीं है। पाँच विधाओं में से १०-१२ पाठ्य-पुस्तकें पाठ्यक्रम निर्धारित की जा सकती हैं और नाटक तथा उपन्यास जैसी महत्वपूर्ण विधाओं के लिए प्रत्येक में दो या अधिक से अधिक तीन पुस्तकें पाठ्यक्रम में रखी जा सकती हैं, जिनके माध्यम से भारतेन्दुयुगीन, द्विवेदीयुगीन और छायावादोत्तर साहित्य का प्रतिनिधित्व कराने के लिए पृथक्-पृथक् पुस्तकों का निर्धारण असम्भव हो जाता है। प्रायः पाठ्यक्रम में प्रारम्भ से प्रेमचन्द-प्रसाद तक आते आते हम रुक जाते हैं, क्योंकि भारतेन्दु प्रेमचन्द और प्रसाद को छोड़ा नहीं जा सकता और उनकी पुस्तकों को पाठ्यक्रम में निर्धारित कर देने के बाद छायावादोत्तर लेखकों की पुस्तकों के लिए अवकाश नहीं रह पाता। यही स्थिति निबन्धों की है। एक प्रश्नपत्र में गद्य के सभी साहित्य रूपों के समावेश से हम किसी के प्रति भी न्याय नहीं कर पाते। अस्तु, न्याय का तकाज़ा है कि हम गद्य-साहित्य के लिए एक से अधिक प्रश्नपत्र की व्यवस्था करें।

सुझाव

(१) विश्वविद्यालयों में विद्या सभा (एकेडेमी कौंसिल) और कला संकाय के अनुशासन के कारण प्रश्नपत्रों की संख्या ८ या अधिक से अधिक ९ भी की जा सकती है। जिनमें आधे या आधे से अधिक प्रश्नपत्र प्रायः भाषा-विज्ञान, काव्य-शास्त्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, निबन्ध तथा बेसिक भाषाओं अथवा प्रान्तीय भाषाओं के अध्ययन के लिए निर्दिष्ट रहती हैं और केवल चार प्रश्नपत्र शुद्ध साहित्य के लिए आरक्षित हैं। इन चार प्रश्नपत्रों में गद्य का भाग केवल एक ही हो सकता है। गद्य को अधिक महत्व देने से काव्य-साहित्य की गरिमा को क्षति पहुँचने की सम्भावना है जिसे मैं किसी प्रकार सहन नहीं कर सकता। अस्तु, गद्य के लिए अवकाश प्राप्त करने का साधन अन्य शास्त्रीय विषयों के प्रश्नपत्र को कम करना ही हो सकता है। मेरा सुझाव है कि (१) निबन्ध के प्रश्नपत्र को एक सम्पूर्ण प्रश्नपत्र न रखकर आधा बना दें—केवल ५० अंकों का और शेष पचास अंक नाटक तथा रंगमंच के लिए सुरक्षित कर दें। नाटक यद्यपि आज गद्य की एक विधा मानी जाती है, परन्तु भारतीय परम्परा से वह एक स्वतन्त्र विधा है, वह दृश्य-काव्य के अन्तर्गत मानी गयी है, जिसका अपना एक स्वतन्त्र विधान है और जिसकी अभिव्यक्ति के साधन रूप रंगमंच की आवश्यकता अनिवार्य रूप से मानी जाती है। आधुनिक युग में भी यद्यपि वह

गद्य के अन्तर्गत परिगणित होती है, फिर भी वह कम्पोज़िट आर्ट होने के कारण गद्य से कुछ पृथक् भी है। अस्तु, यदि हम नाटक तथा रंगमंच को गद्य-साहित्य के प्रश्नपत्र से पृथक् कर निबन्ध के साथ रख दें, तो नाटक के साथ भी न्याय किया जा सकता है और गद्य-साहित्य के प्रश्नपत्र में उपन्यास और निबन्ध के विस्तृत अध्ययन और परीक्षण के लिए पर्याप्त अवकाश प्राप्त किया जा सकता है।

(२) अभी तक विशेष प्रश्नपत्र जो प्राय: किसी विशेष कवि के अध्ययन अथवा किसी युग विशेष की प्रवृत्तियों के निमित्त सुरक्षित रखा गया है और जिनमें कहीं-कहीं पाठालोचन और लोकसाहित्य के अध्ययन की भी व्यवस्था कर दी गयी है—गद्य लेखकों अथवा गद्य-विधाओं के विशेष अध्ययन की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। केवल कुछ ही विश्वविद्यालयों में किसी एक कवि-लेखक के विशेष अध्ययन में प्रेमचन्द जी को स्थान प्राप्त हुआ है और ऐसे ही आधे दर्जन से भी कम विश्वविद्यालयों में नाटक और रंगमंच अथवा उपन्यास साहित्य को विशेष अध्ययन का विषय बनाया गया है। मेरा सुझाव है कि विशेष प्रश्नपत्र में गद्य लेखकों को भी प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए और विशेष विषय के अध्ययन में नाटक और उपन्यास साहित्य को अधिक मान्यता प्राप्त होनी चाहिए।

(३) गद्य के प्रश्नपत्र में व्याख्या के लिए जो ३५ से ४० अंक निर्धारित रहते हैं, उन्हें कम करके १५ से २० तक सीमित कर देना चाहिए जिससे गद्य साहित्य की पाँचों विधाओं के लिए आलोचनात्मक प्रश्न पूछने का पर्याप्त अवकाश प्राप्त हो जायगा। यह ठीक है कि व्याख्या के अंक अन्य शुद्ध साहित्यिक प्रश्नपत्रों में ४० से कम नहीं होना चाहिए, यदि सम्भव हो तो उसे बढ़ा भी सकते हैं, परन्तु गद्य की कुछ विधाओं—जैसे उपन्यास, कहानी, एकांकी से व्याख्यात्मक प्रश्न पूछना परीक्षार्थियों को उलझाने के समान ही है, केवल निबन्ध और कभी-कभी नाटकों से ही व्याख्यात्मक अंश दिए जाने चाहिए, जिसके लिए २० अंक पर्याप्त हैं। इसे बढ़ा कर २५ अंक भी कर सकते हैं। शेष ७५-८० अंकों में ४ के स्थान पर ५ या अधिक आलोचनात्मक प्रश्न पूछे जा सकते हैं।

(४) पाठ्यक्रम रखते समय हमें गद्य साहित्य की निरन्तर बढ़ती हुई सम्पन्नता और अधुनातम प्रवृत्तियों का भी ध्यान रखना आवश्यक है।

काव्य में यह ठीक है कि हम परम्परावादी अथवा कंजरवेटिव हों, परन्तु गद्य के पाठ्यक्रम के विषय में कुछ अधिक उदारता और स्वच्छन्दता से काम लिया जा सकता है। अस्तु, नाटकों को पाठ्यक्रम में रखते हुए हम नवीनतम नाट्य-प्रवृत्तियों, अथवा उपन्यास की आंचलिकता और कहानी की नयी शिल्प-विधि को भी प्रतिनिधित्व दे सकें तो वर्तमान पीढ़ी के लेखकों और छात्रों को अधिक प्रोत्साहन प्राप्त होगा और नयी पीढ़ी को प्रेरणा मिलेगी।

उपर्युक्त सुझावों पर मेरा कोई आग्रह नहीं है। गद्य-साहित्य के निरन्तर बढ़ते गौरव और सम्पन्नता को ध्यान में रख कर मैंने स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में गद्य-साहित्य को कुछ अधिक प्रतिनिधित्व देने का सुझाव दिया है जो भविष्य की सम्भावनाओं को ध्यान में रख कर स्वीकार कर लेने चाहिए।

डॉ० रामसिंह तोमर

प्राचीन हिन्दी काव्य

प्रायः सभी विश्वविद्यालयों के एम० ए० के हिन्दी पाठ्यक्रमों में आदिकालीन हिन्दी काव्य के अध्यापन की व्यवस्था है जो उचित ही है। हिन्दी साहित्य के आदिकाल के सीमा निर्धारण के प्रश्न को यहाँ उठाना संगत नहीं होगा, मोटे तौर पर यह सीमा १००० वि० से १४०० वि० तक मानी जा सकती है। धर्म और राजनीति की दृष्टि में यह काल उत्तरी भारत के लिए बड़ा ही उथल-पुथल का युग रहा होगा। हिन्दी प्रदेश में इस समय के बीच की रची कोई भी कृति प्राप्त नहीं होती, जो कृतियाँ प्राप्त हुई हैं वे हिन्दी प्रदेश के सीमावर्ती प्रान्तों में प्राप्त हुई हैं। विद्वानों ने रचनाओं के न मिलने के अनेक कारण बताए हैं। जिन रचनाओं को इस काल की रचनाएँ मान कर पढ़ाया जाता है उनमें पृथ्वीराज रासो, बीसलदेव रासो, गोरखवाणी, नाथ सिद्धों की वाणियाँ, ढोला मारू रा दूहा हेमचन्द्र के दोहे, प्राकृत पैंगल का पद्य आदि हैं। रासो ग्रन्थों की प्रामाणिकता या नाथ सम्प्रदाय की रचनाओं की प्रमाणिकता के प्रश्न की भी चर्चा यहाँ अप्रासंगिक होगी, अपभ्रंश रचनाओं की प्रामाणिकता प्रायः निर्विवाद है। किन्तु आदिकालीन कृतियोंके साथ अपभ्रंश रचनाओं को पाठ्यक्रम में रखना उचित होगा या नहीं, इस विषय में भी विचार करना चाहिए।

जिन विश्वविद्यालयों में आदिकाल से सम्बन्धित कृतियाँ हैं उनमें से कुछ में आप्रामाणिक रचना मानते हुए भी पृथ्वीराज रासो का 'रेवातट समय' अवश्य रहता है, 'रेवातट समय' प्रामाणिक है या काव्य की दृष्टि से बहुत उत्कृष्ट है, इसलिए उसे पाठ्यक्रम में निर्धारित किया गया हो ऐसी बात नहीं प्रतीत होती। इसका कारण ऐतिहासिक है। कलकत्ता विश्वविद्यालय के लिए हिन्दी कविता का जो संकलन स्वर्गीय लाला सीताराम जी ने तैयार किया था उसमें 'रेवातट समय' को स्थान मिला था—वह पाठ्य पुस्तक सुलभ थी अतः 'रेवातट समय' पाठ्यक्रम में बहुत समय से चला आ रहा है—आगे चल कर उसे अलग से टीका, टिप्पणियों सहित अनेक विद्वानों ने प्रकाशित कराया। वास्तव में रेवातट समय काव्य की दृष्टि से पृथ्वीराज रासो के श्रेष्ठ अंशों में से नहीं है ऐसा कई विद्वान् कहते हैं। इधर रासो के जो प्रामाणिक संस्करण निकले हैं—डा० माताप्रसाद जी गुप्त का संस्करण और पंजाब के डा० शर्मा का—उनसे प्रतीत होता है कि 'रेवातट समय' प्रामाणिक भी नहीं है। मूल रासो की स्थिति जो भी हो, किन्तु हिन्दी साहित्य के इतिहास में रासो का महत्व ज्यों का त्यों बना हुआ है। मेरी समझ में पृथ्वीराज रासो 'कनवज्ज समय' का कुछ अंश हमें रखना चाहिए। रासो के इस अंश में पर्याप्त काव्यत्व है। पिछले दशक से विद्वानों ने अपभ्रंश की परिवर्तनकालीन रचनाओं को 'अवहट्ठ' नाम से पुकारना शुरू किया है। इसका व्यापार कीर्तिलता में विद्यापति द्वारा, प्राकृत पिंगल में

संग्रहीत अपभ्रंश पद्यकारों द्वारा और एकाध स्थान पर अन्यत्र 'अवहट्ठ' शब्द का प्रयोग है। 'अवहट्ठ' अपभ्रंश से अलग है ऐसा बहुसंख्यक विद्वान् नहीं मानते हैं। स्व० पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने इन्हीं रचनाओं को 'पुरानी हिन्दी' नाम देकर प्रकाशित किया था। इन्हीं तथा ऐसी ही रचनाओं को आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी 'अवहट्ठ' कहते हैं। हेमचन्द्राचार्य ने 'पुरानी हिन्दी' कृति में संकलित पद्यों को अपभ्रंश व्याकरण के लक्ष्य स्पष्ट करने के लिए उद्धृत किया है स्वयंभू और पुष्पदन्त की कृतियों से हेमचन्द्र ने उद्धरण नहीं दिए, यद्यपि अपभ्रंश के व्याकरण के नियमों का पालन इन महाकवियों की रचनाओं में बहुत कड़ाई से किया गया है, इसी कारण आचार्य द्विवेदी ने ऐसी अपभ्रंश कृतियों को 'परिनिष्ठित अपभ्रंश' कहा है। जो हो हेमचन्द्र ने ऐसे भेदों का उल्लेख नहीं किया, इतना अवश्य है कि हेमचन्द्र के पद्यों, बौद्धसिद्धों के गीतों और दोहों तथा कुछ अन्य ग्रन्थों में बिखरे हुए अपभ्रंश पद्यों की भाषा पुष्पदन्त, स्वयंभू की कृतियों की अपेक्षा हिन्दी या आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के अधिक निकट है।

प्रश्न यह है कि अपभ्रंश के साहित्य की इन दो वर्गों की रचनाओं में से किसी वर्ग की रचना या रचनाओं को हिन्दी के आदिकाल से सम्बन्धित प्रश्नपत्र के पाठ्यक्रम में स्थान मिलना चाहिए या नहीं? हिन्दी काव्य साहित्य के किसी आवश्यक पक्ष, धारा या काल को छोड़ कर संस्कृत, पालि, प्राकृत से सम्बन्धित प्रश्नपत्र हमें हिन्दी के पाठ्यक्रम में नहीं रखना चाहिए। यों तो सभी भारतीय साहित्य में अनेक समानताएँ हैं। भाषा और भावधारा दोनों ही दृष्टियों से, किन्तु ये प्राचीनतम भाषाएँ हिन्दी से बहुत दूर हो गयी हैं। परन्तु अपभ्रंश के सम्बन्ध में ऐसी बात नहीं कही जा सकती, विशेषकर के अवहट्ठ या पुरानी हिन्दी के नाम से सम्बन्धित रचनाएँ तो वास्तव में भाषा और भाव दोनों ही दृष्टियों से हिन्दी के बहुत समीप हैं।

बंगाल और उड़ीसा के विश्वविद्यालयों ने बंगाली और उड़िया भाषा और साहित्य के एम० ए० के लिए जो पाठ्यक्रम निर्धारित किए हैं, उनमें एक प्रश्नपत्र में अपभ्रंश, प्राकृत अंश के रक्खे हैं। एक पुस्तक डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी और डॉ० सुकुमार सेन ने संकलित की है जिसमें शिलालेखों की प्राकृत, जैन प्राकृत, साहित्यिक प्राकृत और अपभ्रंश के नमूने रक्खे गए हैं। सभी आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के पाठ्यक्रम में समानता रहे, इस दृष्टि से इसको विश्वभारती के हिन्दी एम० ए० के पाठ्यक्रम में भी हमने कुछ दिन तक रखा था, किन्तु पीछे हिन्दी पाठ समिति के सदस्यों ने उसे हटा दिया और उड़िया विभाग ने भी प्राकृत अंशों से मुक्ति पायी, किन्तु बौद्धचर्यापद और दोहा उड़िया के पाठ्यक्रम में भी हैं—बंगला के पाठ्यक्रम में भी और हम लोगों ने भी उसको निर्धारित किया है। आदिकाल के अन्य ग्रन्थों के साथ ही अपभ्रंश की कुछ कृतियों को स्थान देना उचित प्रतीत होता है। परिवर्तनकालीन या अवहट्ठ रचनाओं की भाषा मुझे पृथ्वीराज रासो की तुलना में अधिक सरल और व्यवस्थित प्रतीत होती है। छन्दों की दृष्टि से तो अपभ्रंश काव्यधारा हिन्दी की पूर्ववर्ती काव्यधारा है और भाषा के स्वाभाविक विकास को समझने के लिए तो उसका अध्ययन आवश्यक है ही। भले ही कुछ दिशाओं से यह आवाज़ सुनायी पड़े कि हिन्दी के नाम पर हमें ब्रज, अवधी, डिंगल, मैथिली, तो पढ़नी पड़ती है और क्या पढ़ायेंगे—मुझे लगता है भाषा और साहित्य का गम्भीर विद्यार्थी इससे कभी सहमत नहीं होगा। शौरसेनी के ही

ये विभिन्न रूपान्तर हैं। यह एक विषय की वैज्ञानिक और शास्त्रीय शिक्षा है और उसके लिए श्रम की और धैर्य की आवश्यकता है, अतः पुरानी हिन्दी के विकास को समझने के लिए हेमचन्द के दोहे, सिद्धों की वाणियाँ, सन्देशरासक के कुछ अंश या इसी प्रकार के कुछ अन्य अपभ्रंश नमूने हिन्दी भाषा और साहित्य के विद्यार्थी के लिए अनिवार्य होने चाहिए। हमारे नाथ और सन्त साहित्य की परम्परा को समझने के लिए भी सिद्धों की अपभ्रंश रचनाओं को पाठ्यक्रम में स्थान देना उचित होगा। सांकेतिक भाषा, जिसका कबीर की वाणियों तथा सन्त कवियों की वाणियों में प्रचुर प्रयोग हुआ है, उसकी पूर्व झलक सिद्धों की वाणियों में मिलती है। भाषा की दृष्टि से उनमें पूर्वी हिन्दी और पश्चिमी हिन्दी दोनों की विशेषताएँ मिलती हैं, इस दृष्टि से भी उसे पाठ्यक्रम में रखना ही चाहिए। 'अपभ्रंश और प्राचीन हिन्दी के ग्रन्थ' इस प्रश्नपत्र का शीर्षक मुझे संगत प्रतीत होता है। मैं इस प्रश्नपत्र में कुछ अंश सन्देशरासक, चर्यापद, और पृथ्वीराज रासो का 'घन-वज्ज समय' रखने के पक्ष में हूँ।

डॉ० बच्चन सिंह

आधुनिक काव्य और आलोचना

साहित्य के नैरन्तर्य से परिचित व्यक्तियों के लिए आधुनिक साहित्य का सबसे अधिक महत्व होता है, क्योंकि इसी बिन्दु पर खड़ा होकर वह अतीत और भविष्य का आकलन करता है। ऐसा करना इसलिए ज़रूरी है कि इससे कट कर उसके लिए अतीत और भविष्य बे-माने हो जाते हैं। आधुनिक साहित्य में काव्य गद्य की अपेक्षा संवेदना के सूक्ष्मतर तारों को पकड़ता है, इसलिए उसका विशेष महत्व है। यहाँ पर मेरा अभिप्राय गद्य की महत्ता को कम करना नहीं है। मैं तो केवल काव्य के अपने वैशिष्ट्य का उल्लेख कर रहा हूँ।

आधुनिक काव्य के साथ आलोचना को संलग्न करना कुछ लोगों के लिए आपत्तिजनक हो सकता है। प्रश्न किया जा सकता है कि क्या काव्यशास्त्र में आलोचना को अन्तर्भुक्त नहीं किया जा सकता? काव्यशास्त्र में आलोचना के सैद्धान्तिक पक्ष को तो उठाया जा सकता है उसके व्यावहारिक पक्ष को नहीं। आधुनिक काव्य के प्रादुर्भाव के साथ-साथ संस्कृत शास्त्र के सुनिश्चित मानों को गहरा धक्का लगा है। गद्य की स्थिति भिन्न है। उसकी आलोचना की परम्परा न तो लम्बी है न उतनी दृढ़ और सुनिर्दिष्ट। ऐसी स्थिति में गद्य के साथ आलोचना को उतनी सुगमता से सम्बद्ध नहीं किया जा सकता जितनी सुगमता के साथ आधुनिक काव्य के साथ किया जा सकता है।

आधुनिक काव्य का महत्व देखते हुए उसका एक प्रश्नपत्र अलग होना चाहिए। एक के स्थान पर दो प्रश्नपत्रों की भी व्यवस्था की जा सकती है। किन्तु विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम पर दृष्टि डालने पर यह दिखायी पड़ता है कि कुछेक विश्वविद्यालयों ने आधुनिक काव्य के साथ-साथ हिन्दी साहित्य के अन्य कालों अथवा विधाओं को रखा है। उदाहरणार्थ कुछ स्थानों पर एक ही प्रश्नपत्र में आधुनिक काल और रीतिकाल को रख दिया गया है। हिन्दी क्षेत्र के कुछ सीमान्त विश्वविद्यालयों में आधुनिक काव्य के साथ गद्य की कोई न कोई विधा रख दी गयी है।

आधुनिक काल के साथ रीतिकाल को रखना एक मनोवैज्ञानिक असंगति है। रीतिकाल को भक्तिकाल के साथ जोड़ने में दो बहुत असंगति नहीं दिखायी पड़ती। किन्तु आधुनिक काल के साथ रीतिकाल का रखा जाना विरोधी भावों और मूल्यों को एक साथ नत्थी कर देना है। आधुनिक काव्य के साथ गद्य का रखा जाना किसी भी प्रकार औचित्यपूर्ण नहीं माना जा सकता। ये दोनों साहित्य की दो विधाएँ हैं जिनको अलग-अलग रखना ही अधिक संगत है। आधुनिक काव्य और नाटक को एक ही प्रश्न में रखना भ्रान्तिपूर्ण है। आधुनिक काव्य के साथ किसी भी काव्येतर विधा का गठबन्धन अवांछनीय है। इसलिए केवल आधुनिक काव्य का ही एक प्रश्नपत्र रखा जाना चाहिए।

हिन्दी साहित्य की दृष्टि से भारतेन्दु को आधुनिक काल का प्रवर्तक माना जाता है। इसलिए आधुनिक काव्य का पाठ्यक्रम निर्धारित करते समय भारतेन्दु की कविताओं को भी

उसमें स्थान देना आवश्यक हो जाता है। सामान्यतः भारतेन्दु के साथ-साथ मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत', रत्नाकर के उद्धवशतक', प्रसाद की कामायनी, निराला की 'राम की शक्तिपूजा' और 'तुलसीदास', पंत और महादेवी के आधुनिक कवि आदि को पाठ्यक्रम में सन्निविष्ट किया गया है। आदि कहने का तात्पर्य यह है कि दिनकर के 'कुरुक्षेत्र' अथवा 'उर्वशी' को कुछ विश्वविद्यालयों ने स्नातकोत्तर परीक्षा के लिए निर्धारित किया है।

इस पाठ्यक्रम को देखते हुए यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि क्या उपर्युक्त कवि आज तक की विकसित सम्पूर्ण जीवन चेतना का प्रतिनिधित्व करते हैं? इसका उत्तर तो निषेधात्मक होगा। भारतेन्दु तथा रत्नाकर की कविताएँ तो स्पष्ट रूप से अपने रूप तथा कथ्य दोनों में मध्यकालीन हैं। विश्वविद्यालय प्रायः कान्जरवेटिव होते हैं। वे किसी भी नवीन मोड़ या धारा को अपनाने में संकोच का अनुभव करते हैं। इसलिए वे आधुनिक चेतना को ३८, ४० ई० तक ही सीमित कर देते हैं और इस तरह वे सन् चालीस के बाद की काव्य-सर्जना के आगे विराम चिन्ह लगा देते हैं। इसका फल यह होता है कि विद्यार्थी दो दशकों की प्रतिष्ठित साहित्य कृतियों तथा नवीनतम काव्य धाराओं से अपरिचित रह जाता है। इस हठधर्मी का फल आलोचना को भी भोगना पड़ता है।

जिस प्रकार आज नयी कविता को पाठ्यक्रम में स्थान नहीं दिया जाता है उसी प्रकार छायावादी काव्य को भी बहुत दिनों तक पाठ्यक्रम में नहीं रखा गया। इसके लिए उसकी काफी प्रतीक्षा करनी पड़ी। सर्वप्रथम काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने प्रसाद और पन्त को स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में रखा है। सम्भवतः निराला को भी उसी विश्वविद्यालय ने सर्वप्रथम पाठ्यक्रम में स्थान दिया। पर नयी कविता के लिए विश्वविद्यालयों के द्वार अभी भी बन्द हैं। जहाँ तक मुझे ज्ञात है, सागर विश्वविद्यालय ने इस दिशा में पहला कदम उठाया है।

यह पाठ्यक्रम अनेक महत्वपूर्ण आलोचनात्मक समस्याएँ प्रस्तुत करता है। भारतेन्दु के साहित्य के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि उनका आधुनिक संस्कार गद्य के माध्यम से अभिव्यक्त हो रहा है या तो मध्ययुगीन संस्कार कविता के माध्यम से। उस संक्रान्तिकालीन स्थिति में यही सम्भव था। रत्नाकर के लिए क्या कहा जायगा? उनके सम्बन्ध में जो प्रश्न पूछे जाते हैं वे प्रायः विभाव, अनुभाव, संचारी भावों के चतुर्दिक चक्कर लगाते हैं। वे आधुनिक काल के कवि हैं फिर भी आलोचक उनमें युगीन चेतना नहीं पाता। आलोचक के सामने एक और भी गहरा प्रश्न है। वे मध्ययुगीन ही सही पर क्या उनकी कृतियाँ ऐसी हैं जिनसे मध्ययुगीन परम्परा में कुछ जुड़ता है और उस परम्परा को नये अनुक्रम में बाँधने की आवश्यकता पड़ती है। कहने का तात्पर्य यह है कि आधुनिक काव्य के प्रश्नपत्र में रत्नाकर को रखना बहुत औचित्यपूण नहीं मालूम पड़ता। आधुनिक काव्य के अन्तर्गत उसी कवि को रखा जाना चाहिए जिसमें युगीन चेतना (स्पिरिट ऑव द एज़) मिलती है।

छायावादी कविता के पाठ्यक्रम में प्रविष्ट होने पर उसके संबंध में एकेडेमिक ढंग से विचार किया जाने लगा। यह सच है कि विश्वविद्यालयों के बाहर इस संबंध में नयी मान्यताएं पनप चुकी थीं। अब विश्वविद्यालयों में छायावादी कृतियों के कथ्य और शिल्प पर विस्तारपूर्वक विचार किया जाने लगा है। फिर भी, शिक्षणविधि में कुछ ऐसी खामियां आ गई हैं जो आलोचना

के मार्ग को अवरुद्ध करती हैं। उनकी ओर संकेत करना अप्रासंगिक नहीं है। प्रसाद की कामायनी के संबंध में जो प्रश्न पूछे जाते हैं वे मुख्यतः शैवागम दर्शन से संबद्ध होते हैं। कामायनी का अध्यापन भी दर्शन के पाश से मुक्त नहीं है। कामायनी का महाकाव्यत्व पूछे जाने पर विद्यार्थी उसे महाकाव्यत्व की पुरातन कसौटी पर एकदम खरा उतार देता है। डार्विन के विकासवाद को भी कामायनी में मजे से ढूंढ़ लिया जाता है। यदि खोजा नहीं जाता है तो कामायनी का काव्य-सौन्दर्य इसका मुख्य कारण है कि काव्य-सौंदर्य की कोई बनी-बनाई सरणि नहीं मिल पाती। अब पंतजी के संबंध में भी एक सरल रास्ता निकल गया है—अरविन्द दर्शन का अन्वेषण। तात्पर्य यह कि काव्येतर मानों को काव्य पर चस्पा किया जाता है। ये समस्त दर्शन काव्य में अन्तर्भुक्त हो सकते हैं पर होंगे वे काव्य-सौन्दर्य के उपकारक, स्वयं उपकार्य नहीं।

नई कविता तो अब तक प्रतिष्ठित अनेक काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों पर प्रश्न चिन्ह लगा देती है। छायावादी कविता को तो किसी प्रकार खींचतान कर रस सिद्धान्त की कसौटी पर कसा जा सकता है, किन्तु पुराने अर्थ में वह कसौटी व्यर्थ हो गयी है। जब नयी कविता पाठ्यक्रम में निर्धारित हो जायेगी वह प्राध्यापक आलोचकों को नये सिरे से सोचने के लिए बाध्य करेगी। इसके लिए रचना प्रक्रिया (क्रिएटिव प्रोसेस), प्रतिश्रुति (कमिटमेन्ट), प्रतीक, बिम्ब आदि की शरण लेनी पड़ेगी। इस सिलसिले में ध्वनि सिद्धान्त पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है। इसके फलस्वरूप नयी कविता पुनः परीक्षित होगी और आलोचना के नये मान प्रतिष्ठित होंगे।

आधुनिक काव्य की आलोचना अब नए पैमानों से ही नहीं करनी होगी बल्कि इसे उप-महाद्वीपीय संदर्भ में देखना भी बहुत ही आवश्यक है। आधुनिक काल में सारा देश राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक दृष्टि से एक सूत्र में रुंध चुका था। इस काल में हिन्दी काव्य के समानान्तर ही अन्य भाषा के काव्यों का विकास हुआ है। अतः आधुनिक हिन्दी काव्य को केन्द्र में मान कर इस देश के अन्य आधुनिक काव्यों के साथ इसकी तुलनात्मक विवेचना अधिक संगत होगी तथा देश की भावात्मक एकता की दिशा में भी यह महत्वपूर्ण योग देगी।

इस विवेचना के निम्नलिखित निष्कर्ष हैं—

१—आधुनिक काव्य के पाठ्यक्रम में वे ही ग्रंथ रखे जायं जो आधुनिक जीवन-चेतना की अभिव्यक्ति करते हों।

२—आधुनिक चेतना के स्थान पर जिनमें मध्ययुगीन चेतना हो वे आधुनिककाल में मध्यकालीन धारा के रूप में ही ग्रहण किये जायं। अथवा उन्हें इस प्रश्नपत्र में सम्मिलित न किया जाय।

३—नई कविता के दो प्रतिनिधि कवियों को इस प्रश्नपत्र में अवश्य संनिविष्ट किया जाय।

४—छायावादी कविता तथा नई कविता के संदर्भ में काव्यालोचन के मानों की पुनः परीक्षा की जाय। रचना-प्रक्रिया, प्रतिश्रुति, प्रतीक, बिंब आदि की व्याख्या उनके संदर्भ में अपेक्षित है।

५—पठन-पाठन के सिलसिले में आधुनिक हिन्दी काव्य को इस देश के हिन्दीतर आधुनिक की तुलना में—उपमहाद्वीपीय संदर्भ में—देखा जाय।

पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

मध्यकालीन काव्य (रीति साहित्य)

किसी विशेष प्रकार के अध्ययन के लिए उसके स्तर का ध्यान रखना अनिवार्य होता है। रामचरितमानस छोटी कक्षाओं से ले कर स्नातकोत्तर कक्षाओं तक पढ़ाया जाता है। सामान्यतया एक ही अंश नहीं पढ़ाया जाता, फिर भी यदि अंश एक ही प्रकार का हो तो स्तर-भेद से बहुत बड़ा अंतर हो जायगा। स्नातकोत्तर कक्षाओं के अध्ययन का तात्पर्य होता है कि कोई अध्येता उस विषय का विशेष ज्ञाता होने जा रहा है। विशेष ज्ञाता से तात्पर्य यही हो सकता है कि वह उसकी सूक्ष्मता को भी जानता है और आनुषंगिक विषयों का भी उसे पूर्ण बोध है। जहाँ तक मध्यकालीन काव्य के अध्ययन का प्रश्न है उसमें पाठ्यांश के विवेचन-विश्लेषण में अधिकाधिक जाने की आवश्यकता है। इस साहित्य के अध्ययन में संस्कृत की पद्धति को आधुनिक समय के अनुरूप विकसित कर के ग्रहण करना चाहिए। जो अंश पाठ्यक्रम में हों उनका तो ऐसा अध्ययन हो जाना चाहिए कि उनके संबंध में चर्चा उठने पर शिक्षार्थी किसी प्रकार के अभाव में अपने को न पाए। यदि किसी ग्रंथ का कुछ ही अंश पढ़ना हो तो भी उसकी सीमा पूरे ग्रंथ तक समझनी चाहिए। शिक्षार्थी को स्वतः शेष अंश पढ़ना चाहिए और जहाँ आवश्यकता हो गुरुजनों से उसके समझने में अतिरिक्त सहायता लेनी चाहिए। 'परीक्षा परीक्षा के लिए' सिद्धान्त को क्रमशः कम करना चाहिए। उसका लक्ष्य होना चाहिए विषय का परिपूर्ण बोध।

जहाँ तक अध्यापन का संबंध है समय की सीमा इतनी अल्प होती है कि उसके भीतर जो अंश निर्धारित रहते हैं उन्हीं को पूरा करना कठिन होता है। इसलिए अपेक्षा इस बात की है कि उन्हीं अंशों पर अधिक ध्यान दिया जाए जहाँ सूक्ष्म या व्यापक अध्ययन अपेक्षित है अथवा जहाँ पर किसी विवादमान प्रश्न की व्याख्या वांछित है। शेष अंशों का विस्तार परित्यक्त किया जा सकता है।

हिंदी साहित्य में रीति साहित्य ही शुद्ध साहित्य कहा जा सकता है। इसलिए इसके अध्ययन की परिपूर्णता इस बात से समझनी चाहिए कि किसी ने साहित्यशास्त्र का कितनी गहराई से अध्ययन किया है। यह नहीं कहा जा सकता कि शिक्षार्थियों को केवल स्थूल साहित्यशास्त्र का बोध करा दिया जाय। इसके अध्ययन-अध्यापन में दृष्टि स्वतंत्र चेतना जागरित करने की होनी चाहिए। अध्ययन की दृष्टि ऐसी हो कि हिंदी साहित्य के लिए फिर से साहित्यशास्त्र बनाने की आवश्यकता पड़े तो उसके संबंध में भी कुछ किया जा सके। इसमें संदेह नहीं कि हिंदी में जो साहित्यशास्त्र मध्यकाल में निर्मित हुआ वह अधिकतर संस्कृत का अनुवदन और अनुगमन ही है, फिर भी यह नहीं समझना चाहिए कि अपने युग के अनुरूप उस समय के निर्माताओं ने कोई अपेक्षित दृष्टि नहीं रखी थी। संस्कृत साहित्य शास्त्र में नाना प्रकार के जितने मत चले उन सभी

मतों का अनुवदन या अनुगमन नहीं किया गया। कुछ को छोड़ ही दिया गया। वक्रोक्ति, औचित्य और अनुमिति को ही नहीं, रीति को भी एक प्रकार से परित्यक्त कर दिया गया। बहुत थोड़े आचार्यों ने रीति के विवेचन में श्रम किया। इसका मुख्य कारण यह था कि अलंकार के भीतर अनुप्रास के अंतर्गत जिन वृतियों का विवेचन होता था उन्हीं में रीति की सारी प्रवृत्तियाँ आ जाती थीं। इस प्रकार रस, अलंकार और ध्वनि के तीन ही मत उन लोगों ने ग्रहण किए।

साहित्यशास्त्र में किसी मत विशेष के बोध के पूर्व इस बात की बहुत बड़ी आवश्यकता होती है कि काव्य की परंपरा का सब से पहले ज्ञान हो। यद्यपि आचार्य केशवदास उस काल में नहीं हुए जिसे रीतिकाल कहा जाता है तथापि वे रीतिसाहित्य के सर्वप्रथम और, कहना चाहें तो यह भी कह सकते हैं कि, एकमात्र आचार्य हैं जिन्होंने हिंदी साहित्य की परंपरा में व्यापक ज्ञान के लिए सर्वोत्तम प्रयास किया। उनकी कविप्रिया एक ऐसा ग्रंथ है जिसका अध्ययन मध्यकाल में निरंतर होता आया। इस ढंग की कुछ पुस्तकें आगे अवश्य लिखी गईं पर वे एक तो केशव के अनुगमन पर ही चलीं दूसरे उनमें नवीनता लाने का वैसा प्रयास नहीं किया गया। केशवदास की विशेषता यह है कि उन्होंने हिंदी में चलने वाली सारी परंपराओं को समेट कर 'कविप्रिया' में रखने का प्रयास किया। केशवदास की कविप्रिया न पढ़ने के कारण या उस पर उतनी दृष्टि न जाने के कारण वर्तमान युग में मध्यकालीन और विशेष रूप से रीतिसाहित्य की रूढ़ियों का विचार करते हुए कुछ आलोचकों को निरर्थक अत्यधिक श्रम करना पड़ा और निष्कर्ष रूप में उन लोगों को यह भी कहना पड़ा कि साहित्य में कुछ धारणाएँ ऐसी रहती हैं जो तथ्य के विपरीत हैं। वास्तविकता यह है कि साहित्य के अध्ययन और आलोचन में प्रवृत्त होने वाले को कवि-समय-सिद्धान्त को अवश्य जान लेना चाहिए। जो यह न जानता होगा कि कवि-समय के अनुसार सत्-निबंधन असत्-निबंधन और नियम-निबंधन, तीन प्रकार के 'निबंधन' होते हैं वह किसी धारणा को लेकर अच्छा श्रम करने पर तो ठीक निश्चय पर पहुँच जायगा, पर यदि श्रम ठीक न हुआ तो वह परंपरा के संबंध में ऊटपटाँग बातें भी निष्कर्ष रूप में निकाल सकता है। इसलिए रीतिसाहित्य के अध्ययन में केवल रस सिद्धान्त, अलंकार सिद्धान्त और ध्वनि सिद्धांत के विशेष अध्ययन के अतिरिक्त साहित्य की परंपराओं का अध्ययन भी आवश्यक है।

हिंदी में केवल संस्कृत की परंपराओं का ही ग्रहण नहीं हुआ कुछ ऐसी परंपराओं का भी ग्रहण हुआ है जो लोक की हैं अथवा अन्य साहित्य की हैं अथवा प्रदेश भेद से पाई जाने वाली हैं। केशवदास ने 'कविप्रिया' में इन सब का संग्रह करने का प्रयास किया। बारहमासा लोक साहित्य से आया हुआ है। शिखनख और उसका परिवर्तित रूप नखशिख फारसी परंपरा के आधार पर है। नग्नादि जिन दोषों की चर्चा उसमें की गई है, वे राजस्थानी परंपरा के हैं।

केशवदास ने अपने दूसरे ग्रंथ रसिकप्रिया में हिंदी की परंपरा के अनुरूप विवेचन करने का प्रयास किया है। रसिकप्रिया में नायक और नायिका के आलंबन के रूप में राधाकृष्ण की स्वीकृति है और गोपी कृष्ण के ग्रहण से एक विशेष प्रकार की परिस्थिति उत्पन्न हुई कि हिंदी में आगे चल कर यद्यपि नायक नायिका भेद के रूप में आचार्यों ने सामान्या का भी थोड़ा सा विवेचन

किया है पर इसके विस्तार में वे संलग्न नहीं हुए। यद्यपि केशवदास ने अपने ग्रंथों का निर्माण पातुरों के शिक्षण के लिए किया था तथापि सामान्या को उन्होंने छोड़ ही दिया।

रसिकप्रिया में केशवदास ने प्रकाश और प्रच्छन्न शृंगार का भी ग्रहण किया है यद्यपि हिंदी में आगे के आचार्यों में से कुछ ही ने इसका ग्रहण किया है। केशवदास ने संस्कृत के प्राचीन आचार्यों के आधार पर इसे ग्रहण करते हुए भी अपनी स्वतंत्र चेतना से भी काम लिया है। प्रकाश प्रच्छन्न पर विस्तृत विचार भी हिंदी में बिल्कुल नहीं हुआ। मनोवैज्ञानिक अध्ययन की व्याप्ति हो जाने पर भी उसका विवेचन-विश्लेषण करने का प्रयास नहीं हुआ। अंतरंग सखियों का लक्षण देते हुए केशवदास ने लिखा है कि अंतरंग सखी वह है जिसका आनंद-बोध प्रिय और प्रिया के समान हो। जिस प्रकार भावों के स्वस्थ और परस्थ रूपों के विस्तृत विवेचन में हिंदी के आधुनिक साहित्यशास्त्रीय आलोचक नहीं पड़े उसी प्रकार प्रकाश और प्रच्छन्न शृंगार के मनोवैज्ञानिक पक्ष का भी समुचित विवेचन अभी तक नहीं हुआ। इस प्रकार इस बात की बहुत बड़ी आवश्यकता है कि रीतिसाहित्य के अध्ययन में केवल परंपराओं की व्याप्ति तक ही अध्येता न रहे यथास्थान सूक्ष्मता में भी उतरे और उस युग के उन आचार्यों के प्रयास को भी देखे जिन्होंने अपने ढंग से चिंतन करने और दूसरों को उसे समझाने का यत्किंचित् प्रयास किया है।

अलंकारसिद्धांत के अध्ययन में केवल अलंकारों के लक्षण तथा उनके पारस्परिक भेद आदि को जान लेने की अपेक्षा, उसके व्यापक स्वरूप को जानने का प्रयास कम होता है। कविप्रिया में केशवदास ने अलंकार के भेद दो किए––सामान्य और विशेष। सामान्य के अंतर्गत उन्होंने वर्ण्य सामग्री का भी विवेचन किया। जो लोग उनकी आलोचना में प्रवृत्त हुए उन्होंने कह दिया कि केशव ने वर्ण्य को भी वर्णन शैली के साथ जोड़ कर अच्छा नहीं किया। पर वास्तविकता इसके विपरीत है। केशवदास ने अलंकार का अर्थ सौंदर्य लिया है। काव्य-निर्माण में जहां-जहां सौंदर्य लाने का प्रयास अपेक्षित है उस सब को उन्होंने अलंकार कहा किसी नगर का वर्णन करना हो, किसी उपवन का वर्णन करना हो तो उसमें किन किन वस्तुओं के वर्णन में सौंदर्य लाया जा सकता है, यही कविप्रिया में दिखाया गया है। कोई कर्त्ता अपने व्यक्तिगत निरीक्षण से जो उपलब्धि करेगा वह उसकी अपनी उपलब्धि होगी पर सामान्यतया किसी वर्ण्य को ग्रहण करने के अनंतर कल्पना की गति किन किन क्षेत्रों में प्रमुख रूप से अपेक्षित होती है इसकी सूची देकर उन्होंने हिंदी के स्रष्टाओं का बहुत बड़ा उपकार किया था। यहाँ यह भी ध्यान में रखने की बात है कि सारे संकेत उपलक्षण मात्र हैं अर्थात् यह नहीं समझना चाहिए कि किसी को अपनी कल्पना उतने ही अंशों में दौड़ानी चाहिए, अन्यत्र नहीं।

ध्वनिमत के अध्ययन में भी हिंदी के प्राचीन आचार्यों ने कुछ नवीनता लाने का प्रयास किया है और उसके अध्ययन में प्रवृत्त न होने से कुछ ऐसी उलझनें रह जाती हैं जैसी देव कवि के अध्ययन के विषय में दिखाई देती है। अभिधा में अभिधा लक्षणा में लक्षणा, व्यंजना में व्यंजना, लक्षणा में अभिधा आदि बखेड़ों को न समझने के कारण विभिन्न प्रकार की धारणाएं बन गई हैं और गड्डलिकाप्रवाह में चलती चल रही हैं। यह अवश्य कहा जा सकता है कि भाषा विषयक विवेचन को शब्दशक्ति के साथ विस्तृत रूप में अपेक्षित था, इस युग के आचार्यों ने नहीं किया। पर उस

युग के बहुत से ग्रंथों के प्रकाशित न होने से और बहुत सी टीकाओं में विवेचित भाषा संबंधी कुछ पारंपरिक निश्चयों तक न पहुंच सकने के कारण उन आचार्यों के भाषा विषयक प्रयास का ठीक बोध हम लोगों को अभी तक नहीं हुआ। ग्वाल कवि के ग्रंथ में भाषा विषयक पारंपरिक मान्यता का विस्तार से विचार है और भाषा विषयक दोष के लिए हिंदी के प्राचीन समर्थ कवियों के ही अधिक उदाहरण संकलित किए गए हैं।

पाठ्य अंश के विवेचन और प्रयुक्त शब्दों के ठीक अर्थ देने की भी समस्या विकट है रीतिसाहित्य की ओर क्रमशः लोगों की प्रवृत्ति कम होती जाती है। एक तो उसकी इतनी अधिक निन्दा हुई कि बहुत से लोग उसे पढ़ना ही नहीं चाहते। दूसरे उसके अर्थ और समुचित व्याख्या की ओर अध्यापन में दत्तचित्तता न होने से भी कुछ कठिनाई उत्पन्न हुई। अध्ययन-अध्यापन की परंपरा जब तक कार्य निर्वाह वाली होगी कर्त्तव्यनिष्ठा वाली नहीं, तब तक कठिनाई दूर नहीं हो सकती। इसमें संदेह नहीं कि रीतिसाहित्य के व्यापक अध्ययन के लिए सारा प्रयास उन्हीं विश्वविद्यालयों के माध्यम से होता है जो हिंदी क्षेत्र के हैं। मध्यकालीन काव्य में से संत, सूफी काव्य और राम कृष्ण काव्य का जितना शोध के स्तर पर विश्लेषण हुआ रीतिसाहित्य का अपेक्षाकृत बहुत कम। यह कैसी विपरीत स्थिति है कि हमारे आलोचकों और अध्यापकों के आलोचन और अध्यापन से शुद्ध साहित्य की रचना अपेक्षाकृत उनसे अधिक उपेक्षित है जिनमें साहित्य के अतिरिक्त अन्य वाङमयों का संश्लेष है। इस प्रवृत्ति के परिवर्तन की बहुत बड़ी आवश्यकता है। कुछ विश्वविद्यालयों को इसकी समुचित व्यवस्था करने का भार अपने ऊपर लेना चाहिए।

डॉ० हरवंश लाल शर्मा

हिन्दी की स्नातकोत्तर कक्षाओं के पाठ्यक्रम की कुछ समस्याएं

हिन्दी का सगुण-भक्ति-साहित्य

हिन्दी का भक्तिकालीन साहित्य परिमाण और गुण की दृष्टि से अन्य कालों के साहित्य से विशाल और उत्कृष्ट है। सम्भवतः इसीलिए इस काल को स्वर्णकाल कहा गया है। यह कथन विवादास्पद हो सकता है परन्तु इस तथ्य में संदेह की गुंजाइश नहीं है कि भक्ति-काल का साहित्य सम्पूर्ण देश की रागात्मक और सांस्कृतिक एकता का साहित्य है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार इस साहित्य का समय लगभग ३०० वर्ष का है अर्थात् सं० १३७५ वि० से सं० १७००-वि० तक। इस काल की आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य की मूलभूत भावना लगभग एक और समान है। यह भावना उस समन्वयात्मक रूप को प्रस्तुत करती हुई दृष्टिगोचर होती है जिसके पीछे सहस्राब्दियों की परम्पराएं निहित हैं। अंतः और वाह्य साधनाओं का जैसा सुन्दर सामंजस्य इस काल के साहित्य में हुआ वैसा पहले कभी प्रस्तुत नहीं हो सका था। वास्तव में भारतीय साहित्य का यह अद्भुत युग था। साहित्य, धर्म और नीति की तीन धाराओं का वह प्रयागराज कहा जा सकता है। विभिन्न युगों के अभेद्य स्तरों के बीच से मन्द-मन्द किन्तु अव्याहत गति से बहती हुई, अनेक दिशाओं से उलटी-सीधी बह कर आने वाली दिव्य विचार-धाराओं को आत्मसात् करती हुई, भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों की सिद्धान्त-सार-सुधा से प्राणियों के अन्तःकरण को तृप्त करने वाली भारतीय साधना की त्रिवेणी ने साहित्य सागर को इतना लबालब भर दिया था कि आज भी उसकी तरल तरंगों में मज्जन और अवगाहन करने से चिर शान्ति प्राप्त होती है।

भारतवर्ष के जिन विश्वविद्यालयों में हिन्दी में स्नातकोत्तर कक्षाएं हैं, प्रायः सभी में भक्तिकालीन साहित्य को स्थान प्राप्त है। पाठ्यक्रम में सम्पूर्ण भक्तिकालीन साहित्य प्रायः दो भागों में विभक्त है—१—निर्गुण भक्ति साहित्य, २—सगुण भक्ति साहित्य। सगुण भक्ति साहित्य का समावेश तो प्रायः भक्ति-काल के ही अन्तर्गत है जब कि निर्गुण भक्ति काल का साहित्य प्राचीन काव्य के नाम से आदिकालीन साहित्य के साथ रखा गया है। सामान्य रूप से भक्ति काल के प्रतिनिधि कवियों को ही पाठ्यक्रम में स्थान मिला है—जैसे ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि कबीर, प्रेमाश्रयी के मलिक मुहम्मद जायसी, कृष्णाश्रयी के सूरदास तथा रामाश्रयी के गोस्वामी तुलसीदास। हिन्दी साहित्य के इतिहास का प्रश्नपत्र भी प्रायः सभी विश्वविद्यालयों में है। इस प्रश्नपत्र में भी भक्तिकालीन साहित्य का कुछ अध्ययन हो जाता है। सामान्य रूप से स्नातकोत्तर कक्षाओं में आठ प्रश्नपत्र हैं तथा सं० १९०० तक के साहित्य को अधिकतर विश्वविद्यालयों में दो ही प्रश्नपत्र दिए गए हैं जिनके नाम कुछ थोड़े हेर फेर से प्राचीन काव्य तथा मध्ययुगीन काव्य हैं। मध्ययुगीन काव्य में ही रीतिकालीन साहित्य भी सम्मिलित किया गया है। दो तीन

विश्वविद्यालयों में प्रश्नपत्रों का विभाजन कालक्रम से हुआ है तथा इस युग के साहित्य को तीन प्रश्नपत्र दिए गए हैं अर्थात् आदिकाल, भक्तिकाल और रीतिकाल । किसी विश्वविद्यालय में रीतिकालीन साहित्य पर विशेष बल है तो किसी में सगुण भक्ति साहित्य पर। इन सभी विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम का अध्ययन करने से हम निम्न निष्कर्ष पर पहुंचते हैं—

१—स्तर की दृष्टि से विभिन्न विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में चाहे विशेष अन्तर न भी हो, साहित्य के प्रतिनिधित्व की दृष्टि से महान् अन्तर है।

२—भक्तिकालीन साहित्य का आदिकालीन साहित्य में समावेश करने से अध्ययन की शृंखला में अवश्य बाधा पहुंचती है।

३—भक्तिकालीन साहित्य के अध्ययन की बहुत सी समस्याएं विद्यार्थियों को स्पष्ट नहीं हो पातीं विशेषकर सामाजिक और सांस्कृतिक।

४—भक्तिकालीन साहित्य का अध्ययन उस मूलभूत भावना के सन्दर्भ में नहीं हो पाता जो सभी भारतीय भाषाओं के मध्ययुगीन साहित्य का प्राण है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कबीर, नानक आदि सन्तों तथा कुतुबन, मंझन और जायसी आदि सूफियों के साहित्य को भक्ति साहित्य के अन्तर्गत ही माना है और उसे निर्गुण भक्ति साहित्य के नाम से अभिहित किया है। निर्गुण और सगुण कोटि के भक्तों के दृष्टिकोणों तथा विचारों में महान् अन्तर है। साहित्य के विद्यार्थी के लिए यह निर्णय करना कठिन है कि दोनों प्रकार के भक्तों में कितना साम्य तथा वैषम्य है। निर्गुण भक्तों की प्रवृत्ति अधिकांश में खण्डनात्मक है जबकि सगुण भक्तों की मंडनात्मक। इस समस्या के समाधान के लिए जिज्ञासु को मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर विचार करना होगा तथा उस ऐतिहासिक आन्दोलन की विभिन्न धाराओं को समझना होगा जिसे भक्ति आन्दोलन कहा गया है। भारतीय संस्कृति के विपुल प्रवाह में योग देने वाली मुस्लिम संस्कृति के प्रभाव को भी दृष्टि से ओझल नहीं किया जा सकता। इस सम्बन्ध में विद्वानों के दृष्टिकोण बड़े अपूर्ण और एकांगी रहे हैं। कुछ विद्वानों ने तो सम्पूर्ण मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलन को मुस्लिम शासन की प्रतिक्रिया ही कह दिया है, जब कि कुछ विद्वान् वैष्णवों की प्रेम लक्षणा भक्ति का मूल मुस्लिम संस्कृति और सूफी मत में ही ढूंढ़ने का प्रयास करते हैं। ये दोनों ही दृष्टिकोण अतिवाद का स्पर्श करने वाले हैं। मैं यहाँ इस प्रश्न को गहराई तक नहीं जाना चाहता परन्तु इतना अवश्य संकेत करना चाहता हूँ कि हिन्दी के भक्ति साहित्य के अध्ययन के लिए अनेक ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और धार्मिक परम्पराओं का अध्ययन अपेक्षित है। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि इस काल में भक्ति की परम्परा में समयानुरूप नियोजन उस युग की प्रेरणा से हुआ था। जब विविध संस्कृतियों का घात प्रतिघात होता है तो यह स्वाभाविक ही है कि दोनों में एक दूसरी की प्रवृत्तियाँ थोड़े बहुत रूप में मिश्रित हो जाएं।

हिन्दी के भक्ति साहित्य का अध्ययन अध्यापन करते समय एक इस बात पर बल दिया जाता है कि "भक्ति द्राविड़ ऊपजी लाए रामानन्द" जिसका अभिप्राय है कि भक्ति की उत्पत्ति द्रविड़ देश में हुई और उत्तरी भारत में उसे लाने का श्रेय स्वामी रामानन्द जी को है। यह कथन भी उसी प्रकार तथ्य तथा अनुसंधित्सा की अवहेलना करने वाला है जिस प्रकार भक्ति को विदेशी

देन बताने वाला मत है। यह कहा जा सकता है कि भक्ति भावना में अतिराग या प्रेमातिरेक का समावेश द्रविड़ देश के सम्पर्क से हुआ परन्तु इसकी मूल परम्परा तो वैदिक काल से ही चली आ रही थी। संग्रह और आत्मसात् की प्रवृत्ति आर्य संस्कृति का मूल तत्त्व रहा है इसलिए हम यह कह सकते हैं कि सगुण भक्ति का मध्ययुगीन रूप भारतीय, अभारतीय तथा आर्य और अनार्य की विचार धाराओं का सुन्दर सुघड़ सामंजस्य प्रस्तुत करने वाला है। इस सगुण भक्ति में पौराणिक समन्वय साधना का बड़ा भारी योग रहा है। कुछ दृष्टियों से तो हिन्दी का मध्ययुगीन साहित्य भारत के इतिहास का सब से महत्वपूर्ण अंश है। रीतिकाल और आधुनिक काल का साहित्य स्वरूप की दृष्टि से चाहे जितना वैविध्यपूर्ण हो उसकी चेतना में वे चिरन्तन और शाश्वत तत्त्व नहीं है जो भक्तिकालीन साहित्य में है। सम्पूर्ण परवर्ती साहित्य में उन प्रेरक तत्वों की छाया मिलती है। भक्ति साहित्य की सम्पूर्ण प्रेरणाओं का सर्वांगीण व सामूहिक आकलन अभी तक नहीं हो पाया है। सगुण भक्ति की व्यापक वृत्ति के अन्तर्गत कुछ ऐसी भी विशेषताएं हैं जो धर्म, दर्शन, समाज, साहित्य और कलाओं में समान रूप से व्यक्त हुई हैं।

मध्ययुगीन सगुण भक्त के दो आराध्य रहे हैं राम और कृष्ण। किसी रूप में शिव को भी आराध्यदेव का दर्जा मिला है। इन तीनों ही देवताओं का विकास हमें आगमों में मिलता है। ११वीं शती के आस पास सभी धर्म साधनाओं का नेतृत्व आगम ही कर रहे थे और पंचदेव हिन्दू धर्म साधना के अवलम्ब बन चुके थे। शैव मत में राम के और शाक्त मत में राधा कृष्ण के प्रतीकों को अपना लिया था। परम शिव यदि राम बने तो त्रिपुरा सुन्दरी कृष्ण। यहां तक कि बौद्ध और जैन धर्म की परम्पराएं भी कुछ इसी प्रकार के सामंजस्य की ओर उन्मुख हो चुकी थीं। एक प्रकार से नियम और आगम का समन्वय ही भक्ति आन्दोलन का मूल कार्य था। बौद्ध, जैन तथा मुसलमानों के सम्पर्क से इस आन्दोलन में नवीन सामाजिक दर्शन की प्रतिष्ठा हुई। इस प्रकार उत्तरापथ में भक्ति की धारा प्राचीन काल से ही बह रही थी। दक्षिण के आचार्यों ने इस धारा को एक निश्चित मोड़ दे दिया।

भक्ति साहित्य के विद्यार्थी के सामने एक और समस्या साहित्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की भी रहती है। यह एक निर्विवाद तथ्य है कि अन्य कला कृतियों की भांति साहित्य की सर्जना भी किसी सामाजिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में होती है। आज तक जो हिन्दी के इतिहास लिखे गए हैं उनमें इस पक्ष को बहुत कम महत्व मिल पाया है। आज जब सारा देश राजनीतिक दृष्टि से एक एकाई बन गया है, इस पक्ष को हमें अपनी दृष्टि से ओझल नहीं करना चाहिए। सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के साथ ही धार्मिक और दार्शनिक पृष्ठभूमि भी सम्बद्ध है। हमारे स्नातकोत्तर कक्षाओं के विद्यार्थी कुछ साम्प्रदायिक आचार्यों के नाम परिगणन मात्र से ही संतोष कर लेते हैं। काव्य के रस का सम्बन्ध धार्मिक और दार्शनिक मान्यताओं से ही है। संस्कृत के काव्य शास्त्रियों ने भक्ति को केवल भाव की कोटि तक रखा। मध्ययुगीन साहित्य में उसे पहली बार रस की कोटि तक पहुंचा कर उसे अपने में पूर्ण और साध्य सिद्ध किया। वास्तव में काव्यरस अनुभव सिद्ध पदार्थ है जिसकी ब्रह्मानंद सहोदर के रूप में कल्पना की गई है। आनन्द भोग का ही एक रूप है और मीमांसादर्शन में तो भोग का महत्व सर्वोपरि है। भट्ट नायक ने सांख्य दर्शन

के अनुसार 'मुक्तिवाद' की कल्पना की, यद्यपि कुछ विद्वानों ने उन्हें मीमांसक ही माना है, क्योंकि भावना और योग तत्व मीमांसा शास्त्र के ही हैं। अद्वैत वेदान्त में आनन्द को परब्रह्म परमेश्वर का स्वरूपभूत लक्षण माना गया है जिसकी उपलब्धि अज्ञान की निवृत्ति पर होती है। सांख्य दर्शन में आनन्द प्रकृति के सत्वगुण का परिणाम है। दार्शनिकों के इसी आनन्दवाद ने साहित्य में रसवाद की संज्ञा प्राप्त की। शैव वैशेषिकों का रस-दर्शन कुछ नैयायिकों के अनुमितिवाद से मिलता जुलता है। शैव, जगत् को शिव शक्ति का विलास मानते हैं। भक्ति-भाव को रस की कोटि में ले जाने का महत्वपूर्ण कार्य इसी शैव-दर्शन ने किया। शैव दर्शन के अनुसार जगत् में कर्म और ज्ञान की अपेक्षा भक्ति ही अधिक महत्वपूर्ण है। हिन्दी के भक्ति साहित्य में निगम और आगम की रस परम्पराओं का समन्वित रूप प्रस्तुत हुआ है। ये परम्पराएं हमें भक्ति की तीन धाराओं में (मर्यादावादी, शास्त्रवादी तथा रसवादी) मिल जाती हैं। भक्ति रस का कुछ परिचय हमें श्रीधर स्वामी की भागवत-भावार्थ दीपिका में मिलता है परन्तु उसका विशद विवेचन सब से पहले बोपदेव (१३वीं शताब्दी) ने मुक्ताफल में किया। आचार्य मधुसूदन सरस्वती ने रस के दो प्रकार स्वीकार किए—भक्ति शास्त्रीय रस और साहित्य शास्त्रीय रस। आगे चल कर गौड़ीय आचार्यों ने बड़े व्यवस्थित ढंग से भक्ति शास्त्रीय रस की व्याख्या प्रस्तुत कर उसे साहित्य शास्त्रीय रस की कोटि में रख दिया।

भक्ति साहित्य के पाठ्यक्रम में एक और खटकने वाली बात यह है कि कृष्ण भक्ति के वल्लभ सम्प्रदाय को छोड़ कर और किसी सम्प्रदाय के कवियों को उसमें उचित स्थान नहीं मिल पाया है। वल्लभ सम्प्रदाय के समकालीन अनेक ऐसे सम्प्रदाय हैं जिनके भावुक भक्तों ने अपनी अनुपम रचनाओं से हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि में योगदान किया है। निम्बार्क, चैतन्य राधा वल्लभीय तथा हरिदासी सम्प्रदाय का विपुल हिन्दी साहित्य आज उपलब्ध है। इसी प्रकार राम भक्ति शाखा की एक दीर्घ परम्परा है। इस ओर विद्वानों को ध्यान देना चाहिए। साम्प्रदायिक साहित्य के अतिरिक्त इस युग में सम्प्रदाय-निरपेक्ष साहित्य भी पर्याप्त मात्रा में लिखा गया।

इस युग के साहित्य की एक समस्या पाठानुसंधान की भी है। विद्वानों का अब इस ओर ध्यान जाने लगा है तथा महत्वपूर्ण ग्रंथों का संपादन भी हो रहा है। जब तक सम्पादक भाषा की प्रकृति से परिचित नहीं होगा वह किसी ग्रन्थ का ठीक सम्पादन नहीं कर सकता। शुद्ध पाठ के साथ ही अर्थ की भी समस्या है। मैंने ब्रज भाषा के कई ऐसे ग्रंथों को देखा है जिनमें पाठ की अशुद्धि के कारण कई स्थलों पर अर्थ का अनर्थ हो गया है। भक्ति साहित्य के महत्वपूर्ण ग्रन्थों की शब्दानुक्रमणी, कथा-कोश तथा शब्द कोश भी नहीं हैं। स्नातकोत्तर कक्षाओं के छात्रों के लिए यह सब सामग्री उपलब्ध होनी चाहिए।

मैंने संक्षेप में सगुण भक्ति साहित्य की कुछ समस्याएं आपके सम्मुख प्रस्तुत की हैं। मुझे आशा है कि हिन्दी के विद्वान् इन समस्याओं पर गम्भीरता से विचार करेंगे तथा उनके हल के लिए प्रयत्नपर होंगे। जब तक हिन्दी के भक्ति साहित्य को ही स्पष्ट परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास नहीं होता हम अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य से लाभान्वित नहीं हो सकते।

डॉ० उदयनारायण तिवारी

स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में भाषा विज्ञान का स्थान

आज मुझे आप लोगों के समक्ष स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में भाषा विज्ञान के स्थान के सम्बन्ध में कुछ निवेदन करना है। अन्य विषयों की अपेक्षा, विश्वविद्यालय के स्नातक तथा स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में, हिन्दी को बहुत बाद में स्थान मिला। किन्तु यह अत्यन्त प्रसन्नता की बात है कि आरम्भ से ही, एक प्रश्नपत्र के रूप में, भाषाविज्ञान को, सभी विश्वविद्यालयों ने स्वीकृत किया। कलकत्ता तथा हिन्दू, इन दो विश्वविद्यालयों के पश्चात्, प्रयाग विश्वविद्यालय वह तीसरा स्थान था जहाँ छात्रों एवं छात्राओं को स्नातक तथा स्नातकोत्तर कक्षाओं में भाषाविज्ञान के पठन-पाठन का सुअवसर मिला, इन तीनों विश्वविद्यालयों तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन के उत्तमा तथा मध्यमा के पाठ्यक्रम के आधार पर ही, वास्तव में, बाद के विश्वविद्यालयों के, हिन्दी की स्नातक एवं स्नातकोत्तर परीक्षाओं के पाठ्यक्रम निर्मित हुए।

अब दो शब्द हिन्दी पाठ्यक्रम में भाषाविज्ञान की सार्थकता एवं उसके महत्व के सम्बन्ध में भी निवेदन करने हैं। सच तो यह है कि आज के युग में भाषाविज्ञान एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय बन गया है। प्रायः लोग यह समझते हैं कि केवल प्राचीन एवं आधुनिक भाषाओं के अध्येताओं के लिए ही भाषाविज्ञान का ज्ञान आवश्यक है, किन्तु वास्तव में बात ऐसी नहीं है। आज तो सम्प्रेषण अभियंता (Communication Engineer यंत्र-अनुवादक) (Machine Translator) भाषा-शिक्षक, साहित्य तथा समाजशास्त्री से ही नहीं, अपितु भौतिक विज्ञान, रसायन शास्त्र एवं गणितशास्त्र के विद्वानों तक से भाषाविज्ञान के ज्ञान की अपेक्षा की जा रही है। बात यह है कि भाषा एक ऐसा साधन है जिसकी आवश्यकता सभी को है। ऐसी स्थिति में इसके वैज्ञानिक स्वरूप का ज्ञान समाजशास्त्र तथा विज्ञान के क्षेत्र में कार्य करने वाले, सभी लोगों के लिए हितकर एवं आवश्यक है। यही कारण है कि अमेरिका के विश्वविद्यालय यों में प्रौद्योगिकी (Technology) के छात्रों एवं छात्राओं को भी सामान्य रूप में, भाषा विज्ञान का अध्ययन करना पड़ता है। तब स्नातकोत्तर हिन्दी के अध्येताओं के लिए भाषाविज्ञान के अध्ययन की कितनी अधिक आवश्यकता है, इस सम्बन्ध में मुझे विभिन्न विश्वविद्यालयों के प्राध्यापकों से अधिक निवेदन करने की आवश्यकता नहीं है।

एक दूसरी दृष्टि से भी हमारे देश के स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में भाषाविज्ञान को स्थान देने की आवश्यकता है। हमारा देश विशाल है। इसमें आर्यपरिवार के अतिरिक्त द्रविड़, आस्ट्रिक, एवं तिब्बती-बर्मी परिवार की भाषाएँ एवं बोलियाँ भी प्रचलित हैं। इनमें से चौदह भाषाओं को हमारे संविधान में विशिष्ट स्थान मिला है। इसके साथ ही अन्तर्प्रान्तीय कार्यकलाप के लिए हिन्दी भाषा एवं देवनागरी लिपि को स्वीकार किया गया है। सम्पूर्ण देश की एकता के

लिए यह आवश्यक है कि क्षेत्रीय भाषाओं में परस्पर सौहार्द्र हो तथा ये सभी एक दूसरे एवं अन्तर्प्रान्तीय भाषा हिन्दी के निकट आवें। इसके लिए प्रथम आवश्यकता इस बात की है कि उच्चारण एवं व्याकरण की दृष्टि से हम हिन्दी का परिनिष्ठित रूप निर्धारित करें तथा अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में समान रूप से प्रचलित शब्दावली को ग्रहण करके उनका हिन्दी के साथ नैकट्य स्थापित करें। भाषाविज्ञान के अध्ययन से इस कार्य में सहायता मिलेगी। इसके अतिरिक्त नूतन भाषाओं के अध्ययन के लिए भाषाविज्ञान ने जो अभिनव प्रणाली का अनुसन्धान किया है, उसका उपयोग कर के हम सहज में ही एक क्षेत्र के लोगों को दूसरे क्षेत्र की भाषा सिखा सकते हैं। अब हमें स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में एक प्रश्नपत्र के रूप में भाषाविज्ञान के पाठ्यविषय (Syllabus) के सम्बन्ध में भी विचार करना है। यहां यह बात उल्लेखनीय है कि द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् यूरप तथा अमेरिका में भाषाविज्ञान के अध्ययन-अध्यापन की प्रणाली बहुत कुछ बदल गई है। अब यहाँ जीवित भाषाओं एवं बोलियों के अध्ययन पर अधिक बल दिया जाने लगा है। इसी कारण यहाँ 'भाषाविज्ञान' (Philology) तथा 'भाषाशास्त्र' (Linguistics) दो पृथक विषय बन गये हैं। अमेरिका में 'फिलालॉजी' शब्द का व्यवहार प्राचीन भाषा तथा साहित्य एवं शिलालेखों की भाषा के अध्ययन के सन्दर्भ में किया जाता है। दूसरे शब्दों में 'भाषाविज्ञान' के अन्तर्गत प्राचीन भाषासामग्री का विश्लेषण किया जाता है और 'लिंग्युस्टिक्स' (भाषाशास्त्र) के अन्तर्गत आधुनिक जीवित भाषाओं एवं बोलियों का अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है। इसके अन्तर्गत केवल कथ्य भाषा की ही व्याख्या की जाती है। साहित्य की भाषा-सामग्री की व्याख्या प्रस्तुत करना इसकी सीमा के बाहर है।

वास्तव में आज भाषाविज्ञान के पाठ्यविषय के अन्तर्गत 'भाषाविज्ञान' एवं 'भाषाशास्त्र' दोनों के सम्यक् अध्ययन पर समान रूप से बल देने की आवश्यकता है। हमारे देश की परम्परा प्राचीन है। अतएव उसका अनुसरण करते हुए हमें आज ऐतिहासिक एवं वर्णनात्मक दोनों प्रकार के भाषाशास्त्रीय अध्ययन-अध्यापन की आवश्यकता है। ये अध्ययन प्रतिद्वन्द्वी न हो कर एक दूसरे के पूरक हैं। इसमें सन्देह नहीं कि वर्णनात्मक भाषाशास्त्र की पद्धति पाणिनीय व्याकरण के समान ही किंचित जटिल एवं दुरूह है किन्तु एक बार उसे सम्यक् रूप से समझ लेने पर आगे का मार्ग सरल हो जाता है।

यहाँ मैं बल दे कर आप से निवेदन करना चाहता हूँ कि आज भाषाविज्ञान के पाठ्यक्रम (Syllabus) को अविलम्ब बदलने की आवश्यकता है क्योंकि हमारे विश्वविद्यालयों में इसके नाम पर जो सैद्धान्तिक ज्ञान दिया जा रहा है वह बासी और अशुद्ध है। आप सभी विश्व-विद्यालयों के भाषाविज्ञान के प्रश्नपत्रों को देखें तो आपको केवल बीस-पच्चीस प्रश्न ऐसे मिलेंगे जो अदल बदल कर प्रत्येक वर्ष पूछे जाते हैं। इससे न तो अध्येताओं को विषय का ज्ञान ही होता है और न उसके प्रति उन्हें आकर्षक ही हो पाता है।

अन्त में, मैं एक बात की ओर उपस्थित विद्वानों का ध्यान आकर्षित करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। यों तो पुराने चावल की भाँति वयोवृद्ध अध्यापक ही अधिक सरस एवं अनुभवी होता है किन्तु भाषा-विज्ञान इसका किंचित अपवाद है। बात यह है कि भौतिक विज्ञान (फिजिक्स)

२४

की भाँति ही भाषाविज्ञान के क्षेत्र में भी नित्य नई खोजें होती रहती हैं अतएव इसके प्राध्यापक को भी विशेष रूप से जागरूक रहने की आवश्यकता है। सौभाग्य से हमारे देश में भाषाविज्ञान विषयक नवीनतम ज्ञान प्रदान करने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान समिति की ओर से प्रत्येक वर्ष ग्रीष्म एवं शरद भाषाशास्त्रीय सत्रों की आयोजना होती है तथा अनेक नवयुवक प्राध्यापक इन सत्रों में सम्मिलित होकर भाषाशास्त्र सम्बन्धी नवीनतम ज्ञान अर्जित करते हैं, अपने विश्वविद्यालयों में भाषाविज्ञान के अध्यापन का भार हमें इन्हीं नवयुवक प्राध्यापकों पर डालना चाहिये, इससे भाषाविज्ञान के अध्ययन-अध्यापन की विशेष प्रगति होगी।

डॉ० विजयेन्द्र स्नातक

स्नातकोत्तर कक्षा में विषय-विभाजन एवं पाठ्यक्रम का स्वरूप

स्नातकोत्तर कक्षा में साहित्य के अध्ययन-अध्यापन में किन-किन विषयों को स्थान मिलना चाहिए यह प्रश्न आज सर्वथा नये संदर्भ में नहीं उठाया जा सकता। जब से हिन्दी साहित्य को हमारे विश्वविद्यालयों में स्नातकोत्तर कक्षाओं में स्थान मिला, तभी से यह प्रश्न पाठ्यक्रम निर्माताओं के सामने रहा है। उस समय के पाठ्यक्रम निर्माताओं ने अपने बुद्धि-विवेक के आधार पर जो पाठ्यक्रम निर्धारित किया उसमें यथासमय परिवर्तन-परिवर्द्धन होते रहे और आज भारत के लगभग ३७ विश्वविद्यालयों में हिन्दी साहित्य को स्नातकोत्तर परीक्षा में स्थान प्राप्त है। हिन्दी साहित्य में एम० ए० उपाधि प्राप्त करने वाले विद्यार्थी से हम हिन्दी साहित्य के सर्वांगीण ज्ञान की आशा रखते हैं और साहित्य को इसीलिए पाठ्क्रम का प्रमुख अंग समझते भी हैं। किन्तु साहित्य की परिधि को केवल साहित्यिक कृतियों '(काव्य, नाटक, उपन्यास, गल्प, निबंध आदि) तक सीमित नहीं बनाया जा सकता। वस्तुतः स्नातकोत्तर परीक्षा से साहित्य-शिक्षा का उद्देश्य व्यापक स्तर पर ही गृहीत होना चाहिए।

साहित्य की व्यापक परिधि के अन्तर्गत साहित्य की अमरकृतियाँ (१) मूलपाठ्यग्रंथ। अभिव्यक्ति का माध्यम (२) भाषा। मूल्यांकन के मानदंड (३) आलोचना। साहित्यिक प्रवृत्तियों, कृतियों एवं लेखकों का परिचय, (४) साहित्येतिहास। साहित्य की पृष्ठभूमि के अनुशीलन के लिए। (५) सांस्कृतिक पीठिका। भाषा की मूल प्रकृति एवं विकास के अध्ययन के लिए। (६) भाषा विज्ञान को विषयों की दृष्टि से स्थान देना आवश्यक है। कुछ विद्वानों के मत में पाठ्यग्रंथों के वैज्ञानिक पद्धति से अनुशीलन के लिए पाठालोचन को भी विषयों के भीतर रखना चाहिए किन्तु पाठालोचन का साहित्य के साथ सम्बन्ध होते हुए भी उसे अनिवार्य पाठ्य विषय बनाने से मतभेद हो सकता है। पाठालोचन एक वैज्ञानिक प्रक्रिया पर आधृत शिक्षण प्रणाली है जिससे साहित्यिक कृति के मूलरूप का जितना बोध होता है उतना कदाचित् साहित्य का नहीं। अतः मैं पाठालोचन को अनिवार्य विषय के रूप में रखने के पक्ष में नहीं हूँ।

अनिवार्य विषय

साहित्य शिक्षा का मूल प्रयोजन न तो शब्दार्थ बोध तक सीमित है और न केवल रसास्वाद में ही उसकी इति श्री होती है। वस्तुतः ज्ञानवर्धन और सौन्दर्यबोध के साथ साहित्य के मूल्यांकन की क्षमता उत्पन्न करना तथा एक सीमा तक अध्येता की प्रच्छन्न सर्जक-प्रतिभा को उद्बुद्ध करना भी साहित्य शिक्षा के प्रयोजनों में है। यह कार्य केवल कृति-साहित्य के अध्ययन-अध्यापन से सम्भव नहीं हो सकता। मूल्यांकन की सामर्थ्य उत्पन्न करने के लिए काव्यशास्त्र तथा अभिव्यंजना

कौशल को हृदयंगम करने के लिए **भाषा-तत्व** का अध्यापन इन कक्षाओं में आवश्यक होता है। अतएव एम० ए० कक्षा का मूलविषय भाषा और साहित्य होते हुए भी विषय-विभाजन में कुछ व्यापक धरातल स्वीकार करना चाहिए। साहित्य-शिक्षा के मूल प्रयोजनों को दृष्टि में रखते हुए तथा साहित्य एवं भाषा विशेष के सामान्य संदर्भ में, मैं स्नातकोत्तर कक्षा के पाठ्यक्रम में निम्नलिखित विषयों को अनिवार्य विषय के रूप में रखने का परामर्श प्रस्तुत करता हूँ:—

(क) सम्बद्ध भाषा की अमर साहित्यिक कृतियाँ।
(युग, प्रवृत्ति, शक्ति, कृतित्व एवं कृतिकार का प्रतिनिधित्व करने वाली रचनाएं)

(ख) साहित्य के मूल्यांकन के लिए उपयुक्त समीक्षाशास्त्र।
(समीक्षा शास्त्र के अन्तर्गत भारतीय तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सुप्रसिद्ध पठनीय मूलग्रंथ या उनका प्रामाणिक अनुवाद)

(ग) सम्बद्ध भाषा के साहित्य का इतिहास।
(इतिहास में सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक चेतना की पृष्ठभूमि तथा काव्य प्रवृत्तियाँ, समस्त उल्लेख्य कृतियाँ तथा कृतिकारों का आलोचनात्मक परिचय)

(घ) सामान्य भाषा विज्ञान तथा सम्बद्ध भाषा का वैज्ञानिक धरातल पर व्यापक अध्ययन।

वैकल्पिक विषय

वैकल्पिक विषयों में साहित्य से सम्बद्ध व्यापक अध्ययन को प्रमुख स्थान मिलना चाहिए। अभी तक विशेष कवि, विशेष युग या हिन्दी से सम्बन्ध रखने वाली कतिपय भाषाओं को विकल्प रूप में रखा जाता रहा है। विकल्प रूप में पाठालोचन को भी एक-दो विश्वविद्यालयों में स्थान मिला है। भारतीय साहित्य की **सांस्कृतिक पीठिका** के अध्ययन को भी वैकल्पिक विषय के रूप में रखने का सुझाव दिया जा सकता है। वैकल्पिक विषयों का प्रचलित रूप इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है—

१—हिन्दी के विशिष्ट कवि, नाटककार या उपन्यासकार—

(क) विद्यापति
(ख) कबीरदास
(ग) जायसी
(घ) सूरदास
(ङ) तुलसीदास
(च) केशवदास
(छ) देव और बिहारी
(ज) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
(झ) महावीर प्रसाद द्विवेदी

(ञ) जयशंकर प्रसाद

(ट) प्रेमचन्द

२—प्राचीन तथा अर्वाचीन भाषाएं—

(क) संस्कृत }
(ख) पालि } प्राचीन
(ग) अपभ्रंश और प्राकृत }

(घ) राजस्थानी

(ङ) उर्दू

(च) पंजाबी

(छ) गुजराती

(ज) बंगला

(झ) मराठी

(ञ) तमिल

(ट) तेलुगु

(ठ) मलयालम

(ड) कन्नड़

३—हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, विधाएं, वाद अथवा युग

(क) भक्तिकाल

(ख) रीतिकाल

(ग) हिन्दी उपन्यास साहित्य

(घ) हिन्दी नाटक साहित्य

(ङ) छायावाद

(च) महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग

४—पाठालोचन

५—लोक साहित्य

पाठ्यक्रम

उपर्युक्त अनिवार्य तथा वैकल्पिक विषयों के आधार पर पाठ्यक्रम निर्धारित होना चाहिए। पाठ्यक्रम-निर्धारण में सभी विश्वविद्यालयों में समानता होना न तो आवश्यक है और न संभव ही। उत्तर भारत के विश्वविद्यालयों का पाठ्यक्रम भी एक जैसा नहीं है। पूर्व, पश्चिम और दक्षिण के विश्वविद्यालयों में भी पाठ्यक्रम से वैविध्य है। इस वैविध्य के अनेक कारण हैं अतः उनमें संगति खोजने का प्रयास न करना ही ठीक होगा। सिद्धान्त रूप से रुचिभेद और प्रदेश भेद को ही इसका कारण समझना चाहिए।

पाठ्यक्रम से विषयों के अनुरूप विस्तार अपेक्षित होता है। अनिवार्य विषयों में हम पाठ्यक्रम का वर्तमान रूप इस प्रकार पाते हैं—

१—साहित्यिक कृतियाँ अर्थात् पाठ्यक्रम (Texts)

(क) प्राचीन काव्य
(ख) मध्ययुगीन काव्य
(ग) आधुनिक काव्य
(घ) आधुनिक गद्य—(नाटक, उपन्यास, गल्प और निबन्ध)

२—समीक्षा शास्त्र

समीक्षा शास्त्र के अध्ययन-अध्यापन का उद्देश्य मूल्यांकन के मानदंडों का बोध तथा उनका अधीत ग्रंथों के संदर्भ में प्रयोग करना है। भारतीय काव्यशास्त्र का संस्कृत के माध्यम से अध्ययन संभव न होने से हिन्दी रूपान्तरों से उसके मूल सिद्धान्तों का अध्ययन सम्प्रति जारी है। पाश्चात्य काव्यशास्त्र का भी आधुनिक हिन्दी साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा है किन्तु अभी तक पाठ्य पुस्तक रूप में पाश्चात्य काव्यशास्त्र हिन्दी में सुलभ न होने से उसे भी प्रायः हिन्दी रूपान्तरों से पढ़ा जाता है।

किसी किसी विश्वविद्यालय में भारतीय तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र का समान स्थान प्राप्त है किसी में पाश्चात्य काव्यशास्त्र गौणरूप से पढ़ाया जाता है। यदि हिन्दी साहित्य के ऐतिहासिक क्रम विकास को ध्यान में रखते हुए हिन्दी का अपना 'समीक्षाशास्त्र' तैयार करने की योजना पूर्ण हो सके तो इस विषय में एकरूपता आने की संभावना हो सकती है।

पाठ्यक्रम में जिन ग्रंथों को अभी तक स्थान मिलता है उनमें से कुछ तो रूढ़ हो गए हैं और कुछ ग्रंथों को प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। किन्तु पाठ्यक्रम में इस विषय को अनिवार्य रूप से स्थान मिलना ही है अतः इस दिशा में ग्रन्थ निर्माण की योजना पर ध्यान देना चाहिए।

३—साहित्य का इतिहास

पाठ्यक्रम में इतिहास को अनिवार्य मान कर प्रायः सभी विश्वविद्यालयों ने पूरे प्रश्नपत्र के रूप में स्थान दिया है। दो तीन विश्वविद्यालयों में समीक्षाशास्त्र और इतिहास को सम्मिलित कर एक ही प्रश्न पत्र के रूप में अभी तक रखा हुआ है किन्तु इस विषय की परिधि को देखते हुए मैं इसे सम्पूर्ण प्रश्न पत्र के रूप में ही रखे जाने का परामर्श देता हूँ।

साहित्य के इतिहास के साथ सांस्कृतिक पीठिका को अभी तक वह स्थान नहीं मिला जो उसे मिलना चाहिए था। कुछ विद्वानों के मत में सांस्कृतिक पीठिका स्वतंत्र विषय के रूप में पाठ्यक्रम में निर्धारित होनी चाहिए किन्तु साहित्य के मूल संदर्भ में मैं इसे इतिहास का ही अंग मान कर इसी के साथ व्यापक रूप से पढ़ाने के पक्ष में हूँ। अभी तक सामाजिक धरातल पर भी इतिहास का अध्ययन नहीं होता उसे भी प्रवृत्तियों के साथ समन्वित कर पढ़ाना चाहिए।

४—सामान्य भाषा विज्ञान

साहित्य के पाठ्यक्रम से भाषा विज्ञान को कितना महत्व और स्थान प्राप्त हो, यह विचारणीय प्रश्न है। भाषा विज्ञान का जिस रूप में वैज्ञानिक पद्धति से विकास हो रहा है वह साहित्य के अध्येता के लिए कदाचित उतना प्रयोजनीय नहीं है जितना समझा जा रहा है। यदि

सामान्य भाषा विज्ञान तक ही इसे सीमित रख हिन्दी के स्वरूप से सम्बद्ध भाषा विज्ञान को पाठ्यक्रम में रखा जाए तो अधिक लाभप्रद होगा।

धीरे धीरे प्रत्येक विश्वविद्यालय में स्वतंत्र रूप से भाषाविज्ञान में स्नातकोत्तर शिक्षण तथा भाषा विज्ञान के विभाग खुल रहे हैं। अतः इस विषय को एक सीमा के भीतर ही हिन्दी एम०-ए० में पढ़ाने का मेरा परामर्श है। अच्छा हो कि इस कक्षा के अनुरूप एक सामान्य भाषाविज्ञान का पाठ्य ग्रंथ तैयार करवा कर उसे ही नियत कर दिया जाए। वैकल्पिक रूप से विशेष-व्यापक अध्ययन की सुविधा पर विचार किया जा सकता है।

वैकल्पिक विषयों के सम्बन्ध में विश्वविद्यालयों को पूरी छूट देनी होगा। अहिन्दी प्रान्तों के विश्वविद्यालयों में वैकल्पिक विषयों के द्वारा पर्याप्त सुविधा दी जा सकती है। किन्तु वैकल्पिक विषयों में प्रायः परीक्षा की दृष्टि से सन्तुलन नहीं होता। संस्कृत तथा पालि भाषा पढ़ने वाले विद्यार्थी विशेष कवि का अध्ययन करने वालों से कम अंक पाते हैं। परीक्षा की दृष्टि से इस असन्तुलन को दूर करने का उपाय खोजना चाहिए। आधुनिक भाषाओं के सम्बन्ध में भी अध्यापकों के विभिन्न मत हैं।

पाठ्यक्रम में नवीन साहित्य का स्थान

पाठ्यक्रम निर्धारित करते समय शास्त्रीय परम्परा के साथ स्वतंत्र चिन्तन को प्रोत्साहित करने का ध्यान रखना आवश्यक है। प्राचीन साहित्य को हम क्लासिक मान कर पढ़ते-पढ़ाते आ रहे हैं किन्तु उससे एक प्रकार की स्थिरता का आभास भी हमें होता है। फलतः समय-समय पर वर्तमान युग की गत्यात्मक चेतना Dynamic force से परिपूर्ण कलाकृतियों को पाठ्यक्रम में स्थान देना आवश्यक प्रतीत होता है। प्राचीन और नवीन का यह सामंजस्य ही पाठ्यरूप को सन्तुलित रखने में समर्थ है। विचार और अनुभूति को परिपुष्ट रखने के लिए जीवन्त साहित्य से अध्येता का सम्बन्ध बनाए रखना इसी के लिए अनिवार्य समझा जाता है। हिन्दी एम० ए० करने के बाद भी विद्यार्थी यदि आधुनिक युग की साहित्यिक गतिविधि से पूर्ण परिचित नहीं होता तो उसकी उपलब्धि को स्नातकोत्तर कक्षा के अनुरूप कैसे माना जा सकता है? अतः मेरा परामर्श है कि क्लासिक या अमरकृति का निकष काल न हो कर कृतित्व ही होना चाहिए। कभी-कभी लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकारों की सामान्य कोटि की रचनाएं पाठ्यक्रम में समाविष्ट हो जाती हैं और वर्तमान युग की श्रेष्ठ प्रतिभाएं अस्वीकृत बनी रहती हैं। अध्येता को वर्तमान के संदर्भ में सोचने-विचारने और अनुभव करने के लिए हमें पाठ्यक्रम में नवीन साहित्य को उपयुक्त स्थान देना चाहिए।

प्रश्नपत्र विभाजन

विषय तथा पाठ्यक्रम को दृष्टि में रखते हुए परीक्षा के निमित्त प्रश्नपत्रों की संख्या ६, ८, ९ तथा १० तक विभिन्न विश्वविद्यालयों में चल रही है। प्रश्नपत्रों में साहित्यिक कृतियों अर्थात् पाठ्यांश (टेक्स्ट) के लिए प्रायः तीन या चार प्रश्नपत्रों की व्यवस्था है। प्रश्नपत्रों की संख्या का आदर्श निर्धारण करना कठिन है किन्तु इस सम्बन्ध में प्रचलित व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए निम्नांकित परामर्श विचारार्थ प्रस्तुत किए जाते हैं।

एम० ए० कक्षा में सामान्यत: ८ प्रश्नपत्रों की संख्या समीचीन है। जहाँ मौखिक परीक्षा की व्यवस्था है वहाँ ९ प्रश्न पत्र स्वीकृत करने होंगे।

प्रथम प्रश्नपत्र—प्राचीन काव्य मध्ययुगीन काव्य

द्वितीय प्रश्नपत्र—आधुनिक काव्य

तृतीय प्रश्नपत्र—आधुनिक गद्य (नाटक, उपन्यास, गल्प, निबन्ध)

चतुर्थ प्रश्नपत्र—हिन्दी साहित्य का इतिहास

पंचम प्रश्नपत्र—काव्यशास्त्र

षष्ठ प्रश्नपत्र—सामान्य भाषा विज्ञान

सप्तम प्रश्नपत्र—वैकल्पिक विषय

अष्टम प्रश्नपत्र—निबंध या विशेष प्रबंध

(वैकल्पिक मौखिक परीक्षा–नवम पत्र)

(क) **अष्टम प्रश्नपत्र** का स्वरूप सभी विश्वविद्यालयों में एक समान नहीं है। कहीं कहीं निबंध के साथ अंग्रेजी, उर्दू और संस्कृत या किसी प्रादेशिक भाषा के अनुवाद का अंश भी समाविष्ट होता है। ६० अंक का निबन्ध और ४० अंक का अनुवाद या ८० अंक निबन्ध और २० अंक अनुवाद।

निबंध के साथ कहीं कहीं **विशेष प्रबंध** (Dissertation) तथा अनुवाद का विकल्प भी है। विशेष प्रबंध के सम्बन्ध में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने एक बार गंभीर आपत्ति प्रकट की थी किन्तु विशेष प्रबन्ध के गुण दोष का सन्तुलन रखते हुए कई विश्वविद्यालय इसे उपयोगी समझ कर विकल्प रूप में चला रहे हैं। यदि समुचित निर्देशन से विशेष प्रबन्ध की व्यवस्था की जाए तो यह भावी अनुसंधित्सु विद्यार्थी के लिए उपयोगी सिद्ध होता है अत: इस विशेष प्रबंध को प्रश्रय देना ठीक ही है।

मौखिक परीक्षा के सम्बन्ध में स्पष्ट दो मत हैं। जिन विश्वविद्यालयों में मौखिक परीक्षा चालू है उनकी भी परीक्षार्थियों की बहुसंख्या देखते हुए कठिनाई प्रतीत होने लगी है। इस परीक्षा का मूल उद्देश्य तो विद्यार्थी की मौलिकता तथा अभिव्यंजना क्षमता की परीक्षा करना है किन्तु ५-७ मिनट के अल्पकाल में यह परीक्षा फलवती सिद्ध नहीं होती, इसी कारण कई विश्वविद्यालय इसे त्याग चुके हैं। परीक्षा के स्तर में एक रूपता लाने की दृष्टि से तथा परीक्षार्थियों की सतत वर्द्धमान संख्या को देखते हुए मौखिक परीक्षा को समाप्त करना ही उचित प्रतीत होता है।

अहिन्दी क्षेत्र के विश्वविद्यालयों का पाठ्यक्रम

अहिन्दी क्षेत्र के विश्वविद्यालयों में विषय-विभाजन तो हिन्दी क्षेत्र के प्राय: समान ही होना चाहिए किन्तु पाठ्यक्रम में कुछ अन्तर आवश्यक है। साहित्य विषय के अन्तर्गत प्राचीन तथा मध्ययुगीन कवियों की रचनाओं को अपेक्षाकृत न्यूनमात्रा में रखने का परामर्श अनेक बार आया है। कलकत्ता विश्वविद्यालय ने इस सुझाव को स्वीकार नहीं किया और वह हिन्दी क्षेत्र के

विश्वविद्यालयों के सदृश ही पाठ्यक्रम रखने के पक्ष में रहा है किन्तु दक्षिण और गुजरात के विश्वविद्यालयों में प्राचीन काव्य पर उतना बल देने का आग्रह नहीं किया जितना उत्तर भारत के विश्वविद्यालयों में है। चन्दबरदाई से भारतेन्दु तक, लगभग एक दर्जन कवियों की रचनाएं उत्तर भारत के विश्वविद्यालयों में स्वीकृत हैं। इनमें अपभ्रंश, मैथिली, अवधी, व्रज और राजस्थानी भाषाएं सम्मिलित हैं। दक्षिण प्रदेश के विद्यार्थी खड़ी बोली के साथ पांच-पांच उपभाषाओं का अध्ययन करने में अपने को असमर्थ पाते हैं अतः इन भाषाओं की प्रतिनिधि रचनाओं का अल्पांश चयन कर के ही पाठ्यक्रम में रखने का सुझाव उनकी ओर से आता रहा है। इस परामर्श के पीछे तर्क का पूरा बल है अतः इसे स्वीकार करना उचित प्रतीत होता है। हां, समन्वय बनाए रखने के लिए चन्दवरदाई, जायसी, कबीर, सूर, तुलसी, मीरा, बिहारी, केशव, पद्माकर आदि के काव्य से कुछ अंश संकलित कर एक पाठ्यक्रम दक्षिण प्रदेश के विश्वविद्यालयों के लिए निर्मित कराया जाना चाहिए। उसमें सम्पूर्ण काव्यकृतियों के स्थान पर काव्य सौष्ठवपूर्ण प्रसंगों का चयन हो। इसके साथ ही भाषा विज्ञान के प्रश्नपत्र में हिन्दी की उपभाषा या विभाषाओं का परिचय उन्हें अवश्य कराना चाहिए। इस परामर्श को क्रियान्वित करने से पूर्व इसके गुणावगुण पर एक समिति द्वारा पूरी तरह विमर्श करना आवश्यक है।

प्राचीन तथा मध्ययुगीन काव्यग्रंथों को न्यून करने के कारण क्या आधुनिक हिन्दी (खड़ी बोली) के ग्रंथों से कुछ वृद्धि करना अपेक्षित है? मैं समझता हूं कि दक्षिण प्रदेश के विश्वविद्यालयों में नव्यतम साहित्य को यदि थोड़ा अधिक पढ़ाया जाए तो उससे हिन्दी के वर्तमान रूप विकास की गतिविधि के साथ उनका अच्छा और गहरा परिचय हो सकेगा। किन्तु इस परामर्श को सिद्धान्त रूप में स्वीकार करने से पूर्व इस सम्बन्ध के दक्षिण के विश्वविद्यालयों की सम्मति जानना आवश्यक है।

परीक्षा विधि

परीक्षा विधि में भी सभी विश्वविद्यालयों में एकरूपता नहीं है। अधिकांश विश्वविद्यालय एम० ए० (प्रथम वर्ष) तथा एम० ए० (द्वितीय वर्ष) की पृथक्-पृथक् परीक्षा लेते हैं और दोनों के समवेत अंकों के आधार पर परीक्षार्थी का परिणाम घोषित किया जाता है। कुछ विश्वविद्यालयों में दोनों वर्ष के उपरान्त केवल एक ही परीक्षा की व्यवस्था है। परीक्षा विधि के दोनों प्रकारों के पक्ष-विपक्ष में तर्क प्रस्तुत किए जा सकते हैं। विद्यार्थी को शुद्ध परीक्षार्थी बनाने की दिशा में बार-बार परीक्षा लेने की प्रणाली ही घातक सिद्ध हुई है। प्रथम वर्ष में जब तक विद्यार्थी भलीभांति साहित्य में प्रवेश भी नहीं कर पाता कि उसे परीक्षा के दुर्ग में ढकेल दिया जाता है। साथ ही प्रथम वर्ष के अन्त में परीक्षा दे कर वह ३ मास के ग्रीष्मावकाश में निठल्ला रहता है यदि उसे परीक्षा से मुक्ति न मिले तो वह अध्ययनरत बना रहे।

दो बार परीक्षा लेने के पक्ष में यह कहा जाता है कि परीक्षार्थी भार-मुक्त होने के साथ अपनी स्थिति से स्वयं परिचित हो जाता है और द्वितीय वर्ष से अपने अध्ययन में पूर्वापेक्षा अधिक मनोयोग से जुटता है। दोनों प्रणालियाँ चूंकि अभी तक चल रही हैं अतः गुणावगुण का लेखा-जोखा संकलित करने पर ही निर्णय किया जा सकता है।

विषय-विभाजन तथा पाठ्यक्रम में एकरूपता की आवश्यकता :

इसमें सन्देह नहीं कि प्रत्येक विश्वविद्यालय अपनी परिस्थिति, साधन तथा क्षेत्रीय आवश्यकताओं के अनुसार पाठ्यक्रम का निर्धारण करता है और उसमें परिवर्तन करने के अधिकार भी विश्वविद्यालयों की विद्यासभाओं को है तथापि एम० ए० उपाधि प्राप्त करने वाले सभी विद्यार्थियों के ज्ञान के स्तर में यथासम्भव एकरूपता वांछनीय है। एकरूपता किसी जड़ नियम से आबद्ध न हो कर मूलभूत सिद्धान्तों में ही हो सकती है अतः उसके लिए सभी विश्वविद्यालयों को सम्मिलित प्रयत्न करना चाहिए।

इस आधारभूत एकता की स्थापना के लिए पाठ्यक्रम के निर्धारण में निम्नलिखित तथ्यों को ध्यान में रखना आवश्यक है—

१—पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए कि एम० ए० उपाधि प्राप्त करने वाला विद्यार्थी हिन्दी साहित्य के सभी कालों, अंगों एवं विधाओं का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर सके। इसके लिए पाठ्य विषयों का विभाजन प्रायः समान होना चाहिए।

२—हिन्दी भाषा और साहित्य से सम्बद्ध विषयों के अध्यापन को पाठ्यक्रम में समाविष्ट किया जाए—जैसे काव्यशास्त्र, साहित्येतिहास, भाषा विज्ञान आदि।

३—पाठ्यक्रम को इस प्रणाली से विभाजित किया जाए कि हिन्दी साहित्य का उचित सन्तुलन बना रहे। संतुलन-स्थापना के लिए निम्नलिखित परामर्श किए जा सकते हैं—

(क) प्राचीन काव्य के लिए दो प्रश्नपत्र।

(ख) आधुनिक गद्य तथा पद्य के लिए दो प्रश्नपत्र।

(यदि चार प्रश्नपत्रों की किसी कारण व्यवस्था करना कठिन प्रतीत हो, तो तीन प्रश्न-पत्रों में प्राचीन तथा आधुनिक समस्त साहित्य को पाठ्यरूप में रखा जाए।)

(ग) साहित्य विषयक इन प्रश्नपत्रों में पाठ्यांश के साथ समीक्षात्मक प्रश्नों को पूरा स्थान प्राप्त हो। पाठ्यग्रंथ से सम्बद्ध विषयों पर मूल्यांकन, रसास्वादन, सौन्दर्योद्घाटन, अभि-व्यंजना कौशल, काव्य समीक्षा आदि पर ५०-६० प्रतिशत अंकों के प्रश्न अवश्य पूछे जाएं। सम्प्रति ४० अंक पाठ्यांश तथा ६० अंक आलोचनात्मक प्रश्न के लिए प्रायः रहते हैं। इस व्यवस्था पर नवीन संदर्भों के परिप्रेक्ष्य पर पुनः विचार की आवश्यकता है।

४—सामान्य भाषा विज्ञान तथा हिन्दी भाषा के गवेषणात्मक इतिहास का एक स्वतंत्र प्रश्नपत्र होना चाहिए। इस प्रश्नपत्र में क्षेत्रीय आवश्यकता के अनुसार हिन्दी का व्याकरण, अथवा प्रान्तीय भाषा का हिन्दी के साथ सम्बन्ध आदि प्रश्नों का भी समावेश किया जा सकता है।

५—हिन्दी साहित्य के सम्पूर्ण इतिहास के विधिवत् अध्ययन के लिए एक प्रश्नपत्र की व्यवस्था हो। इस प्रश्नपत्र में सांस्कृतिक, सामाजिक, दार्शनिक, राजनैतिक परिस्थितियों का विशद रूप से अध्ययन समाविष्ट करना चाहिए। प्रमुख प्रवृत्तियां, विधाएं और वादों का इति-वृत्त भी इसमें समाविष्ट है।

(अभी तक कुछ विश्वविद्यालयों में यह प्रश्न पत्र ५० अंक का है और समीक्षाशास्त्र के साथ इसे संयुक्त कर रखा है।)

६—भारतीय काव्यशास्त्र के साथ पाश्चात्य काव्यशास्त्र के मूल सिद्धान्तों के सम्यक् अध्ययन के लिए पृथक् प्रश्नपत्र होना चाहिए। अंक विभाजन में भारतीय काव्य शास्त्र ६० अंक तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र ४० अंक हो सकते हैं।

७—एक प्रश्नपत्र वैकल्पिक विषय का होना चाहिए। वैकल्पिक विषयों में कवि विशेष, युग विशेष, वाद विशेष, भाषा विशेष के अध्ययन की व्यवस्था है। इसमें आवृत्ति के परिहार का ध्यान रखना आवश्यक है।

(वैकल्पिक विषयों में अब भारतीय भाषाओं को स्थान मिलना प्रारम्भ हो रहा है। कुछ विद्वानों का मत है कि हिन्दी प्रदेशों के विश्वविद्यालयों में एक भारतीय भाषा को अनिवार्य रूप से स्थान दिया जाए। किन्तु यह अनिवार्यता विचारणीय है।)

८—विद्यार्थी की अभिव्यंजनाशक्ति के विकास और परीक्षण के लिए निबन्ध के एक स्वतंत्र प्रश्नपत्र की आवश्यकता है। निबन्ध के साथ कुछ विश्वविद्यालयों में संस्कृत, इंगलिश, उर्दू या प्रादेशिक भाषा से अनुवाद की भी व्यवस्था है। अनुवाद की व्यवस्था के गुणावगुण पर विचार अपेक्षित है। निबंध के प्रश्नपत्र के साथ कहीं कहीं आलोचनात्मक व्याख्या को भी स्थान प्राप्त है। मेरी सम्मति में यह भाग निबंध के प्रश्नपत्र से हटा देना चाहिए। निबंध के विकल्प से विशेष प्रबंध (Dissertation) का प्रबंध भी कुछ विश्वविद्यालयों में है। अध्यापक के निर्देशन में लिखा गया यह निवन्ध भावी अनुसंधित्सु छात्रों के लिए उपयोगी है। इसके गुणावगुण पर विचार करना आवश्यक है।

उपर्युक्त आठ प्रश्नपत्रों की व्यवस्था कर देने से विषय विभाजन तथा पाठ्यक्रम में पर्याप्त एकरूपता स्थापित हो सकेगी।

डॉ० भोलाशंकर व्यास

स्नातकोत्तर हिन्दी पाठ्यक्रम में काव्यशास्त्र का महत्व और संबद्ध समस्याएँ

किसी भी साहित्य के सुव्यवस्थित अध्ययन के लिए काव्यालोचन के सैद्धान्तिक पक्ष की जानकारी अनिवार्य हो जाती है। साहित्यिक कृतियों की उदात्तता और अनुदात्तता की जानकारी इस सैद्धान्तिक ज्ञान के बिना प्राय: नहीं हो पाती और इतना ही नहीं, काव्य के रसास्वाद अथवा कृति के प्रभाव को आत्मसात् करने में भी यह जानकारी पाठक, तथा विद्यार्थी को पर्याप्त सहायता वितरित कर सकती है। काव्यालोचन के सैद्धान्तिक पक्ष के साथ ही उसके दार्शनिक आधार का ज्ञान भी विद्यार्थियों के लिए अपेक्षित है, क्योंकि इसके बिना वे तत्तत् काव्यालोचन की मूल आत्मा को नहीं पहचान पाते हैं। हिन्दी साहित्य के सन्दर्भ में काव्यालोचन के सैद्धान्तिक पक्ष के अध्ययन-अध्यापन की महत्ता और अनिवार्यता के विषय में दो राय नहीं हो सकतीं, प्रश्न केवल इस अध्ययन की सीमा, स्वरूप तथा पाठ्यविधि से ही सम्बन्ध रखता है। विश्वविद्यालयीय स्नातकोत्तर शिक्षण में काव्यशास्त्रीय अध्ययन-विधि का मसला इसलिए जटिल हो गया है कि आज के स्नातकोत्तर विद्यार्थी को नयी आवश्यकताओं को दृष्टिपथ में रखते हुए भारतीय तथा पाश्चात्य काव्य-सिद्धान्तों से और उनके मूलभूत दार्शनिक आधार से किस तरह परिचित कराया जाय कि वह दोनों परं-पराओं से आयी सैद्धान्तिक मान्यताओं का तारतमिक परिचय ही प्राप्त न करे, अपितु उन सिद्धान्तों को हृदयंगम कर उनका कवियों तथा कृतियों के व्यावहारिक आलोचन में भी सम्यक् उपयोग कर सकें। आज की काव्यशास्त्रीय अध्यापन-विधि का सबसे बड़ा दोष जो स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त छात्रों में प्राय: दिखायी पड़ता है, यही है कि न तो वे दोनों परम्पराओं की मूलभूत मान्यताओं की आत्मा तक ही पहुँच पाते हैं, और न इस सैद्धान्तिक अस्त्र को कवियों और कृतियों की परख करने में ही उपयोग करने में समर्थ होते हैं। किन्तु इस स्थिति के लिए विद्यार्थी स्वयं दोषी नहीं है। इस दोष के प्रमुख दो कारण हैं। प्रथम तो उन विद्यार्थियों के लिए जो केवल परीक्षा उत्तीर्ण करना चाहते हैं, ऐसी पुस्तकें घातक सिद्ध होती हैं, जो या तो हलके ढंग के नोट्स हैं या जो लगभग २५—३० वर्ष पूर्व की अध्यापन परम्परा को ध्यान में रख कर लिखी गयी हैं और आज पूरी तरह 'आउट-आव-डेट' हो चुकी हैं। दूसरे ऐसे प्रतिभाशील विद्यार्थियों को जिनमें वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने की रुचि तथा पर्याप्त जिज्ञासा रहती है, जब परम्परावादी ढंग के वर्गीकरण की शैली में काव्य-शास्त्र पढ़ाया जाता है, जिसकी अंतिम परिणति मात्र चमत्कार होती है, तो वे प्राय: निराशा ही व्यक्त करते पाए जाते हैं। नतीजा यह होता है कि जहाँ भी कहीं परीक्षा में इन्हीं विषयों से सम्बद्ध कुछ प्रत्ययात्मक (Conceptual) तथा तुलनात्मक प्रश्न पूछ दिए जाते हैं, परीक्षार्थियों के उत्तर का स्तर गिर जाता है। बँधे-बँधाये ढ़ंग की पढ़ाई और परीक्षण होने पर ही इस विषय में छात्रों

को अच्छे अंक मिल पाते हैं। मुझे स्वयं स्नातकोत्तर कक्षाओं को काव्यशास्त्र पढ़ाने का अनुभव है तथा एक-आध बार अन्यत्र इससे सम्बद्ध प्रश्न-पत्र के परीक्षण का भी अवसर मिला है। प्रश्न-पत्र के ढंग में कुछ ऐसा नया प्रयोग करने पर जिससे छात्रों की विषयग्राहिता एवं मौलिक शक्ति का पता चल सके, निराशा ही हाथ लगी। स्थिति निःसन्देह दयनीय है और इसका समुचित उपचार होना ही चाहिए।

काव्यशास्त्रीय अध्यापन के स्वरूप तथा सीमा के निर्धारण की समस्या सबसे महत्वपूर्ण है जिससे अध्यापन-विधि तथा परीक्षण-विधि दोनों का गहरा सम्बन्ध है। प्रश्न यह है कि हिन्दी साहित्य के छात्रों को भरत से लेकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल या पं० नन्ददुलारे वाजपेयी तथा डॉ० नगेन्द्र तक की भारतीय काव्यशास्त्रीय मान्यताओं का धारावाहिक परिचय देने के साथ प्लेटो से क्रिस्टॉफर कॉडवेल या इलियट और सार्त्र तक के काव्यालोचन या साहित्यालोचन सम्बन्धी मूलभूत सिद्धान्तों को, साहित्य विशेषतः हिन्दी साहित्य के परिप्रेक्ष में किसी तरह हृदयंगम कराया जाय कि एक वर्ष की नियत शैक्षणिक अवधि में उसे इनका आवश्यक ज्ञान हो जाय; न कोई महत्व-पूर्ण तत्व छूटने पाये और न उसके मस्तिष्क को अनावश्यक अध्यापन से बोझिल ही बना दिया जाय। जब स्वरूप और सीमा निर्धारण का यह लक्ष्य हमारे सामने आता है, तो यह अनिवार्य हो जाता है कि हम अद्यतन शैक्षणिक तथा सामाजिक वातावरण को ध्यान में रखें। ऐसी स्थिति में जहाँ भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परागत अध्यापन-विधि में ज्यादा जोर देना हमारे लिए हानिकारक होता है, वहाँ पाश्चात्य काव्यशास्त्र पर भी आवश्यकता से अधिक बल देने से हमें परम्परा से अलग जा पड़ने का डर रहता है। रस के केवल आंगोपांग नायक-नायिका भेद अलंकार और काव्यदोष का वर्गीकरणात्मक उद्धरणीगत परिचय छायावादी काव्य परम्परा तथा नयी कविता के उदात्त पक्ष को तो समझने में असफल होगा ही, मध्ययुगीन काव्य परम्परा के भी कई उदात्त पक्षों को समुद्घाटित करने में समर्थ नहीं हो सकती। आचार्य शुक्ल से पूर्व प्रचलित हिन्दी काव्यालोचन पद्धति की सदोषता इसका प्रमाण है, जो भक्तिकाव्य तथा रीतिकाव्य की कलात्मकता को पूरी तरह सामने लाने में असमर्थ ही बनी रही। वस्तुतः भारतीय काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों को भी हमें पाश्चात्य काव्यशास्त्र के ज्ञानालोक के परिपार्श्व में देखना है तभी हम उसके सत्पक्ष को समझ पायेंगे।

दोनों काव्यशास्त्री पद्धतियों में एक तात्विक अन्तर है। पाश्चात्य काव्यशास्त्र जहाँ प्रत्ययात्मक अधिक है, वहीं भारतीय काव्यशास्त्र वर्गीकरणात्मक अधिक है। प्लेटो से लेकर सार्त्र तक प्रायः सभी पाश्चात्य काव्यालोचकों ने किसी न किसी दार्शनिक आधार को लेकर अपनी सिद्धांत सारणि की प्रतिष्ठापना की है, वे काव्यालोचन में दार्शनिक, सौंदर्यशास्त्रीय, नैतिक, सामाजिक आदि दृष्टियों पर अधिक ज़ोर देते हैं, काव्य के स्वरूप के वर्गीकरण पर कम। उदाहरण के लिए नाटक के तत्वों और उनके अंगापांगों की जैसी लम्बी उद्धरणी, अलंकारों और काव्यदोषों का जैसा आलवाल भारतीय काव्यशास्त्र में मिलता है, वैसा वहाँ नहीं मिलता। वैसे रस, ध्वनि और वक्रोक्ति के सम्बन्ध में हमारे यहाँ भी विवेचन पद्धति कुछ प्रत्ययात्मक अवश्य है और इसका कोई न कोई निश्चित दार्शनिक आधार भी मिलता है, किन्तु इनमें भी अध्यापन में प्रायः विशेष

ज़ोर वर्गीकरण पर ही दिया जाता है। इसका एक दोष यह होता है कि विद्यार्थी कृति के केवल बाह्य पक्ष—अलंकार-रस—आदि की उद्धरणी ही को आलोचना समझ बैठता है और कृतिकार की कारयित्री शक्ति के मूल कारणों और उसकी अभिव्यक्ति के कार्यकारण सम्बन्ध को नज़र-अन्दाज़ कर देता है। यह स्थिति आधुनिक साहित्य के सम्बन्ध में और उभर आती है जहाँ अच्छे विद्यार्थी ही प्राचीन ढंग की काव्यालोचन पद्धति में दीक्षित होने पर इनके प्रभाव को ग्रहण नहीं कर पाते और जब वे नयी काव्य परंपरा में रस और अलंकार ढूँढ़ने चलते हैं या नयी कहानी में कहानी के छहों तत्त्वों को ढूँढ़ना चाहते हैं तो उनके पल्ले कुछ नहीं पड़ता। फलतः इन कृतियों को वे अराजकतावादी घोषित कर देते हैं और जो छात्र इन परम्पराओं के समुचित सौन्दर्यशास्त्रीय तथा सामाजिक मूल्य को समझ भी पाते हैं, वास्तव में उनकी दीक्षा विश्वविद्यालयीय पाठ्यक्रम से बाहर ही होती है और उनके निकट इस अध्यापन विधि का कोई महत्व नहीं रह जाता सिवाय परीक्षा उत्तीर्ण करने के। ऐसी स्थिति में काव्यशास्त्रीय अध्यापन विधि में परिवर्तन लाना आवश्यक हो गया है जिससे छात्र समग्र साहित्य और उसकी विविध परम्पराओं के समुचित मूल्य को परख सकें।

आज हिन्दी साहित्य का अध्ययन हमें केवल संस्कृत, हिन्दी या फारसी की साहित्यिक परम्पराओं के परिप्रेक्ष्य में ही नहीं करना पड़ता बल्कि हम भौगोलिक तथा सामाजिक परिस्थितियों को अलग होते हुए भी उसे विश्व साहित्य के साथ रख कर देखना चाहते हैं। फलतः हमारे काव्य-शास्त्रीय अध्यापन की दिशा ऐसी हो जो छात्रों को इस लक्ष्य सिद्धि के लिए भी उपयुक्त बना सके। हिन्दी के स्नातकोत्तर विद्यार्थी को दोनों काव्यशास्त्रीय पद्धतियों का ज्ञान इस प्रकार दिया जाय कि वे उसका साहित्य के सम्बन्ध में कुशलतापूर्वक व्यावहारिक तथा प्रायोगिक उपयोग कर सकें। भारतीय काव्यशास्त्र की मान्यताओं में रस, ध्वनि और वक्रोक्ति का अध्यापन करते समय उसके दार्शनिक मनोवैज्ञानिक तथा अभिव्यंजनात्मक पक्ष पर अधिक ज़ोर देने से ये सिद्धान्त आधुनिक परिस्थितियों के अनुरूप भी सिद्ध हो सकते हैं। अलंकारों के अध्यापन के विषय में प्रायः सिद्धान्तों में मत वैभिन्य दिखायी पड़ता है। कुछ विद्वान् पाठ्यक्रम से इनको सर्वथा हटा दिए जाने के पक्ष में हैं जो ठीक नहीं है। भारतीय परम्परा में अलंकारों का अध्ययन मूलतः अभिव्यंजना के प्रकार के रूप में किया जाता रहा है, ये उक्ति वैचित्र्य, विधान-मात्र चमत्कार सृष्टि के लिए प्रयुक्त न माने जाकर कथ्य के उपस्कारक के रूप में प्रयुक्त माने जाते रहे हैं। अलंकारों का काव्य के अप्रस्तुत व्यंग विधान से घनिष्ठ सम्बन्ध है और इनका अध्ययन केवल नामों, तालिकाओं, रटे-रटाए लक्षणों और उदाहरणों तक ही सीमित होने पर इनके महत्व को गिरा देता है। परम्परावादी शास्त्रीय ढंग से अलंकारों को पढ़ाये जाने पर छात्र उपमा और उत्प्रेक्षा रूपक और अतिशयोक्ति सन्देह और भ्रान्तिमान एक देश विवर्ती रूपक और समासोक्ति की अभिव्यंजना गत शैलियों के द्वारा सहृदय पाठक के मानस में बनने वाले बिम्बों को तारतमिक अन्तर को नहीं समझ पाते। मैं कई बार इस बात पर ज़ोर देता रहा हूँ कि अलंकारों की इस बिम्बात्मक स्थिति को काव्यग्रन्थों की व्याख्या के साथ ही स्पष्ट किया जाना चाहिए। सैद्धान्तिक काव्यशास्त्र के अध्यापन में केवल अलंकारों से सम्बद्ध मूलभूत सिद्धान्तों तक ही सीमित रहा जाय। ठीक ऐसी ही स्थिति अन्य वर्गीकरणात्मक

पद्धतियों की भी है। भारतीय काव्यशास्त्र में वर्गीकरण का आलवाल इतना बढ़ गया है कि उसने तत्तक सम्प्रदाय के मूलभूत सिद्धान्तों को दबोच लिया है, पर वर्गीकरणात्मक पद्धति की अध्यापन-विधि में भले ही दोष हो वर्गीकरण की शैली के अपने निजी गुण हैं अवश्य। आज हम काव्य की समग्र प्रभावान्वित की बात करते हैं पर समग्र प्रभावान्वित वस्तुत: काव्य के तत्तक अंगों की प्रभान्वित की पूर्णता है। अत: काव्य के समग्र प्रभाव का विश्लेषण करते समय हमें अंगों के प्रभावों का विश्लेषण करना अनिवार्य होगा और ऐसी दशा में वर्गीकरण शैली हमारी सहायता अवश्य करेगी। रस निष्पत्ति और साधारणीकरण की प्रक्रिया, लक्षणा तथा व्यंजना के प्रकार, वक्रोक्ति और अलंकार के भेदोपभेद नए ढंग से समझाए जाने पर आज भी हमारे साहित्यिक ज्ञान में उपयोगी सिद्ध होंगी। मेरा मतलब यह है कि हमें भारतीय काव्यशास्त्री सिद्धान्तों को आधुनिक सौन्दर्य-शास्त्र, काव्यशास्त्र तथा मनोविज्ञान से सहारा लेते हुए छात्रों को हृदयंगम कराने की पद्धति अपनानी चाहिए।

काव्यशास्त्रीय अध्यापन विधि का एक और दोष यह है कि हम इसके सैद्धान्तिक पक्ष पर ही अधिक ज़ोर देते हैं, प्रायोगिक पक्ष पर नहीं। पाठ्यक्रम में यह कमी बहुत खटकती है। इस सम्बन्ध में मेरे दो सुझाव हैं—हिन्दी स्नातकोत्तर परीक्षा में वैकल्पिक पत्रों में काव्यशास्त्र के एक विशिष्ट पत्र की व्यवस्था होनी चाहिए जिसमें गम्भीर सैद्धान्तिक अध्ययन के साथ साथ प्रायोगिक अध्ययन भी पाठ्यक्रम का अंग हो। इसके लिए विश्वविद्यालयों में ऐसी ट्यूटोरियल कक्षाओं का आयोजन किया जाय जिसमें काव्य उपन्यास आदि के प्रायोगिक काव्यालोचन की दीक्षा दी जाय। मैं यहाँ काव्य के सम्बन्ध में रिचर्ड्स के प्रैक्टिकल क्रिटिसिज़्म और एजरापाउण्ड के ए०-बी० सी० आफ रीडिंग तथा गद्य साहित्य के सम्बन्ध में आई० वी० आरनोल्ड तथा एन० डिनाकोनोवा की एनेलिटिक रीडिंग का हवाला देना चाहूँगा। इस पद्धति से प्रायोगिक काव्यालोचन का अध्यापन होने पर नि:सन्देह छात्र आलोचना को केवल किताबी ज्ञान न समझकर साहित्यिक अनुशीलन का अनिवार्य अंग समझने लगेंगे। दूसरे काव्यशास्त्र के विशाल आयाम को देखते हुए या तो इसके सौ अंगों के पूरे एक प्रश्नपत्र की व्यवस्था हो अथवा इसे दोनों वर्ष में नियत पचास पचास अंकों के पाठ्यक्रम के रूप में विभक्त कर पढ़ाया जाय।

अन्त में एक और सुझाव मैं यह भी देना चाहूँगा कि काव्यालोचन के पाठ्यक्रम केवल आचार्यों की काव्यशास्त्रीय मान्यताओं तक ही सीमित न रहे अपितु रचनाकारों की मान्यताओं पर भी अध्यापन में ज़ोर दिया जाय। पन्त, प्रसाद, निराला, महादेवी, अज्ञेय जैसे कृती रचनाकारों ने काव्य के विषय में जो मान्यताएँ स्थापित की हैं, यदि उनका ज्ञान विश्वविद्यालयीय अध्यापन के साथ न दिया जायगा तो हमारा अध्यापन एकांगी रहेगा। काव्यशास्त्रीय ज्ञान साहित्यिक अध्ययन की महत्वपूर्ण आधार शिला है, इसलिए इसे सामयिक, शैक्षणिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए ऐसा रूप देना अनिवार्य हो गया है कि यह केवल शास्त्रीय या एकेडेमिक ज्ञान की वस्तु ही न बना रहे।

डॉ० सत्यदेव चौधरी

विषय प्रवर्तन

सम्मान्य अध्यक्ष महोदय एवं विद्वन्मण्डल,

भारत के प्रायः सभी विश्वविद्यालयों में एम० ए० हिन्दी के पाठ्यक्रम में काव्यशास्त्र को भी किसी-न-किसी रूप में स्थान मिला हुआ है। इसका एकमात्र कारण यह है कि जिस प्रकार भाषा के सम्यक् ज्ञान के लिए व्याकरण के अध्ययन की आवश्यकता रहती है, उसी प्रकार उच्च कक्षाओं में काव्य के समीक्षण एवं समालोचन के लिए काव्यशास्त्र की अपेक्षा रहती है। इसीलिए व्याकरण के अनुरूप काव्यशास्त्र का भी पाठ्यक्रम में अपरिहार्य ही नहीं अपितु अनिवार्य समझा जाने लगा है। एम० ए० के विभिन्न पाठ्यक्रमों में कहीं इसे सौ अंक के सम्पूर्ण पत्र के रूप में स्थान मिला है और कहीं किसी और के विषय साथ, विशेषतः इतिहास के साथ, मिला कर इसके लिए पचास अंक नियत किए गये हैं, और प्रायः सभी विश्वविद्यालयों में यह अपेक्षा की जाती है कि छात्र भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्रीय प्रमुख मान्यताओं से सुपरिचित हों। जहाँ यह पत्र १०० अंक का होता है, वहाँ प्रायः ६० अंक भारतीय काव्यशास्त्र के लिए नियत रहते हैं। और शेष ४० अंक पाश्चात्य काव्य-शास्त्र के लिए। किन्हीं विश्वविद्यालयों में स्थिति इससे विपरीत अथवा किंचित् भिन्न भी है। पाश्चात्य काव्यशास्त्र के अन्तर्गत विशेषतः विभिन्न काव्य विधाओं—उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी, महाकाव्य, गीतिकाव्य, रेखाचित्र, रिपोर्ताज़ आदि के तत्व नियत रहते हैं, अथवा परीक्षाओं में प्रायः यही द्रष्टव्य होते हैं। कुछेक विश्वविद्यालयों में इनके अतिरिक्त कतिपय प्रसिद्ध काव्य शास्त्री या मान्यताओं के विषय में भी प्रश्न पूछे जाते हैं। उदाहरणार्थ, अनुकरण-सिद्धान्त, विरेचन-सिद्धान्त, काव्य में उदात्त तत्व, काव्यसत्य, त्रासदी, कामदी इत्यादि, और किन्हीं विश्वविद्यालयों में इन सबके अतिरिक्त कुछ एक पाश्चात्य काव्य-शास्त्रियों का अध्ययन भी पाठ्यक्रम में नियत किया गया है। उदाहरणार्थ, प्लेटो, अरस्तू, लोइंजाइनस, होरेस, कालरेज, क्रोचे, मैथ्यू आरनल्ड, आई० ए० रिचर्ड्स इत्यादि। निस्सन्देह स्नातकोत्तर कक्षाओं के लिए भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र का नियत किया जाना अपने आप में न केवल गौरवास्पद है, अपितु अत्यन्त स्पृहणीय भी है, क्योंकि आधुनिक हिन्दी-साहित्य भारतीय एवं पाश्चात्य, दोनों प्रकार के साहित्यों से प्रभावित है।

आज यहाँ हमारा विवेच्य विषय भारतीय काव्यशास्त्र से ही सम्बद्ध पाठ्यक्रम है।

हमारे विचार में काव्यशास्त्र १०० अंकों का पत्र रहना चाहिए जिसमें ६५ अथवा ७० अंक भारतीय काव्यशास्त्र के लिए नियत हों और शेष ३५ अथवा ३० अंक पाश्चात्य काव्यशास्त्र के लिए। पाश्चात्य काव्यशास्त्र में विभिन्न काव्य-विधाओं के तत्वों के अतिरिक्त कतिपय काव्य-शास्त्रीय मान्यताएँ भी नियत कर देनी चाहिए। भारतीय काव्यशास्त्र के अन्तर्गत ६५ अथवा

७० अंकों में से २० अंक पाँचों सम्प्रदायों—अलंकार-सम्प्रदाय, रीति-सम्प्रदाय, ध्वनि-सम्प्रदाय, वक्रोक्ति-सम्प्रदाय और रस-सम्प्रदाय के लिए नियत रहने चाहिए और इनके उपसंहार-स्वरूप 'काव्य की आत्मा किसे माना जाए' इस समस्या पर भी सम्यक् विवेचना पाठ्यक्रम में नियत करना अपेक्षित है। शेष ४५ अथवा ५० अंक निम्नोक्त विषयों के लिए नियत रहने चाहिए :—

१. काव्यस्वरूप (जिसमें निम्नोक्त अंग समाविष्ट हैं—काव्यलक्षण, काव्यहेतु, काव्य-प्रयोजन और विभिन्न दृष्टियों से काव्य-भेद)

२. शब्दशक्ति।

३. ध्वनि और गुणीभूतव्यंग

४. रस (यदि बिहारी और विद्यापति को दृष्टि में रख कर आवश्यक समझा जाय तो आलम्बन विभाव के अन्तर्गत 'नायक नायिका-भेद' भी)

५. रीति

६. गुण

७. अलंकार

८. दोष।

९. नाट्य-विधान

इन सभी काव्यांगों के विकास एवं सिद्धान्त पक्ष का ही अध्ययन अपेक्षित है, उदाहरण पक्ष पर विशेष बल देना समुचित नहीं है। विकास एवं सिद्धान्त पक्ष के अध्ययन एवं अध्यापन में अप्रख्यात, अनावश्यक एवं सामान्य कोटि की धारणाओं की चर्चा न की जाय तो श्रेयस्कर है। उदाहरणार्थ मम्मट के काव्यलक्षण पर विश्वनाथ द्वारा किए खण्डन का समग्र विवरण हिन्दी के छात्रों के लिए भारी भरकम रहेगा। इसी प्रकार काव्यहेतु एवं काव्य प्रयोजन पर चर्चा करते समय मम्मट-पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा स्वीकृत हेतुओं अथवा प्रयोजनों की परिगणना ऐतिहासिक दृष्टि से भले ही महत्वपूर्ण हो, किन्तु विषय निर्वाह की दृष्टि से यह नितान्त अनावश्यक है। इसी प्रकार रस के स्वरूप का विवेचन करते समय केवल विश्वनाथ प्रस्तुत प्रसिद्ध दो कारिकाओं "सत्वोद्रेकाद्-" आदि के ही समग्र घटकों की व्याख्या करना पर्याप्त रहेगा, क्योंकि पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा रस स्वरूप सम्बन्धी सभी धारणाएँ इन्हीं में गतार्थ हो जाती हैं। इसी प्रकार शब्दशक्ति नामक काव्यांग से सम्बन्धित दुरूह विषयों को भी स्थान नहीं मिलना चाहिए। केवल इन शक्तियों के भेदोपभेदों का स्वरूप मात्र प्रस्तुत करना ही पर्याप्त है। हाँ, अभिधा शक्ति और तात्पर्य वृत्ति का पारस्परिक भेद निर्दिष्ट कर देना अनभीष्ट न होगा। इसी प्रकार ध्वनि के केवल पाँच प्रमुख भेदों और गुणीभूत-व्यंग्य के केवल आठ प्रमुख भेदों से ही छात्रों को परिचित कराना चाहिए। ध्वनि-प्रकरण में भी दुरूह शास्त्रीय चर्चाएँ नितान्त अनपेक्षित हैं। उदाहरणार्थ, स्फोट और ध्वनि में पारस्परिक सम्बन्ध, व्यंजना की स्थापना इत्यादि पारिभाषिक शास्त्रीय चर्चाएँ पाठ्यक्रम में नियत नहीं रहनी चाहिए। इस प्रकार के विषय हिन्दी के छात्र के लिए आवश्यक नहीं हैं। रस-प्रकरण के अन्तर्गत निम्नोक्त विषय पाठ्यक्रम में नियत कर देने चाहिए :—

१. रसाभिव्यक्ति के साधन

२. रस का स्वरूप

३. रस निष्पत्ति

४. साधारणीकरण

इनके अतिरिक्त यदि आवश्यक समझा जाय तो निम्नोक्त समस्याओं को भी पाठ्यक्रम में स्थान दिया जा सकता है :—

१. श्रृंगार का रस-राजत्व

२. करुण रस का आस्वाद

३. शान्ति रस की नाटक में स्वीकृति अथवा अस्वीकृति

४. रसों की संख्या

भक्ति रस है अथवा भाव, यदि चाहे तो प्रेयान् रस है अथवा भाव

५. अद्भुत रस और अद्भुत तत्व में अन्तर

६. अंगी रस और अंग रस का सैद्धान्तिक परिचय

दोष प्रकरण में केवल १२–१५ प्रख्यात दोष ही पाठ्यक्रम में नियत करने चाहिए। ये दोष किस स्थिति में दोष नहीं रहते अथवा गुण बन जाते हैं—यदि इस प्रसंग को भी स्थान दिया जाय तो अनुचित नहीं होगा। गुण प्रकरण में केवल मम्मट सम्मत तीन गुणों का ही स्वरूप ज्ञान अपेक्षित हैं। वामन सम्मत १० शब्दगुणों और १० अर्थगुणों की परिचिति तथा खण्डन हिन्दी छात्र के लिए नितान्त अनावश्यक है। इसी प्रकार रीति-प्रकरण में विश्वनाथ द्वारा प्रतिपादित तीन रीतियों को ही स्थान देना पर्याप्त है। अलंकार प्रकरण में हमारे विचार में केवल एक ही प्रश्न महत्वपूर्ण है कि अलंकार का काव्य में स्थान क्या है ? इन्हीं प्रकरणों के अन्तर्गत निम्नोक्त प्रसंगों का भी सामान्य परिचय देना वांछनीय रहेगा—गुण और दोष का, गुण और रीति का, गुण और अलंकार का पारस्परिक सम्बन्ध तथा इन सबका रस के साथ सम्बन्ध।

नाट्य-विधान में रूपक के दस भेदों तथा नाट्यसन्धियों का सामान्य परिचय अपेक्षित है। उदाहरण यथासम्भव हिन्दी-नाटकों से ही देने चाहिए। 'रंगमंचीय वर्जनाएँ' भी इसी सम्बन्ध में ज्ञातव्य हैं, किन्तु रंगमंच-विषयक स्वरूप परिचिति अपेक्षित नहीं है। संस्कृत के काव्यशास्त्रीय कतिपय ग्रन्थों में कवि-शिक्षा पर भी प्रकाश डाला गया है, किन्तु उसका सम्बन्ध अधिकांशत: संस्कृत-साहित्य के साथ ही है। अत: यह हमारी विषय-सीमा से प्राय: बाहर ही है। छन्द:शास्त्र भी प्रकारान्तर से काव्यशास्त्र का ही अंग माना जाता है। पर हमारे विचार में एम० ए० कक्षा में इसे निर्धारित नहीं करना चाहिए।

पाठ्यक्रम का एक आवश्यक अंग है ग्रंथों का निर्धारण। संस्कृत के ग्रंथों को, जिनकी हिन्दी में विषद व्याख्याएं भी उपलब्ध हैं, पाठ्यक्रम में निर्धारित कर देना हमारे विचार में समुचित नहीं है। इसके कई कारण हैं। पहला यह कि हिन्दी के पाठक के लिए न केवल मूल पाठ अपितु टीका-भाग भी अत्यन्त दुरूह है। यहां तक कि साहित्य दर्पण की शालग्राम-प्रणीत हिन्दी विमला-टीका और काव्यप्रकाश की आचार्य विश्वेश्वर प्रणीत हिन्दी-व्याख्या की भी यही स्थिति है। दूसरा कारण यह कि संस्कृत के प्रत्येक ग्रंथ से छात्र को केवल एक ग्रंथकार की धारणाओं

की परिचिति प्राप्त होती है, उसमें उसे किसी काव्यतत्त्व का परम्परागत एवं विकसित रूप प्राय: उपलब्ध नहीं होता और तीसरा कारण यह कि इन ग्रंथों के उदाहरण संस्कृत में ही होते हैं।

इन ग्रंथों के उपरान्त दूसरा स्थान हिन्दी में लिखित एतद्विषयक उत्कृष्ट ग्रंथों का है। उदाहरणार्थ, काव्यकल्पद्रुम, साहित्यालोचन, रस-मीमांसा, चिन्तामणि के कुछ अंश, भारतीय साहित्य शास्त्र (दो खण्ड), काव्यदर्पण, रीतिकाल की भूमिका, सिद्धान्त और अध्ययन, भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका, ध्वनि संप्रदाय और उसके सिद्धान्त, रस सिद्धान्त : स्वरूप-विश्लेषण और रसगंगाधर का शास्त्रीय अध्ययन। यदि आज्ञा दे तो इसी सूची में दो अन्य ग्रन्थों को भी जोड़ दूं—भारतीय काव्यांग और काव्यशास्त्रीय निबन्ध। हमारे विचार में इनमें से अधिकतर ग्रंथ पाठ्यक्रम में अनुमोदित करने योग्य हैं। परन्तु इनमें से कोई एक ग्रंथ छात्रों की आवश्यकता को पूर्ण नहीं कर पाता, क्योंकि इनमें से किसी ग्रंथ में न तो उपरि-निर्धारित पाठ्यक्रम का पूर्णत: अथवा अधिकांशत: समावेश हो पाता है और न छात्रों की दृष्टि से इनमें विषयों का निर्वाह यथा-वश्यक तथा संतुलित रूप में प्रस्तुत किया गया है। यथावश्यक तथा संतुलित से मेरा तात्पर्य है उतना कथ्य, जितना कि २० अंक के प्रश्न के लिए समुचित रहे, अर्थात् जिसे एक मध्यम कोटि का छात्र परीक्षा-भवन में आधे घण्टे में लिख सके। क्योंकि इनमें विषय-सामग्री इतनी विषद् एवं विस्तृत रहती है कि अच्छे से अच्छे छात्र भी इससे ऊब सकते हैं। इसका दुष्परिणाम यह होता है कि छात्र निम्नतम कोटि के ग्रंथों की शरण लेने के लिए बाध्य हो जाता है। इस अभाव की पूर्ति के लिए हमारे विचार में उक्त ग्रंथों को अनुमोदित करने के साथ ही साथ ऐसा एक अन्य ग्रन्थ भी निर्धारित करना चाहिए जिसमें उपर्युक्त पाठ्यक्रम पूर्णत:, अथवा अंशत: समाविष्ट हो, और ऐसे ग्रंथ का प्रणयन किसी एक अधिकारी विद्वान् के सम्पादकत्व में करवाना चाहिए जो आठ-दस विद्वानों के सहयोग से इसे निष्पन्न करवा सकें। इसमें हिन्दी के वर्तमान साहित्य की गतिविधि को लक्ष्य में रख कर नूतन काव्य-सरणियों का भी समावेश होना चाहिए और समय-समय पर यथावश्यक रूप में परिवर्तन, परिवर्द्धन तथा संशोधन भी होता रहे। ऐसे ग्रंथ के निर्माण में इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि वह एक प्रकार से हिन्दी का अपना काव्यशास्त्र बन जाए। अर्थात् उसमें संस्कृत के केवल उन्हीं काव्यतत्त्वों, काव्यविधाओं और उनके केवल उन्हीं भेदोपभेदों को लिया जाय जो आदि काल से ले कर आधुनिक युग पर्यन्त हिन्दी साहित्य के साथ साक्षात् सम्बद्ध हों। इसमें उधर रीतिकालीन आचार्यों और इधर आधुनिक युग के काव्य चिन्तकों को भी केवल उन्हीं धारणाओं का समावेश किया जाए जो हिन्दी साहित्य की प्रकृति को लक्ष्य में रख कर निर्मित हुई हैं। साथ ही आधुनिक चिन्तकों की उन्हीं मान्यताओं को भी स्थान दिया जाए जो संस्कृत काव्यशास्त्रीय काव्यतत्व की केवल व्याख्या ही प्रस्तुत नहीं करती अपितु उन्हें किंचित नवीन रूप प्रदान करती है। उदाहरणार्थ—साधारणीकरण प्रसंग इसी कोटि के अन्तर्गत आता है। इसकी जितनी विशद् व्याख्या हिन्दी काव्यशास्त्र में हुई है उतनी संस्कृत काव्यशास्त्र में नहीं हुई। रस सिद्धान्त के अन्तर्गत सप्रेषणीयता का प्रश्न संभवत: आधुनिक युग की ही देन है और साधारणीकरण की विशद् व्याख्या का हमारे विचार में यही मूल कारण है। इधर इसके विपरीत इस ग्रन्थ में आधुनिक चिन्तकों की कतिपय अमान्य धारणाओं को—यदि

इन्हें अमान्य माना जाए तो—निराकरण कर दिया जाए। उदाहरणार्थ—"भामह, दण्डी और उद्भट इन अलंकारवादी आचार्यों को 'अलंकार्य एवं अलंकार' का ज्ञान न था", अथवा इन आचार्यों ने भरत-प्रतिपादित रस-सिद्धान्त से परिचित रहते हुए भी अलंकार-सम्प्रदाय की परिकल्पना की, अथवा चन्द्रालोक के प्रणेता जयदेव को उनके केवल एकमात्र कथन—

'अंगीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती .....'

आदि के बल पर भामह आदि के समान अलंकार-सम्प्रदाय का ही आचार्य मान लिया जाए, आदि, आदि।

इस ग्रंथ में संस्कृत उद्धरणों का समावेश किया जाए या नहीं यह प्रश्न भी विचारणीय है। हमारे विचार में उद्धरण अवश्य देने चाहिएं पर बहुत ही कम। इनमें से भी अत्यावश्यक एवं अनिवार्य उद्धरणों को तो मूल पाठ में स्थान देना चाहिए और शेष को पाद टिप्पणी अथवा परिशिष्ट रूप में। अत्यावश्यक अथवा अनिवार्य से हमारा तात्पर्य है जो उद्धरण किसी प्रमुख सिद्धान्त के प्रतिपादक अथवा निरूपक हों, व्याख्यात्मक न हों। उक्त दोनों स्थितियों में उद्धरणों का शुद्ध एवं पूर्ण अनुवाद दे देना समुचित रहेगा—स्थिति के अनुसार कहीं मूल पाठ में और कहीं पाद टिप्पणी में। छात्रों से क्या यह अपेक्षा की जाए कि वे उद्धरणों को भी स्मरण करें? हमारे विचार में इसकी आवश्यकता नहीं है। यह ठीक है कि परीक्षक महोदय पर उद्धरणों का अनायास अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। पर यदि इस विषय में उन्हें स्पष्टतः आदिष्ट कर दिया जाएगा तो इस प्रभाव की बहुत सीमा तक कम हो जाने की संभावना हो सकती है। हाँ, इन उद्धरणों का शुद्ध अनुवाद तो परीक्षार्थियों से अपेक्षित है ही।

'हिन्दी का काव्यशास्त्र अपना होना चाहिए', जब मैंने सर्व प्रथम यह वाक्य सुना था तो मेरे मन में पहली प्रतिक्रिया यह हुई थी कि आदि काल से ले कर आधुनिक युग तक प्रणीत हिन्दी के श्रेष्ठ ग्रंथों का, इस प्रसंग में कहना चाहें तो, लक्ष्य ग्रंथों का सम्यक् अध्ययन एवं अवलोड़न करने के उपरान्त एक नूतन काव्यशास्त्र की रचना संस्कृत काव्यशास्त्रीय मान्यताओं से नितान्त अलग रह कर की जाए। किन्तु यह विचार जितना नितांत आदर्श एवं अनुपेक्षणीय है उतना ही यह अपने-आप में अव्यावहारिक एवं परिकल्पनात्मक है। इसी कारण उपर्युक्त ढंग पर उपर्युक्त ग्रंथ की रचना का सुझाव प्रस्तुत किया गया है।

ऊपर हमने स्पष्टतः संकेत किया है कि ६५ अंक के काव्यशास्त्रीय पाठ्यक्रम में केवल प्रख्यात तथा हिन्दी साहित्य की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए निर्वाचित प्रसंगों को ही स्थान देना चाहिए, किन्तु यदि कोई छात्र इसका विस्तृत अध्ययन करना चाहें तो मैं अधिकारी वर्ग को यह सुझाव दूँगा कि एम० ए० परीक्षा में अन्य अनेक ऐच्छिक (optional) विषयों के साथ इसे भी एक ऐच्छिक विषय के रूप में रख दिया जाय और काव्यशास्त्र का यह विशेष पत्र भाव-सामग्री की व्यापकता तथा गम्भीरता दोनों दृष्टियों से काव्यशास्त्र के सामान्य पत्र की अपेक्षा स्वभावतः कहीं अधिक उच्चतर होगा। इसी विशेष काव्यशास्त्र के पत्र को लेने वाले छात्र इसके साथ-साथ सामान्य काव्यशास्त्र के पत्र को भी ले सकते हैं। यह ठीक उसी प्रकार होगा जिस प्रकार एम० ए० संस्कृत परीक्षा में व्याकरण का वैकल्पिक रूप से विशेष अध्ययन करने वाले छात्र को व्याकरण

के सामान्य पत्र को भी अनिवार्यतः लेना पड़ता है। इस विशेष काव्यशास्त्र के पत्र लेने का लाभ इस छात्र को यह मिलेगा कि वह आगे चल कर इस संबंध में अनुसंधान कार्य, अथवा अनुवाद-कार्य कर सकेगा।

अन्त में यह विचारणीय है कि क्या काव्यशास्त्र का पाठ्यक्रम सभी विश्वविद्यालयों के लिए एक समान रहे। हमारे विचार में समुचित यही है कि यह एक समान ही हो। इसका एक कारण तो यह है कि काव्यशास्त्रीय मान्यताएँ शाश्वत हैं। अतः वे हिन्दी-भाषी और हिन्दी-तर-भाषी दोनों प्रदेशों में किसी भाषा के कम जानने अथवा बहुत जानने, शीघ्र जान लेने अथवा देर से जान लेने के साथ सम्बद्ध नहीं हैं। दूसरा कारण यह है कि हमारा काव्यशास्त्र संस्कृत से प्रभावित होने के कारण सभी विश्वविद्यालयों के लिए एक ही समान—यदि इसे सरल कहें तो सरल, और यदि जटिल कहें तो जटिल—रहेगा।

मुझे अधिकारी वर्ग के प्रति अपना विनम्र आभार प्रकट करना है जिन्होंने मुझे इस विद्वत् गोष्ठी में अपने विचार प्रकट करने का अवसर प्रदान किया।

डॉ० सावित्री सिनहा

विषय-प्रवर्तन

आदरणीय अध्यक्ष महोदय तथा विद्वान् बन्धुओ,

कल शाम को निदेशक महोदय की आज्ञा हुई कि मैं आज सुबह इतिहास-गोष्ठी का प्रवर्तन करूँ। आज्ञा का पालन आवश्यक था, परन्तु आपके समक्ष बोलते हुए मेरे मन में काफ़ी हिचक है, इतने कम समय में मैं आपके सामने कुछ सुविचारित प्रश्न रख सकूँगी, इसका मुझे विश्वास नहीं है, परन्तु फिर भी अपने अनुभवों के आधार पर और स्मृतियों के सहारे मैं कुछ कहने का प्रयत्न कर रही हूँ। मुझे इस बात का आश्वासन भी है कि मैं अपने सहयोगी अध्यापक वर्ग के सामने ही अपनी बात कहने जा रही हूँ जो यह जानता है कि बिना तैयारी किये हुए कक्षा में जाने वाले अध्यापक की क्या हालत होती है। फिर यह तो विद्वानों की सभा है।

इतिहास के प्रश्नपत्र की समस्या अन्य पत्रों से भिन्न है, क्योंकि पाठ्य-ग्रन्थों की सीमा से मुक्त होने के कारण ग्रन्थों के निर्धारण और चुनाव की समस्या इस प्रश्नपत्र को लेकर नहीं उठती। साहित्य के इतिहास के अध्ययन-अध्यापन का प्रमुख ध्येय होता है विद्यार्थी के मस्तिष्क को पाठ्य-ग्रन्थों की सीमा से निकाल कर एक व्यापक पृष्ठभूमि में साहित्य का अध्ययन करने की प्रेरणा देना। इसलिए इतिहास के अध्यापन के समय हमारी दृष्टि में यही ध्येय सर्वप्रमुख रहना चाहिए। कई विश्वविद्यालयों में इस प्रश्नपत्र में इतिहास के साथ भाषा विज्ञान, काव्यशास्त्र अथवा किसी भारतीय भाषा साहित्य के इतिहास का अध्ययन भी सम्मिलित है। मेरे विचार से इस प्रकार के विभाजन द्वारा न हम इतिहास के साथ न्याय कर पाते हैं और न इस प्रश्नपत्र में सम्मिलित दूसरे विषयों के साथ। इस प्रकार की व्यवस्था से इतिहास दृष्टि के व्यापक परिप्रेक्ष्य का उद्देश्य ही खण्डित हो जाता है।

एक विश्वविद्यालय में इतिहास के प्रश्नपत्र को बिल्कुल ही उड़ा दिया गया है और युग-विशेष से सम्बद्ध साहित्य अथवा काव्य के प्रश्नपत्र में ही उसका इतिहास जोड़ दिया गया है। यह विभाजन बिल्कुल अवैज्ञानिक है। जिस प्रकार एक राष्ट्र और देश के विभिन्न युगों का अलग अलग महत्व और अलग अलग जीवन-दर्शन होता है, परन्तु उसकी समग्रता को आत्मसात् करने के लिए उसे इतिहास की सतत परम्परा में रख कर देखना पड़ता है, उसी प्रकार किसी भी भाषा का साहित्य अपने अतीत और वर्तमान की सीमाओं में ही अपने पूर्ण और व्यापक रूप में पहिचाना जा सकता है। इस प्रकार का खण्डित विभाजन किसी भी प्रकार उचित नहीं है।

हिन्दी साहित्य के प्राचीन और मध्ययुगीन इतिहास के अध्यापन की समस्याएँ आधुनिक काल के इतिहास के अध्यापन की समस्याओं से भिन्न हैं। इसलिए मैं उनसे सम्बद्ध समस्याओं को आपके सामने अलग अलग ही रखना चाहूँगी।

जहाँ तक हिन्दी साहित्य के आदिकाल के अध्यापन का प्रश्न है, उसके सम्बन्ध में प्राप्त

सामग्री प्रामाणिक और यथेष्ट है, महापण्डित राहुल सांकृत्यायन और आ० हज़ारीप्रसाद द्विवेदी जैसे दिग्गज अन्वेषकों के अध्यवसाय के फलस्वरूप अध्यापक को उस युग के इतिहास की सामग्री के लिए भटकना नहीं पड़ता, लेकिन इस सामग्री के उपयोग और उसकी व्यवस्था को लेकर विशेष सचेत रहने की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए वीरगाथा काल की एक कालरेखा है, लेकिन उस कालरेखा के बाद की कृतियाँ भी इस काल के अन्तर्गत ले ली जाती हैं इससे प्रवृत्ति की सततता का निरूपण तो हो जाता है, लेकिन उससे ऐतिहासिक दृष्टि खण्डित हो जाती है। दूसरी ओर कालक्रम को प्रधान मान कर कई बार विद्यापति की रचनाओं को भी आदिकाल के अन्तर्गत रख दिया जाता है। इस प्रकार के व्यतिक्रमों के प्रति अध्यापक को विशेष रूप से सतर्क रहने की आवश्यकता होती है, क्योंकि चाहे जागरूक विद्यार्थी इस सामग्री का उपयोग करते समय इन व्यतिक्रमों का निराकरण करने में समर्थ हो सकता हो, कक्षा का औसत छात्र विभिन्न इतिहास ग्रन्थों की सामग्री का समन्वय करने की परवाह नहीं करता। इस काल के सम्बद्ध इतिहास सम्बद्ध प्रश्नों का रूप भी बँधा-बँधाया हो गया है। पृथ्वीराज रासो अथवा बीसलदेव रासो की प्रामाणिकता, रासो में कथानक रूढ़ियाँ इत्यादि कुछ निश्चित प्रश्न हैं, जिनको दृष्टि में रख कर विद्यार्थी इस काल से सम्बद्ध इतिहास की तैयारी परीक्षा की दृष्टि से कर लेता है। एक मुश्किल तब और पड़ जाती है जब अधकचरे हाथ इतिहास को गत्यात्मक बनाने के लिए नयी सूझ-बूझ से काम लेते हैं और हमारे विद्यार्थी समझे बिना उनकी दृष्टि को ग्रहण कर लेते हैं और नई सामग्री उनके लिए उपयोगी होने के स्थान पर अहितकर हो जाती है। अधिकतर इतिहास का अध्यापन करते समय आचार्य शुक्ल के इतिहास को आधारभूत ग्रन्थ के रूप में ग्रहण किया जाता है, लेकिन जब हम प्राचीन और मध्य-कालीन इतिहास से सम्बद्ध नयी शोध-सामग्री का उपयोग करते हैं तो एक व्यतिरेक की स्थिति का सामना करना पड़ता है। एक उदाहरण मैं आपके सामने रखती हूँ। हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य परम्परा के अन्तर्गत हम उसी परम्परा को रखते रहे हैं जिसकी पृष्ठभूमि में सूफ़ी दर्शन रहा है, लेकिन प्रेमाख्यानक काव्य का विवेचन करते समय नये शोध के अनुसार अगर भक्तियुगीन वैष्णव आख्यान काव्यों को भी हम इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत रखते हैं तो हम स्थापित मान्यता से अलग जाने पर बाध्य होते हैं। अध्यापक यदि नये शोध को इस परम्परा के अन्तर्गत स्थान नहीं देता तो उसका ज्ञान पुराना माना जायगा, और यदि उसे सम्मिलित करता है तो अब तक मान्य ऐतिहासिक दृष्टि का खण्डन होता है, ऐसी स्थिति में अध्यापक के लिए एक आलोचक की निर्भ्रान्त दृष्टि अनिवार्यतः अपेक्षित हो जाती है।

मध्यकालीन साहित्य के इतिहास का दायित्व कुछ वर्षों पहले मेरे ऊपर था, मैंने जितना ही उसका अध्ययन किया मेरी यह धारणा दिनोंदिन पुष्ट ही होती गयी कि इस युग के साहित्य का अध्ययन एक पूर्वाग्रह के साथ किया गया है। मध्यकालीन भक्तिसाहित्य जिस परिप्रेक्ष्य में पल्लवित हुआ है, उसके प्रभाव और महत्व को हम अपनी दृष्टि से बिल्कुल ओझल रखते रहे हैं। कृष्ण भक्ति काव्य में प्रेम लक्षणा भक्ति को ही महत्व देने का औचित्य सिद्ध करते हुए वल्लभाचार्य ने यह स्पष्टीकरण दिया था कि यही भक्ति इस विलासप्रधान युग के अनुकूल जान पड़ती है, हम उसके कथन का उल्लेख मात्र करके छोड़ देते हैं। इस युग-दर्शन का तत्कालीन काव्य-प्रवृत्तियों पर जो

प्रभाव पड़ा उन तथ्यों की हम उपेक्षा कर रहे हैं। हमारा दृष्टिकोण रूढ़िवादी रहा है, हममें हिम्मत नहीं है कि हम पुरानी स्थापनाओं का पुनर्परीक्षण करें।

कृष्ण भक्ति काव्य के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न आपके सम्मुख रखना चाहती हूँ :—

वर्तमान अध्यापन की प्रणाली में यह साहित्य और उसका दर्शन क्या संपृक्त हो पाता है ? सिद्धान्त ग्रन्थों की दार्शनिकता पर हम बल देते हैं पर उस तत्व की अनुभूति हम उस काल के माध्यम से नहीं कर पाते, उसमें व्यक्त विविध व्यापारों और भावों के साथ तादात्म्य हम सहज मानवीय स्तर पर ही करते हैं। स्निग्ध और आर्द्र लौकिक भावनाएँ ही इस काव्य के रसास्वाद में सहायक होती हैं, आध्यात्मिक प्रतीक और दार्शनिक विवेचन से रस की समाहिति खण्डित हो जाती है। आज की बौद्धिक दृष्टि में अपार्थिव के प्रति राग के उन्नयन की यह स्थिति अविश्वसनीय सी हो उठती है। दूसरे शब्दों में, भक्ति के औदात्य की अनुभूति के अभाव में भक्ति रस के आस्वाद के लिए हमारा सहृदय दुष्ट सिद्ध हो जाता है। मेरे सामने सदैव यह प्रश्न रहा है कि छात्रों को इस विषय में निर्भ्रान्त दृष्टि कैसे दी जाये।

मध्यकालीन भक्ति काव्य से सम्बद्ध अनेक उच्चकोटि के शोध प्रबन्ध प्रकाशित हो चुके हैं; परन्तु प्रायः उन सभी ग्रन्थों में सिद्धान्त-विवेचन करके अन्वेषकों ने अपने दायित्व की समाप्ति मान ली है।

प्रायः ऐसा मान कर चला जाता है कि कृष्ण भक्ति साहित्य युग निरपेक्ष था। परन्तु थोड़ा-सा विचार करने पर भी ऐसा सिद्ध हो जाता है कि यह भक्ति अपने समय के समस्त सांस्कृतिक और कलात्मक आन्दोलनों के विकास में सक्रिय और सचेष्ट योगदान दे रही थी। आज भी मन्दिरों में चलती हुई संगीत परम्पराओं और चित्र कला के अवशेष इस बात का स्पष्ट संकेत देते हैं कि मध्य-कालीन दरबारी आश्रयों के समकक्ष ही 'कृष्ण' के आश्रय में भी कला और संस्कृति की परम्पराएँ विकास पा रही थीं। मन्दिरों में चलती हुई तनुजा, और वित्तजा सेवाओं के अवशेष और तद्जन्य अपव्यय, आज भी हमें बहुत कुछ सोचने की सामग्री दे जाते हैं, परन्तु इस 'दुस्साहस' का साहस कौन करे ? सखी सम्प्रदाय, राधावल्लभ सम्प्रदाय और रसिक सम्प्रदाय की साधना-विधियों में सब कुछ स्वस्थ और सामाजिक है, कहीं कुछ रुग्णता और विकृति नहीं है, अन्धी आस्था और जीर्ण परम्परा-भुक्त दृष्टि ही ऐसा विश्वास कर सकती है। जो आलोचक मैथिलीशरण गुप्त के युगानुकूल आधु-निक प्रयोगों को मर्यादा का खण्डन कह कर पुकारते हैं, उन्हे रसिक सम्प्रदाय में मर्यादा पुरुषोत्तम राम के 'लीलारूप' तथा उनकी क्रीड़ाओं में कोई विकृति नहीं दिखायी देती, यह देख कर आश्चर्य होता है। मध्ययुगीन वैष्णव भक्ति अपने युग के परिप्रेक्ष्य में नहीं उभरने पाई है। उस युग की पतनशील प्रवृत्तियों का उद्घाटन हमारे साहित्य के इतिहास में वैज्ञानिक रूप से नहीं हुआ है। साहित्य अपने ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से भी असम्पृक्त रह गया है।

रीतिकाल के विषय में कुछ कहते हुए मुझे डर लगता है। डॉ० रसाल और डा० नगेन्द्र जैसे इस युग के विशेषज्ञों की उपस्थिति में मैं क्या कहूँ, व्यक्तिगत रूप से मैं इसे हीन रुचि और स्थूल मूल्यों का देहाभिमुखी काव्य मानती रही हूँ। जिस कविता के प्रतिपाद्य के प्रति ही सहृदय की दृष्टि सहानुभूतिपूर्ण न हो, उसके विषय में उसका मौन रहना ही ठीक होगा।

मध्यकालीन साहित्य के इतिहास को भी लगभग १५–२० प्रश्नों में बाँध दिया गया है—इसलिए इतिहास पढ़ाने का ध्येय भी परीक्षा-ध्येय के सामने गौण पड़ जाता है।

आधुनिक साहित्य के इतिहास के अध्यापन में युग की पृष्ठभूमि और साहित्य की असम्पृक्तता का प्रश्न नहीं उठता, क्योंकि वह काल बहुत निकट का है। लेकिन कुछ विचारणीय तथ्य यहाँ भी हैं। आधुनिक साहित्य का आरम्भ भारतेन्दु काल से माना जाता है। भारतेन्दु युग में मध्यकालीन काव्य की परम्परा भी चलती रही और यथार्थवादी वातावरण में भी अनेक महत्वपूर्ण कविताओं की रचना हुई, परन्तु हमारे इतिहास में इसका आकलन उचित रूप में नहीं हुआ। जिसके फलस्वरूप श्री वात्स्यायन जैसे विद्वान् भी इस प्रकार का निष्कर्ष देते हैं कि "भारतेन्दुयुगीन नाटक यथार्थवादी हैं और कविता रसवादी" भारतेन्दुयुगीन यथार्थवादी कविता का आकलन नये रूप में होना आवश्यक है। यद्यपि कला और सौष्ठव की दृष्टि से उसका महत्व अधिक नहीं है, परन्तु विद्यार्थी को 'आधुनिकता' के इस प्रारम्भिक रूप का ज्ञान होना बहुत आवश्यक है।

सन् १९३५–३६ तक के साहित्य का इतिहास मात्रा तथा गुण दोनों की दृष्टि से यथेष्ट है। डॉ० वार्ष्णेय तथा डॉ० श्रीकृष्णलाल के इतिहास ग्रन्थ उस युग के साहित्य के अमूल्य सन्दर्भ-ग्रन्थ हैं, परन्तु दो व्यक्तित्वों का विचार धरातल अलग अलग ही हो सकता है, इसलिए ऐसे किसी ग्रन्थ का नाम नहीं लिया जा सकता जिसमें इस युग का साहित्य पाठक को अखण्डित दृष्टि दे सकता हो।

मैंने सन् १९३५–३६ इसलिए कहा, क्योंकि यहीं पर कथा साहित्य में प्रेमचन्द युग समाप्त होता है और यहीं से छायावादोत्तर युग का आरम्भ माना जाता है। आधुनिक साहित्य के अध्यापन से सम्बद्ध समस्याओं का उल्लेख मैं कल कर चुकी हूँ। इसलिए उन्हें फिर से दुहराने का कोई लाभ नहीं होगा। केवल इतना कहना चाहती हूँ कि गांधी युग की जो व्यावहारिक भूमि उस युग के साहित्य में सुरक्षित है उसका उद्घाटन और मूल्यांकन बहुत आवश्यक है, क्योंकि अगली पीढ़ी के लिए वह युग इतिहास का युग होगा समसामयिक नहीं।

छायावादोत्तर कविता के विषय में प्रचलित कुछ धारणाओं की ओर मैं आपका ध्यान आकर्षित करना चाहती हूँ। हिन्दी साहित्य के इतिहास में छायावाद युग के बाद एकदम प्रगतिवाद का युग आ जाता है। ऐसा लगता है कि गान्धी का आलोक जैसे बिजली का बटन दबा कर बुझा दिया गया और दूसरे बटन से मार्क्स का आलोक फैल गया और हमारे नवयुवक (तब के) कवियों की आँखें उसकी जगमगाहट से चकाचौंध हो उठीं। परन्तु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है, भारत के नवयुवकों के लिए देशज प्रेरणा-स्रोतों का अभाव नहीं था, भगतसिंह की शहादत और क्रान्तिकारी आन्दोलनों के फलस्वरूप उस युग के युवक ज्वालामुखी बने हुए थे, साम्यवाद से उनको नैतिक सम्बल मिला, यह बात मानी जा सकती है। परन्तु उसी की प्रेरणा से उस युग के युवकों ने क्रान्ति के गीत गाये, यह कहना बिल्कुल गलत है। परन्तु मार्क्सवाद के प्रचार के नारों के फलस्वरूप देशज आन्दोलनों के प्रभाव का निरूपण बिल्कुल ही उपेक्षित रह गया है।

इसी प्रकार, छायावाद की प्रच्छन्न और सांकेतिक शृंगार चेतना को बच्चन, नरेन्द्र, सुमन, भगवतीचरण वर्मा और अंचल इत्यादि कवियों ने जो मुखर और मुक्त रूप दिया, वर्तमान इतिहास

ग्रन्थों में उनका मूल्यांकन स्वतन्त्र रूप से नहीं हुआ है। 'बच्चन' जैसे कवि इस प्रकार हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियों से अलग एक 'स्फुट' कवि के रूप में ही शेष रह जाते हैं। छायावादोत्तर कवियों के मुक्त शृंगार की अभिव्यक्ति, मार्क्सवाद के सिद्धान्त में काम तत्व की प्रधानता के कारण हुई अथवा छायावाद की प्रच्छन्न शृंगारिक चेतना की प्रतिक्रियास्वरूप उसने रूप ग्रहण किया, यह प्रश्न भी मैं आपके समक्ष रखना चाहती हूँ।

प्रेमचन्दोत्तर कथा साहित्य प्रसादोत्तर नाट्य साहित्य तथा शुक्लोत्तर आलोचना उचित और सही ऐतिहासिक परिपार्श्व में नहीं व्यक्त हो सकी है। इन विषयों से सम्बद्ध शोध प्रबन्धों में इतिहास-दृष्टि प्रायः नहीं है, नये साहित्यकार पुराने प्रतिष्ठित लेखकों की भूमि को खोखली और पोली सिद्ध करके परम्पराओं के आमूल चूल ध्वंस और उनकी निरर्थकता की बातें करके अपने नवीन मूल्यों और नयी भूमियों को ही सार्थक और ग्राह्य सिद्ध करने की कोशिश कर रहे हैं। स्पष्ट है कि इतिहास दृष्टि यहाँ भी खण्डित और विकृत हो रही है। मुझे तो कई बार ऐसा अनुभव होता है कि आचार्य शुक्ल की शास्त्रीय दृष्टि तो उनके परवर्ती आलोचकों को मिली है—उसका संवर्धन भी हुआ है, परन्तु उनकी इतिहास-दृष्टि जैसे उन्हीं के साथ समाप्त हो गयी है। आज के आचार्य विद्वान् गम्भीर शास्त्रीयता और आलोचना को ही अपना दायित्व मान रहे हैं और इतिहास लेखन की व्यापकता और समग्रता को 'तथ्य संकलन' की स्थूल दृष्टि मान कर उसकी उपेक्षा की जा रही है। नये साहित्य (सन् १९३६ के बाद के) में परम्पराओं और नये प्रयोगों के निर्धारण और मूल्यांकन की बहुत आवश्यकता है। समसामयिक साहित्य के विषय में केवल इतना कहना चाहती हूँ कि मेरे मत में हिन्दी साहित्य के इतिहास का यह नवीनत म अध्याय भी अपने पूर्ववर्ती किसी भी अध्याय की भाँति ही महत्वपूर्ण है।

इस प्रश्नपत्र के अध्यापन और परीक्षण में भी नयी और वैज्ञानिक दृष्टि की आवश्यकता है इससे सम्बद्ध प्रश्न पुराने ढाँचे पर बने हुए परम्परा के चौखटे में जकड़े हुए जड़ और रूढ़िबद्ध हो गये हैं। केवल एक उदाहरण दूँगी—परीक्षकों का एक प्रिय प्रश्न है "भक्तिकाल हिन्दी साहित्य के इतिहास का स्वर्ण काल है।" जिस युग में एम० ए० की परीक्षाएँ आरम्भ हुई थीं और हिन्दी के पास समृद्ध परम्पराओं की तुलना में नयी चेतना की जीवन्त निधि बहुत कम थी, उस युग के लिए तो इस प्रकार के प्रश्न ठीक थे। परन्तु आज के साहित्य में विषय, रूप और शैली सभी ही क्षेत्रों की व्यापकता, वैविध्य, गाम्भीर्य, सूक्ष्मता, गहनता इत्यादि के प्रकाश में क्या इस प्रकार के प्रश्न कृत्रिम और असत्य नहीं जान पड़ते? मैं अपने सहकर्मी प्राध्यापकों और परीक्षकों का ध्यान इस प्रकार के अनेक प्रश्नों की ओर भी आकर्षित करना चाहती हूँ।

हिन्दी साहित्य के इतिहास के अंकन में सबसे अधिक उपेक्षा हुई है महिला साहित्यकारों के योगदान की। स्वतन्त्रता के इस युग में इस 'परिगणित जाति' के प्रति भी न्यायपूर्ण और उदार दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

मैं निदेशक महोदय को एक बार फिर धन्यवाद देती हूँ, जिन्होंने मुझे आप जैसे विद्वानों के समक्ष अपने विचार प्रकट करने का अवसर दिया।

परिशिष्ट—३

विविध पाठ्य-क्रमों का विश्लेषण

विभिन्न विश्वविद्यालयों के हिन्दी स्नातकोत्तर कक्षाओं के पाठ्य-क्रम का विश्लेषण

१. प्रश्नपत्र संख्या—

(क) नौ प्रश्नपत्र—

केरल विश्वविद्यालय, मैसूर विश्वविद्यालय, प्रयाग विश्वविद्यालय। लखनऊ विश्वविद्यालय।

(ख) आठ प्रश्नपत्र—

आगरा विश्वविद्यालय, उत्कल विश्वविद्यालय, उस्मानिया विश्वविद्यालय, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, जबलपुर विश्वविद्यालय, जम्मू और कश्मीर विश्वविद्यालय, जोधपुर विश्वविद्यालय, दिल्ली विश्व-विद्यालय, नागपुर विश्वविद्यालय, पंजाब विश्वविद्यालय, पंजाबी विश्वविद्यालय, बनारस विश्व-विद्यालय, भागलपुर विश्वविद्यालय, मराठवाड़ा विश्वविद्यालय, राजस्थान विश्वविद्यालय, विक्रम विश्वविद्यालय, विश्वभारती विश्वविद्यालय, श्रीवेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, सरदार वल्लभ भाई विद्यापीठ, सागर विश्वविद्यालय।

(ग) छः प्रश्नपत्र—

गुजरात विश्वविद्यालय, पूना विश्वविद्यालय, बड़ौदा विश्वविद्यालय, शिवाजी विश्व-विद्यालय, एस० एन० डी० टी० महिला विश्वविद्यालय, बम्बई विश्वविद्यालय।

२. मौखिक परीक्षा

केरल विश्वविद्यालय, जबलपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर विश्वविद्यालय, मैसूर विश्व-विद्यालय, विक्रम विश्वविद्यालय, सागर विश्वविद्यालय, प्रयाग विश्वविद्यालय।

नोट : प्रश्नपत्र वाले विश्वविद्यालयों में दो सहायक प्रश्नपत्र भी होते हैं।

३. (क) आधुनिक काव्य (एक प्रश्नपत्र)

आगरा विश्वविद्यालय, उत्कल विश्वविद्यालय, उस्मानिया विश्वविद्यालय, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, केरल विश्वविद्यालय, गुजरात विश्वविद्यालय, गुरु-कुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, जम्मू और कश्मीर विश्वविद्यालय, जोधपुर विश्वविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नागपुर विश्वविद्यालय, पंजाब विश्वविद्यालय, पंजाबी विश्वविद्यालय, बनारस

विश्वविद्यालय, भागलपुर विश्वविद्यालय, मराठवाड़ा विश्वविद्यालय, मैसूर विश्वविद्यालय, राजस्थान विश्वविद्यालय, लखनऊ विश्वविद्यालय, विक्रम विश्वविद्यालय, श्रीवेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, सरदार वल्लभ भाई विद्यापीठ, सागर विश्वविद्यालय, बम्बई विश्वविद्यालय, बम्बई।

(ख) आधुनिक काव्य तथा गद्य—(एक प्रश्नपत्र)

पूना विश्वविद्यालय, बड़ौदा विश्वविद्यालय, विश्वभारती विश्वविद्यालय, शिवाजी विश्वविद्यालय, एस० एन० डी० टी० महिला विश्वविद्यालय।

(ग) आधुनिक काव्य और रीतिकाव्य—(एक प्रश्नपत्र)

जबलपुर विश्वविद्यालय, प्रयाग विश्वविद्यालय।

४. हिन्दी गद्य —(एक प्रश्नपत्र)

आगरा विश्वविद्यालय, उत्कल विश्वविद्यालय, उस्मानिया विश्वविद्यालय, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, केरल विश्वविद्यालय, गुजरात विश्वविद्यालय, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, जबलपुर विश्वविद्यालय, जम्मू और कश्मीर विश्वविद्यालय, जोधपुर विश्वविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नागपुर विश्वविद्यालय, पंजाब विश्वविद्यालय, पंजाबी विश्वविद्यालय, बनारस विश्वविद्यालय, प्रयाग विश्वविद्यालय, भागलपुर विश्वविद्यालय, मराठवाड़ा विश्वविद्यालय, मैसूर विश्वविद्यालय, राजस्थान विश्वविद्यालय, लखनऊ विश्वविद्यालय, विक्रम विश्वविद्यालय, विश्वभारती विश्वविद्यालय, श्रीवेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, सरदार वल्लभभाई विद्यापीठ, सागर विश्वविद्यालय, बम्बई विश्वविद्यालय।

टिप्पणी—शेष के लिए ३ ख देखिये।

५. (क) मध्यकालीन काव्य (एक प्रश्नपत्र)

आगरा विश्वविद्यालय, गुजरात विश्वविद्यालय, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, जोधपुर विश्वविद्यालय, बड़ौदा विश्वविद्यालय, मराठवाड़ा विश्वविद्यालय, राजस्थान विश्वविद्यालय, लखनऊ विश्वविद्यालय, विक्रम विश्वविद्यालय, विश्वभारती विश्वविद्यालय, (निर्गुण धारा) श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, सरदार वल्लभभाई विद्यापीठ, सागर विश्वविद्यालय।

(ख) भक्तिकाव्य—(एक प्रश्नपत्र)

उत्कल विश्वविद्यालय, कलकत्ता विश्वविद्यालय, केरल विश्वविद्यालय, विश्वभारती विश्वविद्यालय।

(ग) संत साहित्य तथा प्राचीन काव्य (एक प्रश्नपत्र)

उत्कल विश्वविद्यालय, बनारस विश्वविद्यालय और मैसूर विश्वविद्यालय।

(घ) मध्यकालीन एवं प्राचीन साहित्य (एक प्रश्नपत्र)

उस्मानिया विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, जम्मू और कश्मीर विश्वविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नागपुर विश्वविद्यालय। बम्बई विश्वविद्यालय।

(ङ) सगुण तथा रीति काव्य (एक प्रश्नपत्र)
बनारस विश्वविद्यालय, मैसूर विश्वविद्यालय।

(च) प्राचीन तथा रीतिकाव्य (एक प्रश्नपत्र)
केरल विश्वविद्यालय।

(छ) प्राचीन तथा भक्ति काव्य (एक प्रश्नपत्र)
जबलपुर विश्वविद्यालय, प्रयाग विश्वविद्यालय।

६. (क) प्राचीन काव्य (एक प्रश्नपत्र)

आगरा विश्वविद्यालय, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, जोधपुर विश्वविद्यालय, पंजाब विश्वविद्यालय, पंजाबी विश्वविद्यालय, बड़ौदा विश्वविद्यालय, मराठवाड़ा विश्वविद्यालय, राजस्थान विश्वविद्यालय, लखनऊ विश्वविद्यालय, विक्रम विश्वविद्यालय, विश्वभारती विश्व-विद्यालय, श्रीवेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, सरदार वल्लभ भाई विद्यापीठ, सागर विश्वविद्यालय।

(ख) प्राचीन गद्य तथा पद्य (एक प्रश्नपत्र)
पूना विश्वविद्यालय, बड़ौदा विश्वविद्यालय।

७. (क) भाषा विज्ञान (एक प्रश्नपत्र)

आगरा विश्वविद्यालय, उत्कल विश्वविद्यालय, उस्मानिया विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, केरल विश्वविद्यालय, गुजरात विश्वविद्यालय, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, जबलपुर विश्वविद्यालय, जम्मू और कश्मीर विश्वविद्यालय, जोधपुर विश्वविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पूना विश्वविद्यालय, बड़ौदा विश्वविद्यालय, बनारस विश्वविद्यालय, भागलपुर विश्वविद्यालय, मराठवाड़ा विश्वविद्यालय, मैसूर विश्वविद्यालय, राजस्थान विश्वविद्यालय, लखनऊ विश्वविद्यालय, विक्रम विश्वविद्यालय, विश्वभारती विश्वविद्यालय, शिवाजी विश्व-विद्यालय, श्रीवेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, महिला विश्वविद्यालय, सरदार वल्लभ भाई विद्यापीठ, सागर विश्वविद्यालय, प्रयाग विश्वविद्यालय, बम्बई विश्वविद्यालय।

(ख) भाषा विज्ञान तथा साहित्य का इतिहास (एक प्रश्नपत्र)
नागपुर विश्वविद्यालय।

(ग) भाषा विज्ञान तथा संस्कृत—(एक प्रश्नपत्र)
पंजाब विश्वविद्यालय, पंजाबी विश्वविद्यालय।

(घ) प्राचीन साहित्य तथा हिन्दी भाषा का इतिहास—
कलकत्ता विश्वविद्यालय।

८. (क) साहित्यालोचन तथा काव्य शास्त्र (एक प्रश्नपत्र)

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, केरल विश्वविद्यालय, जबलपुर विश्वविद्यालय, जम्मू और कश्मीर विश्वविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नागपुर विश्वविद्यालय, पंजाब विश्वविद्यालय,

पंजाबी विश्वविद्यालय, पूना विश्वविद्यालय, बनारस विश्वविद्यालय, प्रयाग विश्वविद्यालय, बम्बई विश्वविद्यालय, भागलपुर विश्वविद्यालय, मराठवाड़ा विश्वविद्यालय, मैसूर विश्वविद्यालय, विक्रम विश्वविद्यालय, शिवाजी विश्वविद्यालय, महिला विश्वविद्यालय, सागर विश्वविद्यालय।

(ख) आलोचना के सिद्धांत और हिन्दी साहित्य का इतिहास (एक प्रश्नपत्र)

आगरा विश्वविद्यालय, उत्कल विश्वविद्यालय, उस्मानिया विश्वविद्यालय, केरल विश्वविद्यालय, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, जोधपुर विश्वविद्यालय, बड़ौदा विश्वविद्यालय, राजस्थान विश्वविद्यालय, लखनऊ विश्वविद्यालय, विश्वभारती विश्वविद्यालय, श्रीवेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, सरदार वल्लभभाई विद्यापीठ।

(ग) समीक्षा के सिद्धान्त और निबंध---(एक प्रश्नपत्र)

कलकत्ता विश्वविद्यालय।

९. (क) हिन्दी साहित्य का इतिहास (एक प्रश्नपत्र)

कलकत्ता विश्वविद्यालय, पंजाब विश्वविद्यालय, पंजाबी विश्वविद्यालय, भागलपुर विश्वविद्यालय, मराठवाड़ा विश्वविद्यालय, मैसूर विश्वविद्यालय।

(ख) साहित्य का इतिहास तथा भारतीय संस्कृति---(एक प्रश्नपत्र)

जबलपुर विश्वविद्यालय, सागर विश्वविद्यालय।

(ग) उर्दू तथा हिन्दी साहित्य का इतिहास---(एक प्रश्नपत्र)

जम्मू और कश्मीर विश्वविद्यालय।

(घ) हिन्दी, उर्दू तथा संस्कृत का इतिहास (एक प्रश्नपत्र)

प्रयाग विश्वविद्यालय।

१०. (क) निबंध (एक प्रश्नपत्र)

आगरा विश्वविद्यालय, उस्मानिया विश्वविद्यालय, जोधपुर विश्वविद्यालय, नागपुर विश्वविद्यालय, पंजाब विश्वविद्यालय, पंजाबी विश्वविद्यालय, बनारस विश्वविद्यालय, भागलपुर विश्वविद्यालय, राजस्थान विश्वविद्यालय, विक्रम विश्वविद्यालय, शिवाजी विश्वविद्यालय, श्रीवेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, प्रयाग विश्वविद्यालय।

(ख) निबंध तथा अनुवाद---(एक प्रश्नपत्र)

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, केरल विश्वविद्यालय, गुजरात विश्वविद्यालय, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, जम्मू और कश्मीर विश्वविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, सरदार वल्लभभाई विद्यापीठ।

११. विकल्प---(क) निबन्ध अथवा अन्य विषय (एक प्रश्नपत्र)

जबलपुर विश्वविद्यालय, जम्मू और कश्मीर विश्वविद्यालय, पूना विश्वविद्यालय,

मराठवाड़ा विश्वविद्यालय, लखनऊ विश्वविद्यालय, एस० एन० डी० टी० महिला विश्वविद्यालय, बम्बई विश्वविद्यालय।

(ख) लघुप्रबंध—

उस्मानिया विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, जोधपुर विश्वविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पंजाब विश्वविद्यालय, पंजाबी विश्वविद्यालय, विक्रम विश्वविद्यालय, श्रीवेंकटेश्वर विश्वविद्यालय।

१२. विकल्प (क) विशेष अध्ययन साहित्यकार (एक प्रश्नपत्र)

उस्मानिया विश्वविद्यालय, गुजरात विश्वविद्यालय, जबलपुर विश्वविद्यालय, नागपुर विश्वविद्यालय, पंजाबी विश्वविद्यालय, लखनऊ विश्वविद्यालय, शिवाजी विश्वविद्यालय, एस० एन० डी० टी० महिला विश्वविद्यालय, सरदार वल्लभभाई विद्यापीठ।

(ख) विशेष विषय—(एक प्रश्नपत्र)

उत्कल विश्वविद्यालय, कलकत्ता विश्वविद्यालय, पंजाब विश्वविद्यालय, मैसूर विश्वविद्यालय।

(ग) कवि या प्राचीन भाषा अथवा आधुनिक भारतीय भाषा—(एक प्रश्नपत्र)

आगरा विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, गुरुकुल कॉंगड़ी विश्वविद्यालय, जम्मू और कश्मीर विश्वविद्यालय, जोधपुर विश्वविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पूना विश्वविद्यालय, बनारस विश्वविद्यालय, भागलपुर विश्वविद्यालय, राजस्थान विश्वविद्यालय, विक्रम विश्वविद्यालय, श्रीवेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, सागर विश्वविद्यालय।

(घ) प्राचीन अथवा आधुनिक भारतीय भाषायें—(एक प्रश्नपत्र)

उत्कल विश्वविद्यालय, उस्मानिया विश्वविद्यालय, मैसूर विश्वविद्यालय।

(ङ) प्राचीन भाषायें—(एक प्रश्नपत्र)

बनारस विश्वविद्यालय, भागलपुर विश्वविद्यालय, लखनऊ विश्वविद्यालय।

(च) विषय अथवा भाषा—(एक प्रश्नपत्र)

प्रयाग विश्वविद्यालय।

१३. विशेष अध्ययन

(क) युग विशेष—(एक प्रश्नपत्र)

कलकत्ता विश्वविद्यालय, विश्वभारती विश्वविद्यालय।

(ख) नाटक—(एक प्रश्नपत्र)

नागपुर विश्वविद्यालय, बड़ौदा विश्वविद्यालय, एस० एन० डी० टी० महिला विश्वविद्यालय।

(ग) संस्कृत—(एक प्रश्नपत्र)

केरल विश्वविद्यालय

परिशिष्ट—४

विचारणीय सुझाव और प्रस्ताव

- डॉ० कामिल बुल्के
- डॉ० विपिन बिहारी त्रिवेदी
- डॉ० अम्बाशंकर नागर
- डॉ० राजनारायण मौर्य
- डॉ० प्रेम शंकर
- डॉ० हरदेव बाहरी
- डॉ० गोवर्धननाथ शुक्ल
- डॉ० इन्द्रनाथ मदान
- श्री कल्याणमल लोढ़ा
- डॉ० गुरुप्रसाद टंडन
- डॉ० रामलाल सिंह
- प्रो० ए० चन्द्रहासन

राम-साहित्य पर शोधकार्य

१ तुलसी की सभी रचनाओं का **वैज्ञानिक पाठ-सम्पादन**

२ राम-भक्ति के **रसिक सम्प्रदाय** की **मौलिकता**। उसका **मूल्यांकन**। उसका सन्तुलित-इतिहास।

३ तुलसी के पूर्व रामभक्ति का दार्शनिक एवं सैद्धान्तिक विकास।

खोज

सामान्य ५०० विद्यार्थी खोज करते होंगे। बहुत सा काम कई बार किया जा रहा है। एक केन्द्रीय पंजीकरण का दफ्तर होना चाहिए। जैसा मैंने अनुशीलन के विशेषांक में लिखा था। कई देशों में एक विशेष डाक्टर की उपाधि है State diploma जो विश्वविद्यालयमात्र द्वारा ही नहीं, सरकार द्वारा भी अनुमोदित है। क्या सरकार से निवेदन नहीं किया जा सकता है (अथवा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से) कि इस प्रकार की उपाधि उन्हीं लोगों को दी जायगी जो केन्द्रीय पंजीकरण कार्यालय द्वारा स्वीकृत विषय पर सफलतापूर्वक शोध कर चुके हैं?

डॉ० कामिल बुल्के, राँची

आदि कालीन साहित्य का अध्यापन कराते हुए जहाँ एक ओर मेरी यह अनुभूति है कि उस काल की कही जाने वाली सामग्री का वैज्ञानिक संपादन के साथ प्रकाशित किया जाना यथाशीघ्र अत्यन्त आवश्यक है। साथ ही इस काल के वे ग्रन्थ जो कभी प्रकाशित तो हुए थे परन्तु इस समय अप्राप्य हो गए हैं, उनके पुनर्मुद्रण किए जाने की नितांत आवश्यकता है। परन्तु इन सबसे ज्यादा आवश्यकता इस बात की है कि 'आदि काल' के साहित्यिक सूत्रों एवं विधाओं, रूढ़ियों तथा परम्पराओं को सम्यक् रूप से समझने के लिए अपभ्रंश साहित्य का अध्ययन और अध्यापन कराया जाना नितांत आवश्यक है। इसके साथ ही मैं इतनी बात और जोर देकर कहना चाहूँगा कि 'हिन्दी आदि काल' मात्र ही नहीं वरन् सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य के भलीभाँति बोध के लिए अपभ्रंश साहित्य का अध्यापन बहुत जरूरी है क्योंकि हिन्दी के विविध साहित्यिक कालों में विरचित कृतियों के मूल सूत्र अपनी विविध प्रांजल धाराओं के साथ अपभ्रंश साहित्य में वर्तमान हैं। हिन्दी साहित्य के वे इतिहास जिनमें कवियों और उनकी कृतियों का परिचय मात्र है, उन इतिहासों को नोटिस मात्र कह कर अपने वर्तमान संदर्भ में पृथक् रख सकते हैं। परन्तु हिन्दी साहित्य के वे इतिहास जिनमें समीक्षात्मक, विश्लेषणात्मक, विवेचनात्मक दार्श-

निक और वैज्ञानिक प्रणालियाँ अपनाई गई हैं, उन्हें अपभ्रंश साहित्य की पृष्ठभूमि में विद्वानों द्वारा एक बार पुनः सयत्न सचेष्ट होकर लिखना पड़ेगा। मेरा विनम्र सुझाव है कि भारतीय विश्वविद्यालयों में जहाँ कहीं भी स्नातक और स्नातकोत्तर हिन्दी पाठ्यक्रम के अध्यापन की, व्यवस्था है, वहाँ जितना शीघ्र हो सके, स्नातक कक्षाओं के पाठ्यक्रम में सरल अपभ्रंश काव्य के अंशों को स्थान मिलना चाहिए तथा स्नातकोत्तर कक्षाओं में अनिवार्य रूप से पूरा एक प्रश्नपत्र अपभ्रंश साहित्य से संबंधित पढ़ाया जाना चाहिए। वैकल्पिक रूप से विशेष कवि के रूप में अपभ्रंश के महान कवि स्वयम्भु देव और पुष्पदंत आदि के अध्यापन की भी क्रमश· व्यवस्था की जानी चाहिए। जब तक यह नहीं होता तब तक हम हिन्दी वाले हिन्दी साहित्य की अनेक समस्याओं की वास्तविकता से अपने को दूर समझें।

डॉ० विपिनविहारी त्रिवेदी, लखनऊ

कुछ विचारणीय समस्याएँ एवं सुझाव

१ अहिन्दी भाषी प्रदेशों के विश्वविद्यालयों में एम० ए० का पाठ्यक्रम कैसा रहे? अन्य विश्वविद्यालयों जैसा अथवा विशिष्ट प्रकार का? (पाठ्य पुस्तकें, स्तर, प्रश्न पत्रों की संख्या आदि को ध्यान में रखकर विचार किया जाय)।

२· अहिन्दी प्रदेशों में Teutnal Teaching पर विशेष ध्यान दिया जाय। केवल समीक्षात्मक अध्ययन अपर्याप्त।

३ अहिन्दी प्रदेशों के एम० ए० के अंतिम वर्ष में मौखिक परीक्षा भी रखी जाय।

४ पाठ्यक्रम में यथासंभव इन प्रश्नपत्रों को रखा जाय—

(i) एक विशिष्ट काल का अध्ययन

(ii) विशिष्ट साहित्य-रूप का अध्ययन।

(iii) विशेष कवि का अध्ययन।

(iv) एक प्राचीन अथवा अर्वाचीन भाषा का अध्ययन।

५ क्षेत्रीय अनुसंधान (स्थान या प्रदेश संबंधी शोध) की उपादेयता, उसकी समस्याओं एवं नियोजन पर भी विचार हो।

६ केन्द्रीय हिंदी शोध कार्यालय की स्थापना की जाय जो अन्य कार्यों के साथ-साथ शोधार्थियों एवं निर्देशकों को विषय-निर्धारण के समय आवश्यक जानकारी दे सके। इससे विषयों की पुनरावृत्ति रुकेगी और किस विषय पर कहाँ कार्य हो रहा है यह भी ज्ञात हो सकेगा।

डॉ० अम्बाशंकर नागर, अहमदाबाद

भाषा-विज्ञान का पाठ्यक्रम और समस्याएँ

(संक्षिप्त रूपरेखा)

सभी विश्वविद्यालयों के एम० ए०, हिन्दी-पाठ्यक्रम में एक प्रश्नपत्र भाषा-विज्ञान का होता है। इस प्रश्नपत्र की रूपरेखा और इसके पाठ्यक्रम में सभी विश्वविद्यालयों में अन्तर नहीं के बराबर है। भाषा-विज्ञान में अच्छी पुस्तकों और शिक्षित अध्यापकों के अभाव के कारण १५-२० वर्ष पहले के पाठ्यक्रम को ही हम अभी हिन्दी में चला रहे हैं। भाषा-विज्ञान अब भारत में काफी विकसित विज्ञान बन रहा है, अतः इस विज्ञान के अध्ययन की नई प्रणालियों और नई उपलब्धियों का हमें सहर्ष स्वागत करना चाहिए। हमें अपने पाठ्यक्रम में परिवर्तन करके नई प्रणालियों और नए विषयों को स्थान देना चाहिए।

मेरे विचार से भाषा-विज्ञान का पाठ्यक्रम नीचे लिखे अनुसार होना चाहिए—

क—पूरे प्रश्नपत्र को तीन भागों में विभक्त करना चाहिए। प्रथम में भाषा-विज्ञान के सामान्य सिद्धान्त हों, द्वितीय में भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी का अध्ययन हो और तृतीय में द्रविड़-भाषा परिवार तथा उसकी किसी एक बोली का अध्ययन हो।

ख—प्रथम भाग में ये विषय रक्खे जायं—

भाषा, भाषा के विविध रूप, ध्वनि-विज्ञान, पद-विज्ञान, वाक्य-विज्ञान, अर्थ-विज्ञान।

ग—द्वितीय भाग के विषय—

भारतीय भाषा परिवार, प्राचीन भारतीय आर्य भाषा, मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएं, आधुनिक आर्य भाषाएं, (हिन्दी का विशेष अध्ययन-ध्वनि, पद, शब्द-समूह आदि), हिन्दी की बोलियां।

घ—तृतीय भाग का विषय—

द्रविड़ भाषा परिवार तथा उस परिवार की किसी एक भाषा की सामान्य जानकारी।

अथवा

हिन्दी की किसी एक बोली की सामान्य जानकारी।

हिन्दी भाषी छात्रों के लिए द्रविड़ भाषा परिवार तथा उसकी एक बोली का अध्ययन आवश्यक हो और अहिन्दी भाषी छात्रों के लिए हिन्दी की एक बोली का अध्ययन आवश्यक हो।

समस्याएँ

च—पाठ्य पुस्तकों का अभाव

छ—शिक्षित अध्यापकों का अभाव

डॉ० राजनारायण मौर्य, पूना

प्राचीन तथा मध्यकालीन साहित्य की तुलना में आधुनिक साहित्य का अनुपात और स्थिति

(संक्षिप्त रूपरेखा)

इस बात से कोई नहीं इनकार कर सकता कि एम० ए० हिन्दी अध्ययन के लिए प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक तीनों साहित्य होना चाहिए। प्रश्न यह है कि इनका अनुपात क्या हो ? मेरे विचार से तीनों काल के साहित्य को समान स्थान मिलना चाहिए और जहां संभव हो वहाँ तीनों के अलग-अलग प्रश्नपत्र हों। आधुनिक साहित्य में केवल कविता ही नहीं बल्कि उपन्यास, नाटक, निबन्ध आदि भी आयेंगे।

हिन्दी भाषी क्षेत्र और अहिन्दी भाषी क्षेत्र के विश्वविद्यालयों में यह अनुपात भिन्न-भिन्न होगा। हिन्दी भाषी क्षेत्र में प्राचीन और मध्यकालीन साहित्य की पाठ्य-पुस्तकें, अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के विश्वविद्यालयों में आधुनिक साहित्य की पाठ्य पुस्तकें अधिक हों। अहिन्दी भाषी छात्रों को प्राचीन और मध्यकालीन साहित्य समझने में कठिनाई होती है और वहाँ पूरी पुस्तक शब्द व शब्द पढ़ानी होती है। अतः प्राचीन और मध्यकालीन साहित्य की प्रवृत्तियों को समझने के लिए इनकी प्रतिनिधि रचनाएं ही आवश्यक हैं। इनके लिए आधुनिक साहित्य समझना आसान होता है अतः अनुपात में आधुनिक साहित्य अधिक होना चाहिए।

किसी भी काल के साहित्य से पाठ्य पुस्तकों का चुनाव करते समय मात्रा और साहित्य की उच्चता ही न देखकर प्रवृत्तियों को भी देखना चाहिए। प्रत्येक प्रवृत्ति की रचना को प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए।

आधुनिक साहित्य में भी समसामयिक साहित्य को पाठ्यपुस्तक के रूप में स्थान नहीं मिलना चाहिए क्योंकि जब तक आलोचना प्रत्यालोचना द्वारा उसका मूल्य-मापन न हो जाय तब तक उसका स्तर निर्धारण नहीं होता है। यह अवश्य है कि आधुनिक साहित्य के विकास के सन्दर्भ में नवीनतम प्रवृत्तियों की जानकारी प्रत्येक छात्र को मिलनी चाहिए।

डॉ० राजनारायण मौर्य, पूना

स्नातकोत्तर कक्षाओं में हिन्दी भाषी क्षेत्र के विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों को एक दक्षिणभाषा का ज्ञान अवश्य होना चाहिए। इससे अहिन्दी भाषी क्षेत्रों को सन्तोष होगा और सांस्कृतिक समीपता बढ़ेगी। एम० ए० उत्तरार्द्ध में ऐसी योजना की जानी चाहिए। दक्षिण-भाषी हिन्दी के एक विशेष रचनाकार का विस्तृत अध्ययन करें और हिन्दी भाषी दक्षिण भाषा का।

डॉ० प्रेमशंकर, सागर

हिन्दी पाठ्यक्रम में भाषाविज्ञान के सैद्धान्तिक पक्ष पर कम और व्यावहारिक पक्ष पर अधिक बल देना चाहिए। अंग्रेजी एम० ए० का पाठ्यक्रम देखिए। उसमें ध्वनिविज्ञान नहीं, अंग्रेजी का ध्वनिविज्ञान, अर्थविज्ञान के सिद्धान्त नहीं, अंग्रेजी के अर्थ विज्ञान के सिद्धान्त; संसार भर की भाषाओं के व्याकरण की चिन्ता नहीं, अंग्रेजी व्याकरण का चिन्तन। भाषाविज्ञान के नियम अंग्रेजी के संदर्भ में ही आते हैं। संसार की भाषाओं का अथवा संसार के भाषाविज्ञानियों का ज्ञान अपेक्षित नहीं है। हमारी चेष्टा यह होनी चाहिए कि हमारे विद्यार्थी हिन्दी का विस्तृत एवं गम्भीर भाषाविज्ञान जानें।

डॉ० हरदेव बाहरी
(प्रयाग)

स्नातकोत्तर विद्यालय शिविर के लिए पाँच सुझाव:—

१ देश के हिन्दी अध्यापन करने वाले सारे विश्वविद्यालयों के एक या दो वरिष्ठ अध्यापकों की एक केन्द्रीय-समिति का गठन हो। जो पाठ्य-क्रम में एकरूपता (Uniformity) लाने के साथ शोध विषयों, शोध-स्तर और शोधप्रक्रिया पर भी विचार करें।

२ सारे विश्वविद्यालयों का—हिन्दी साहित्य के चार कालों के आधार पर या अन्य किसी वैज्ञानिक आधार पर चार प्रश्नपत्र एवं एक निबंध का प्रश्न-पत्र कुल मिलाकर ५ प्रश्न-पत्रों का पाठ्य-क्रम एवं स्तर एक सा हो। शेष तीन प्रश्नपत्रों का गठन क्षेत्रीय समस्याओं के आधार पर विश्वविद्यालयों की अंतरंग पाठ्य-क्रम समिति के अधिकार पर छोड़ दिये जायँ।

३ मौखिक परीक्षा के विषय में एक ही नीति निर्धारित की जाय और एकरूपता पर ध्यान दिया जाय।

४ केन्द्रीय समिति के अन्तर्गत कुछ उप-समितियाँ हों जो विशेष विशेष प्रश्न-पत्रों पर साधिकार नीति निर्धारित करें।

५ केन्द्रीय-समिति के अन्तर्गत कुछ वरिष्ठ प्राध्यापकों की शोध-उपसमिति हो जो विषय निर्धारण करे और शोध-प्रबंध के स्तरों को सम्यक् बनाए रखने और उनके नियमन की नीति निर्धारित करे।

डॉ० गोवर्धननाथ शुक्ल
(अलीगढ़)

आधुनिक साहित्य के पठन-पाठन के सम्बन्ध में मुझे यह खटकता रहा है कि परम्परावादी इसे मान्यता देने में झिझकते रहे हैं। अनुपात के झगड़े में बिना उलझे इतना अवश्य स्वीकार करना होगा कि बिना आधुनिक साहित्य के ज्ञान के हिन्दी का विद्यार्थी हीनता से ग्रस्त हो जाता है। इसलिये आधुनिक कविता और आधुनिक कथा-साहित्य का अध्ययन अनिवार्य या विकल्प

रूप में पाठ्य-क्रम में नियत करना वांछनीय है। आपके यहाँ जो (Practical) पाठ्यक्रम की व्यवस्था है उसके मूल्य को मैं सामयिक मानता हूँ।

अब रही शोध की बात। आधुनिक साहित्य पर अनुसन्धान की संभावना कम हो चुकी है। अन्य कालों के साहित्य के सम्बन्ध में राय देना अनधिकार चेष्टा होगी। हिन्दी साहित्य के इतिहास की दशा यह है कि अभी तक हिन्दी का साहित्यिक इतिहास लिखा ही नहीं गया है। अब तक सांस्कृतिक इतिहास या चिन्तन-सम्बन्धी इतिहास-लेखन के प्रयास हुए हैं।

आज का हिन्दी छात्र संकुचित दृष्टि से सम्पन्न होकर विश्वविद्यालय से जब बाहर आता है तो वह 'ऐडजस्ट' नहीं कर पाता। इसलिये पाठ्यक्रम का आधार जितना विस्तृत होगा उतनी ही उसकी हीन-भावना कम होगी।

डॉ० इन्द्रनाथ मदान
(चंडीगढ़)

पाठ्य-क्रम समरूपता समिति

मैं यह प्रस्ताव करता हूँ कि स्नातकोत्तर-शिक्षण-कार्य शिविर के निष्कर्षों पर एवं पाठ्य-क्रम की समरूपता पर विचार करने के लिए सात सदस्यों की एक उपसमिति गठित की जाय जो इस संबंध में विस्तृत विचार करके अपना प्रतिवेदन तीन मास के भीतर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को विचारार्थ दे। इस संबंध में मेरा यह भी सुझाव है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से इस समिति के व्ययार्थ रु० ४००० की और सहायता माँगी जाय।

प्रस्तावक—

कल्याणमल लोढ़ा
(कलकत्ता विश्वविद्यालय)

अनुसंधान कार्य

यह कार्यशिविर विभिन्न विश्वविद्यालयों की "अनुसन्धान परिषदों" से अनुरोध करता है कि पी०-एच डी० अथवा डी० लिट० उपाधि हेतु

(१) हिन्दी भाषा और साहित्य के जिन विषयों पर शोध कार्य हो चुका है और नई दृष्टि की संभावना नहीं है उन पर शोध कार्य्य को प्रोत्साहन न दिया जाय। तथा,

(२) जीवित लेखकों के जीवन और कृतित्व को शोध कार्य्य का विषय न बनाया जाय।

प्रस्तावक—

डॉ० गुरुप्रसाद टंडन
(विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन)

स्नातकोत्तर कक्षाओं में भाषा-विज्ञान का पाठ्य-क्रम—

मेरा प्रस्ताव है कि हिन्दी की स्नातकोत्तर कक्षाओं में सामान्य भाषा-विज्ञान तथा हिन्दुस्तान की प्रान्तीय भाषाओं एवं हिन्दी भाषा का विकासात्मक अध्ययन अनिवार्य हो एक अनिवार्य प्रश्नपत्र के रूप में तथा वैकल्पिक विषयों के भीतर भाषा-विज्ञान के विस्तृत तथा सघन अध्ययन का एक प्रश्न पत्र हो जिससे उस विस्तृत तथा गहन अध्ययन द्वारा भाषा विज्ञान में विशिष्टरुचि रखने वाले एवं आगे भाषा-विज्ञान में शोध करने वाले छात्रों का विशेष प्रशिक्षण हो सके।

प्रस्तावक—

डॉ० रामलाल सिंह
(सागर विश्वविद्यालय)

इस बात की आवश्यकता है कि स्नातकोत्तर अध्ययन के लिए एक आदर्श पाठ्य-क्रम बनाया जाय और सब विश्वविद्यालयों को भेजा जाय। मेरा सुझाव है कि कुछ प्रमुख प्राध्यापक मिलकर यह आदर्श पाठ्य-क्रम बनावें। इस कार्य के लिये मैं निम्नलिखित प्राध्यापकों का नाम-निर्देश करूँगा।

डॉ० रामकुमार वर्मा
श्री कल्याणमल लोढ़ा
श्री ए० चन्द्रहासन
डॉ० श्रीकृष्णलाल
डॉ० अम्बाशंकर नागर
डॉ० विजयेन्द्र स्नातक
डॉ० जगदीश गुप्त

प्रो० ए० चंद्रहासन
(एर्नाकुलम्)

परिशिष्ट—५

विचारार्थ प्राप्त लेखों का सार-संक्षेप

- डॉ० विश्वनाथप्रसाद मिश्र
- डॉ० माताप्रसाद गुप्त
- डॉ० विजयेन्द्र स्नातक
- डॉ० विनयमोहन शर्मा
- डॉ० वसन्त अनन्त गद्रे
- डॉ० सत्येन्द्र
- डॉ० गोवर्धननाथ शुक्ल
- डॉ० सावित्री सिन्हा
- डॉ० विजयपाल सिंह

प्रश्नावली के उत्तर में

डॉ० विश्वनाथप्रसाद मिश्र

१. साहित्य के अध्ययन में शोध पूर्णता लाने के लिए है। साहित्य की किसी विशेष शाखा या उसके ऐतिहासिक विकास में किया गया शोध ज्ञातव्य तथ्यों से परिपूर्णता लायेगा। किंतु इसकी सीमा साहित्य के अभोग में रहेगी। अन्य वाङमय प्रधान न होकर सहायक अथवा गौण रहें। साहित्य के सभी वाङमयों का सामान्य ज्ञान अनिवार्य है।

२. साहित्य के सभी रूपों का आकलन प्रातिनिध्य पद्धति से हो सकता है। इसमें सार संक्षेप की शैली उत्तम होगी।

३. समकालीन साहित्य का विस्तार बहुत अधिक है। सामान्य परिचय ही अधिकतर देना पर्याप्त है।

४. प्राचीन और मध्यकालीन साहित्य एवं आधुनिक साहित्य—दोनों का अनुपात समान होना चाहिए।

५. एम० ए० के प्रत्येक वर्ष में कम से कम चार प्रश्नपत्र अवश्य हों।

६. अहिन्दी प्रदेश के प्रश्नपत्र संप्रति सरलतर रक्खे जा सकते हैं।

७. विकल्प में विशेष अध्ययन सब प्रकार का रहे और रुचि के अनुसार शिक्षार्थी चयन कर लें।

८. शोध का औचित्य उसकी नवीनता में हो। सर्वेक्षण और समालोचन को शोध के क्षेत्र से क्रमशः कम करना चाहिए। पी० एच० डी० से डी० लिट० में अनुसंधेय विषय की व्याप्ति अधिक हो।

९. मौखिक परीक्षा होनी चाहिए।

१०. साहित्य के इतिहास को इतिहास की दृष्टि से अवश्य देखा जाय। तथ्य सम्बन्धी विवरणों की अपेक्षा प्रवृत्तियों के निर्धारण पर अधिक ध्यान दिया जाय।

११. भाषा विज्ञान के अध्ययन में उच्चारण पर विशेष ध्यान दिया जाय।

१२. लोक साहित्य के अध्ययन को प्रोत्साहन देना चाहिए।

१३. आदि काल के विषय में तटस्थ वृत्ति अपनानी चाहिए।

१४. राम साहित्य के अध्ययन में ऐतिहासिक विकास और सैद्धांतिक विवेचनकी वृद्धि एवं कृष्ण साहित्य के विविध सम्प्रदायों का विभेद स्पष्ट करने का प्रयास करना चाहिए।

१५. आधुनिक साहित्य के अध्ययन में प्रवृत्तियों के अध्ययन पर ही अधिक ध्यान रखना अच्छा होगा।

१६. भाषा के स्वरूपगत ज्ञान को विशेष प्रोत्साहित करना चाहिए।

एम० ए० का प्रश्नपत्र-विभाजन

डॉ० माताप्रसाद गुप्त

इस विषय में दो मत हो सकते हैं—

१. सभी प्रश्नपत्र हिन्दी साहित्य और हिन्दी भाषा के हों।

२. अधिकतर हिन्दी साहित्य तथा भाषा के हों, किंतु कुछ प्रश्नपत्र विशिष्ट अध्ययन के भी हों। इन दोनों विकल्पों में से दूसरा अधिक उपयोगी है, विशेष रूप से इसलिए कि शोध के लिए यह अनुकूल है। विशिष्ट अध्ययन की उपयोगिता प्रायः सर्व स्वीकृत है, किंतु ऐसे विशिष्ट अध्ययन के प्रश्नपत्रों की संख्या हिंदी साहित्य तथा भाषा के प्रश्नपत्रों से कम ही होनी चाहिए। अधिकांश विश्वविद्यालयों में, जहाँ एम० ए० की कुल प्रश्नपत्र संख्या आठ है, विशिष्ट अध्ययन के प्रश्नपत्रों की संख्या दो ही रहनी चाहिए। दो या अधिक प्रश्नपत्र होने पर उनके विषय यथा-सम्भव परस्पर संबद्ध हों तो अच्छा हो।

ये हिन्दी साहित्य और भाषा के ६ प्रश्नपत्रों में से हिन्दी भाषा का इतिहास तथा भाषा शास्त्र के मूल सिद्धान्तों का एक प्रश्नपत्र और एक यदि निबन्ध अथवा लघु प्रबन्ध (Dissirtation) का भी रख लिया जाए तो चार शेष रहते हैं। किंतु इस निबंध की उपयोगिता अन्यथा साहित्य या भाषा के एक पूरे अंश या अंग या रूप या धारा के अध्ययन और अभ्यास से प्राप्त उपलब्धि से कम ही होगी। इसलिए मेरी राय है कि लघु निबंध का प्रश्नपत्र न रखा जाय और पाचों प्रश्नपत्र हिन्दी साहित्य के अध्ययन एवं अभ्यास के ही हों जो निम्नलिखित हों—१. प्राचीन साहित्य, २. मध्यकालीन साहित्य, ३. आधुनिक साहित्य-पद्य, ४. आधुनिक साहित्य-गद्य, ५. समालोचना शास्त्र एवं हिन्दी साहित्य का इतिहास।

एम० ए० का वैकल्पिक अध्ययन

विभिन्न विश्वविद्यालयों के वैकल्पिक अध्ययनों की रूपरेखा के विवेचन से जो विभिन्न 'पैटर्न' हमें प्राप्त होते हैं, उनके प्रति संक्षेप में निम्नलिखित सुझाव रक्खे जा सकते हैं—

जहाँ पर आठ प्रश्नपत्र हों, वहाँ पर पांच साहित्य के, एक भाषा-शास्त्र और भाषा के इतिहास का और शेष दो वैकल्पिक अध्ययन के हों। जहाँ कुल प्रश्नपत्र नौ हों, वहाँ वैकल्पिक अध्ययन के तीन और शेष छः वे ही हों जो आठ वालों में कहे गए हैं।

वैकल्पिक अध्ययन के सम्बन्ध में कोई दो या तीन प्रश्नपत्र निम्नलिखित वर्गों के अनुसार चुने जा सकते हैं—

१. भाषात्मक अध्ययन, २. खड़ीबोली साहित्य, ३. ब्रज, अवधी, राजस्थानी, मैथिली का साहित्य, लोक साहित्य, पाठालोचन, तुलसी तथा राम भक्ति साहित्य, सूर तथा कृष्ण भक्ति साहित्य, कबीर तथा संत साहित्य, जायसी तथा सूफी साहित्य, केशव तथा रीति साहित्य, प्रसाद तथा आधुनिक काव्य, प्रसाद तथा आधुनिक नाटक, प्रेमचन्द तथा आधुनिक कथा साहित्य, शुक्ल तथा आधुनिक आलोचना एवं निबन्ध।

एम० ए० कक्षा में पाठ्य-पुस्तकों और आलोचना का अनुपात

डॉ० विजयेन्द्र स्नातक

एम० ए० कक्षा में साहित्य सम्बन्धी पाठ्य-पुस्तकों के अध्ययन अध्यापन का मूल उद्देश्य विशिष्ट कृतियों के माध्यम से छात्रों में साहित्यिक सौन्दर्य के परिबोधन, उद्घाटन, (सग्रहण) तथा मूल्यांकन करने की क्षमता उत्पन्न करना है।...जिन विश्वविद्यालयों में लिखित आठ प्रश्नपत्रों की व्यवस्था है, वहाँ अधिकांश में पाठ्य पुस्तकों से सम्बद्ध ५ प्रश्नपत्र होते हैं—१. प्राचीन काव्य, २. नवीन काव्य, ३. नाटक तथा निबंध, ४. उपन्यास तथा कहानी और ५. विशेष कवि या भाषा।

उपर्युक्त पांच प्रश्नपत्रों में सर्वत्र एकरूपता नहीं है। पाठ्य पुस्तकें भी समान नहीं हैं।...इन पाठ्य पुस्तकों से सम्बद्ध प्रश्नपत्रों में पाठ्यांश की व्याख्या-विवेचना के साथ आलोचनात्मक प्रश्न भी पूछे जाते हैं। अतः प्रश्नपत्रों में प्रायः ४० प्रतिशत अंक पाठ्यांश की व्याख्या के लिए और ६० अंक पाठ्य पुस्तकों की समीक्षा के लिए रहते हैं। विचारणीय है कि यह अनुपात ज्यों का त्यों बना रहने दिया जाए या इसमें कुछ परिवर्तन वांछनीय है। अध्यापन में भी पाठ्य ग्रंथ के मूल भाग पर विशेष बल दिया जाए या उसकी समीक्षा को प्रमुख स्थान प्राप्त हो। इस सम्बन्ध में दो प्रकार की विचारधाराएँ पाई जाती हैं। प्रथम जो पाठ्य पुस्तकों को विशेष महत्व न देकर उनके समीक्षात्मक पहलू पर अधिक बल देते हैं उनके तर्कों के विवेचन से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि पाठ्य पुस्तकों वाले प्रश्नपत्रों में पूछे जाने वाले आलोचनात्मक प्रश्न मूलतः पाठ्य ग्रंथों से संयुक्त होते हैं अतः उन्हें बाह्य तत्व मान कर पाठ्य पुस्तकों के प्रश्नपत्रों से बहिष्कृत नहीं किया जा सकता। दूसरी विचारधारा के अनुसार पाठ्य पुस्तकों का आनुपातिक महत्व अधिक होना चाहिए। मूल पाठ्य पुस्तकों के प्रति बढ़ती हुई उपेक्षा का कारण आलोचनात्मक प्रश्न है क्योंकि इन प्रश्नों की तैयारी साधारण कोटि की पुस्तकों से की जाती है जो शैक्षिक स्तर को गिराने वाली हैं। अतः पाठ्यांश की उपेक्षा को समाप्त करना चाहिए। इसके लिए मध्यम मार्ग का एक सुझाव दिया जा सकता है कि पाठ्यांश (टेक्स्ट) में ५० अंक रखे जाएं ताकि पाठ्य पुस्तकें पढ़ना अनिवार्य हो जाए। कुछ वर्ष बाद पुनः ४० और ६० का अनुपात रहे। एम० ए० कक्षा में शैक्षिक दृष्टि से यह अनुपात असंतुलित होने पर भी सामयिक उपयोगिता के लिए अपनाया जा सकता है। साथ ही आलोचनात्मक प्रश्नों को इस पद्धति से पूछा जाए कि बिना पाठ्य पुस्तक पढ़े उनका उत्तर देना कठिन हो।

संक्षेप में, आलोचनात्मक अंश के शैक्षिक सिद्धांत के आधार पर कम नहीं किया जा सकता। ४० प्रतिशत: पाठ्यांश और ६० प्रतिशत आलोचनात्मक अंश का अनुपात सामान्तर ठीक है।

अहिन्दी क्षेत्र के विश्वविद्यालयों के पाठ्य-क्रम में क्या खड़ी बोली ही रहे

डॉ० विनयमोहन शर्मा

हमें दो बातों पर विचार करना है—एक, क्या हिन्दी और अहिन्दी क्षेत्रों के हिन्दी पाठ्यक्रम भिन्न-भिन्न रहें और क्या यह भिन्नता माध्यमिक शालाओं तक ही सीमित रहे या विश्वविद्यालयीन स्तर पर भी रहे। दूसरे शब्दों में क्या अहिन्दी क्षेत्रों के माध्यमिक तथा विश्व-विद्यालयीन पाठ्यक्रमों में केवल खड़ीबोली साहित्य का समावेश रहे और ब्रज अवधी आदिकाअमर साहित्य सर्वथा बहिष्कृत ही कर दिया जाय ? दो—यदि उसका सर्वथा बहिष्कार अभीष्ट नहीं है तो विश्वविद्यालयीन पाठ्थक्रमों में उनको कहाँ और किस परिमाण में समाविष्ट किया जाय।

मेरे मत से स्नातकोत्तर स्तर पर हिन्दी-अहिन्दी क्षेत्रों के पाठ्यक्रमों में कोई अन्तर नहीं होना चाहिए। यदि ऐसा हुआ तो दक्षिण प्रदेशों का स्नातक उत्तरप्रदेश के स्नातक से हीन घोषित होगा जो अवांछनीय स्थिति उत्पन्न कर सकता है।

खड़ीबोली की व्यावहारिक उपयोगिता को अनुभव करते हुए हमें दोनों क्षेत्रों के पाठ्यक्रमों में उसे विशेष महत्व देना चाहिए। गद्य के सम्बन्ध में विवाद का प्रश्न नहीं उठता। पद्य के ही सम्बन्ध में विवाद हो सकता है। चंदबरदाई की भाषा दोनों क्षेत्रों के लिए कठिन हो सकती है, संस्कृत प्रचुर ब्रज और अवधी दक्षिण में थोड़े प्रयत्न से समझी जा सकती है। अतः ब्रज और अवधी का दोनों क्षेत्रों में समान पाठ्यक्रम रक्खा जा सकता है।

शोध की समस्या

प्रत्येक विश्वविद्यालय में सभी विषयों पर शोधकार्य हो रहा है, इससे विषयों की पुनरावृत्ति होती रहती है। यदि इसे बचाया जा सके तो अच्छा हो। यदि प्रत्येक विश्वविद्यालय सब विषयों की अपेक्षा अपने क्षेत्र से संबंधित विषयों पर ही कार्य कराए तो पुनरावृत्ति से बहुत कुछ बचा जा सकता है। छात्रों को शोध-प्रक्रिया का ज्ञान कराने की दृष्टि से एम० ए० में एक वैकल्पिक प्रश्नपत्र भी रक्खा जा सकता है।

भाषा विज्ञान का पाठ्य-क्रम और समस्यायें

डॉ० बसन्त गद्रे

पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में मेरा यह कहना है कि हम अभी हिन्दी में १५-२० वर्ष के पहले के ही पाठ्यक्रम को चला रहे हैं। भारत में भाषा विज्ञान के क्षेत्र में एक क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ है। पिछले नौ दस वर्षों में हमारे यहाँ भाषा-विज्ञान के अध्ययन प्रणाली में बहुत सी नई चीजें आई हैं। हमें अपने भाषा-विज्ञान के पाठ्यक्रम में अब इनको स्थान देना चाहिए।

हमारे पुराने पाठ्यक्रम में कुछ ऐसी चीजें हैं जिनका अध्ययन आजकल बहुत अधिक उपयोगी नहीं है। उदाहरण के लिए भाषा की उत्पत्ति के सिद्धान्त, संसार की भाषाओं का वर्गीकरण, भाषा विज्ञान विज्ञान है या कला, भाषा विज्ञान का अन्य विज्ञानों से सम्बन्ध आदि ऐसे विषय हैं जिनका एम० ए० में कोई उपयोग नहीं। इसकी जगह एम० ए० की तरह बी० ए० में भी भाषा विज्ञान होना चाहिए और एम० ए० के भाषा विज्ञान की इन प्रारम्भिक बातों की जानकारी बी० ए० में दी जा सकती है।

मेरा सुझाव है कि भाषा विज्ञान का पाठ्यक्रम निम्नलिखित होना चाहिए—पूरे प्रश्नपत्र को तीन भागों में विभक्त करना चाहिए। प्रथम में भाषा-विज्ञान के सामान्य सिद्धान्त हों, द्वितीय में भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी हो और तृतीय में द्रविड़ भाषा परिवार तथा उसकी किसी एक बोली का अध्ययन हो। तृतीय भाग के विषय वैकल्पिक हों। हिन्दी भाषी छात्रों के लिए द्रविड़ भाषा परिवार तथा उसकी एक बोली का अध्ययन आवश्यक हो और अहिन्दी छात्रों के लिए हिन्दी की एक बोली का अध्ययन आवश्यक हो।

भाषा विज्ञान की पुस्तकों का अभाव और योग्यता प्राप्त अध्यापकों का अभाव—भाषा विज्ञान के अध्ययन अध्यापन की प्रमुख समस्याएं हैं। इस सम्बन्ध में आगरा के० एम० मुंशी विद्यापीठ को चाहिए कि भाषा विज्ञान की हिन्दी में अच्छी पाठ्य पुस्तक तैयार करायें। द्वितीय, भाषा विज्ञान के सामान्य सिद्धान्तों को हम किसी भी भाषा के माध्यम से जाने पर उसका हिन्दी में उपयोग करते समय सर्वत्र उदाहरण हिन्दी के या भारतीय भाषाओं के हों। अनुसंधान के स्तर पर भी भाषा विज्ञान की नवीनतम प्रणाली को अपनाना चाहिए। एम० ए० भाषा विज्ञान में फील्ड वर्क होना चाहिए। भारत में सैकड़ों बोलियाँ हैं, उनका अपना रूप है, अपनी विशेषताएं हैं। इनका भाषा वैज्ञानिक अध्ययन होना चाहिए।

लोक भाषा और लोक साहित्य

डॉ० सत्येन्द्र

हिन्दी के वर्तमान पाठ्यक्रम पर दृष्टि डालने से स्पष्ट होता है कि लोक भाषा और लोक साहित्य को हिन्दी साहित्य के यथा संभव पूर्ण एवं समीचीन ज्ञान के पश्चात ही स्थान मिल सकता है। परन्तु चूँकि लोक भाषा में से ही साहित्यिक भाषा उद्भावित होती है अतः हमें अपने हिन्दी-साहित्य के अध्ययन के साथ ही इसे स्थान देना होगा। क्योंकि तभी हिन्दी क्षेत्र की २१ या २२ बोलियों के सम्पर्क से हिन्दी भाषा के स्वरूप और बल को हृदयंगम करने में सहायता मिलेगी। इसके अतिरिक्त लोक-भाषा के स्नातकोत्तरीय अध्ययन का विषय बनाने से विद्यार्थी उन प्रक्रियाओं से परिचित हो सकेगा जो लोक क्षेत्र में भाषा व्यवहार में प्रचलित रहती हैं। भाषा-विज्ञान के विलक्षण स्वरूप को जानने के लिए भी लोक भाषा का ज्ञान इस स्तर पर आवश्यक है। विदेशों में भी लोक साहित्य को इन्हीं दृष्टिकोणों से स्नातकोत्तरीय अध्ययन का विषय बना दिया गया है।

'लोक वार्ता' स्वयं एक स्नातकोत्तरीय अध्ययन का स्वतंत्र विषय हो सकता है जिसमें आठ या नौ प्रश्न पत्र हो सकते हैं। परन्तु लोक-साहित्य के एक विशद् वैज्ञानिक और साहित्यिक विषय होने पर भी हिन्दी के पाठ्यक्रम के अंतर्गत इसको स्थान देने की आवश्यकता का कारण हिन्दी साहित्य की पृष्ठभूमि में रहने वाली और उसके निर्माण एवं मूल्य संवर्द्धन में सहायक होने वाली प्रक्रियाओं से परिचित करना है।

अनुसंधान के स्तर की दृष्टि से लोक-वार्ता साहित्य में स्नातकोत्तरीय डिप्लोमा कोर्स प्रारम्भ किया जाना चाहिए। जिसमें एक वर्ष का पाठ्यक्रम हो और लोक वार्त्ता साहित्य पर अनुसंधान करने वाले छात्रों का उसमें उत्तीर्ण होना आवश्यक हो।

भारतीय स्नातकों में लोक-वार्त्ता दृष्टि के समावेश न केवल साहित्य को समग्र रूप में देखने की दृष्टि मिलेगी अपितु उनमें भारतीय लोक-साहित्य को सभी दृष्टियों से परिपूर्ण करने का उत्साह भी जागृत होगा। इस दिशा में इलाहाबाद विश्वविद्यालय अग्रगण्य है। यदि विश्वविद्यालय स्नातकोत्तरीय स्तर पर लोक-साहित्य को अध्ययन का स्वतंत्र विषय बनायें तो भी उसे हिन्दी एम० ए० में विकल्प का स्थान अवश्य दिया जाना चाहिए। कारण यह है कि लोकवार्त्ता विज्ञान पृथक विषय के रूप में अपने वैज्ञानिक पक्ष में ही फँस जायेगा और अपनी दृष्टिकोण की व्यापकता के कारण वह सैद्धान्तिक होकर ही रह जायेगा।

शोध-समस्यायें—भक्ति युग के संदर्भ में

डॉ० गोवर्धननाथ शुक्ल

अनुसंधान की समस्याएँ—अनुसंधित्सु प्रायः आज रिक्त और शून्य मनोभूमि को लेकर निर्देशक के पास आता है और कुछ अन्यथा ही लेकर या देकर शोध-कार्य में प्रवृत्त होने की चेष्टा करता है। उसका बोध पक्ष प्रायः नित्य स्वाध्याय के प्रभाव में प्रायः अपरिपक्व होता है। . . . . भक्ति युग के शोधार्थी के लिए संस्कृत भाषा एवं साहित्य का सम्यक् ज्ञान अनिवार्य ही होना चाहिए अन्यथा स्तर के गिरने की आशंका सदैव बनी रहेगी। इसी प्रकार भक्ति युग के शोधार्थियों के लिये भक्ताचार्यों के सिद्धान्तों का प्रामाणिक परिज्ञान उनसे पूर्व की भारतीय आध्यात्मिक चिंतन परम्पराओं का ज्ञान यदि गहन रूप में नहीं तो साधारण रूप में अवश्य अपेक्षित है। तीसरे भारतीय भक्त-संप्रदायों—बंगाल, मध्यप्रदेश, राजस्थान ब्रज एवं दक्षिण के भक्ति सम्प्रदायों का उतना ज्ञान तो अवश्य हो जितना अपने विषय की परिधि में समाता हो *अथवा समाने की संभावना हो। यदि उसका विषय किसी अन्य भाषा के भक्त कवि के साथ तुलनात्मक पद्धति पर है तो उसे उस भाषा का भी अच्छा ज्ञान होना चाहिए।

निर्देशक की समस्याएँ—अनुसंधाता की तरह निर्देशक को भी अपनी सीमाओं का परिज्ञान होना आवश्यक है। भक्ति युग के लिए रुचि संस्कार और आकर ग्रंथों का मूल रूप में गहरा बोध आत्यंतिक रूप से अपेक्षित है।

भक्ति युग के लिए ग्रंथागार—भक्ति युग के लिए विशिष्ट ग्रंथागारों की व्यवस्था की जानी चाहिए। वैदिक साहित्य से लेकर अब तक संस्कृत वाङ्मय एक ही स्थान पर उपलब्ध हो सके ऐसी व्यवस्था हो जाय तो काम सुविधा से हो सकेगा। हस्तलिखित पांडुलिपियों के संग्रह का भी अनवरत प्रयत्न होना चाहिए। संप्रदाय के आधार पर किन्हीं विशिष्ट पीठों को विश्वविद्यालय की ओर से मान्यता दी जाए तथा उन पीठों के संचालन को राजकीय अनुदान देकर विशेष व्यवस्थित होने के लिए प्रोत्साहन दिया जाय। सांप्रदायिक पीठों से विश्वविद्यालयों का नित्यसंपर्क स्थापित किया जाय और वहां शोधार्थियों के लिए आवास व्यवस्था के साथ अन्य सुविधाओं को जुटाया जाय। वहाँ शोध-संस्थानों की स्थापना की जाय। भक्तियुग के शोधार्थी के लिए भ्रमण अथवा पर्यटन के लिए पर्यटन अर्थ राशि (Travel grant) की व्यवस्था अनिवार्य रूप से हो।

आधुनिक काव्य का शिक्षण

डॉ० सावित्री सिन्हा

आधुनिक काव्य के पाठ्यक्रम और अध्यापन के संबंध में दो समस्यायें हैं (१) वर्तमान पाठ्यक्रम की सीमाएँ, त्रुटियाँ, औचित्य अनौचित्य और दोष वर्तमान पाठ्यक्रम में छायावाद परवर्ती और समसामयिक काव्य की उपेक्षा तथा उसके समावेश की सम्भावनाएँ और औचित्य।

आधुनिक काल का आरम्भ भारतेन्दु युग से होता है। परन्तु भारतेन्दुयुगीन आधुनिक चेतना का प्रतिनिधित्व करने वाली रचनाएं, जहाँ तक मुझे ज्ञात है, किसी भी विश्वविद्यालय के पाठ्य-क्रम में नहीं हैं। इसलिए कविता के संदर्भ में आधुनिकता का परिपार्श्व विद्यार्थी के मन में नहीं बैठ पाता। अतः आधुनिक ब्रजभाषा काव्य के स्थान पर छायावाद तथा परवर्ती काव्य को इस प्रश्नपत्र में अधिक स्थान मिलना चाहिए।

प्रश्न यह है कि पाठ्यक्रम में स्वीकृत प्रतिष्ठित और मान्य कवियों की रचनाओं को हटा कर नई प्रवृत्तियों को उनका स्थानापन्न किस प्रकार बनाया जाये? इसके लिये इस प्रश्न पत्र के पाठ्यक्रम का विभाजन इस प्रकार होना चाहिए—

१. द्विवेदीयुगीन प्रबन्ध काव्य

२. कामायनी

३. छायावादोत्तर प्रबन्ध वृत्ति।

गीत अथवा मुक्तक करों की कृतियों में से कुछ कविताएं पाठ्यक्रम में निर्धारित करने की अपेक्षा अच्छा यह होगा कि भारतेन्दुयुगी कविता से लेकर अब तक की विभिन्न काव्य परम्पराओं के प्रतिनिधि कवियों को कविताओं का संकलन तैयार कराया जाये और उसे आधुनिक गीति तथा मुक्तक कविता के प्रतिनिधि ग्रंथ के रूप में पढ़ाया जाय।

आधुनिक काव्य के प्रश्नपत्र में समसामयिक साहित्य के समावेश का प्रश्न भी बहुत महत्व-पूर्ण है। इधर कुछ दिनों से नई चेतना के सर्जन साहित्यकारों की ओर से प्राध्यापक जड़-मूढ़ और बौद्धिक रूप से दरिद्र एक दयनीय व्यक्तियों के रूप में घोषित किया जाने लगा है। पर हर जाग-रूक अध्यापक का दायित्व है कि इस प्रकार की स्थितियों और भ्रांतियों को धैर्य के साथ और वस्तु-निष्ठ दृष्टि से देखें। समसामयिक साहित्य के अध्यापन में अध्यापक के सामने तीन प्रकार की कठिनाइयाँ हैं। तीन स्रोतों से वह अपने विषय की सामग्री संकलित करता है—

१. सम्बद्ध विषय पर मान्य आलोचकों के विचार

२. सम्बद्ध विषय और प्रकृतियों के कवियों और लेखकों के विचार

३. प्राध्यापक की अपनी मान्यताएं।

नए काव्य के सम्बन्ध में दिए गए मान्य आलोचकों और आचार्यों के वक्तव्य, नए कवियों की ओर से दिए हुए वक्तव्य परस्पर विरोधी होते हैं। सार्वभौम मान्यताओं के अभाव के कारण, पार्थक्य और मतभेद की रेखाएं ही प्रधान हो उठती हैं। जिनका समीकरण अध्यापक के लिए बड़ा कठिन पड़ जाता है।

मेरे विचार से आधुनिक हिन्दी काव्य के प्रश्नपत्र में लगभग २० या २५ अंगों का अनिवार्य प्रश्न होना चाहिए, जिसमें पाठ्यग्रंथों का निर्धारण न हो बल्कि समसामयिक काव्य के सामान्य ज्ञान को उसका आधार बनाया जाये। इसके द्वारा हिन्दी के विद्यार्थी की रुचि पाठ्यक्रम के बाहर के विषयों में भी उत्पन्न होगी, पाठ्यपुस्तकों में सीमित उसकी दृष्टि को अधिक व्यापक आधार मिलेगा और वह शास्त्रीयता के साथ नई चेतना को समझने में भी सफल हो सकेगा।

दक्षिण भारत के विश्वविद्यालयों के हिन्दी विभागों में हिन्दी शोध-कार्य की संभावनाएं

डॉ० विजयपाल सिंह

इस सम्बन्ध में दो प्रश्न हैं—

(१) क्या स्थान विशेष अथवा परिवेश विशेष में निर्दिष्ट कार्य की सरल परिणति का उपयुक्त अवसर आ गया है, (२) क्या स्थिति विशेष में कार्य की परिधि और प्रवृत्ति में किसी प्रकार के परिसीमन की आवश्यकता है ?

पहले प्रश्न का आधार दक्षिण में सम्प्रति हिन्दी प्रचार-प्रसार की ही अवस्था में है। अतः शोध-कार्य का कार्यान्वय असंदिग्ध नहीं।

दूसरे प्रश्न का आधार यह है कि यदि शोध-कार्य चलाया भी जाय तो अनुसंधेय विषय वैसा ही हो जैसा हिन्दी प्रदेशों में होता है।

प्रथम प्रश्न के उत्तर के संदर्भ में दक्षिण के विद्यार्थियों की अनुसंधेय साहित्य में पैठने की क्षमता और अनुसंधान की अभिरुचि पर विचार करना अपेक्षित है। यहाँ के विद्यार्थियों का हिन्दी की प्राचीन भाषाओं और उनके साहित्य से उतना लगाव नहीं है, जितना कि आधुनिक भाषा और साहित्य से है। जहाँ तक अनुसंधान की अभिरुचि का प्रश्न है, यह कहा जा सकता है कि दक्षिण के विद्यार्थियों में वह साहित्यिक परिवेश और परिस्थितियों के कारण हिन्दी प्रदेशों के विद्यार्थियो से भिन्न है।. . .दक्षिण में आदर्श निर्देशकों और अनुसंधेय सामग्री की समस्या नहीं है।

जहाँ तक हिन्दी शोध-कार्य की परिधि और प्रकृति के परिसीमन का प्रश्न है, यह कहा जा सकता है कि हिन्दी के लिए उचित वातावरण के निर्माण हो जाने पर यह कठिनाई स्वतः समाप्त हो जाएगी।. . .सम्प्रति व्रज अवधी आदि पुरानी भाषाओं की तुलना में यहाँ के विद्यार्थियों का खड़ी बोली पर अच्छा अधिकार हो जाता है। इसलिए निकट भविष्य में उन्हें आधुनिक साहित्य की ओर ही उन्मुख किया जाए तो उत्तम होगा।

जहाँ तक परिधि के परिसीमन के साथ उसको प्रकृति का प्रश्न है, निकट भविष्य में दक्षिण में हिन्दी शोध में तत्वानुसंधान से अधिक तथ्यानुसंधान पर बल देने की आवश्यकता है। कारण—(१) तत्वानुसंधान के लिए अपेक्षित गम्भीर साहित्यिक वातावरण की सम्प्रति अप्रौढ़ता (२) यहाँ के साहित्य में तत्वानुसंधान के प्रौढ़ रूप की स्थिरता का सम्प्रति अभाव।

परिशिष्ट—६

समितियाँ और कार्यालय

- स्वागत-समिति
- अन्य व्यवस्था-समितियाँ
- कार्यालय

स्वागत-समिति

संयोजक — पं० उमाशंकर शुक्ल
सहायक — डॉ० रघुवंश
सदस्य — डॉ० वीरेन्द्र सिंह
डॉ० पारसनाथ तिवारी
डॉ० रमानाथ शर्मा

अर्थ-व्यवस्था

संयोजक — डॉ० जगदीश गुप्त
सहायक — श्री श्रीनिवास तिवारी

कार्यक्रम-संचालन-व्यवस्था

संयोजक — डॉ० जगदीश गुप्त
सहायक — डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी
सदस्य — डॉ० राजेन्द्र कुमार वर्मा
डॉ० वीरेन्द्र सिंह
श्री किशोरीलाल
श्री कुलदीप कपूर
श्री विद्याधर

निमंत्रण-प्रेषण और कार्यक्रम-मुद्रण

संयोजक — डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी
सहायक — श्री रमाकांत मिश्र
श्रीनिवास तिवारी

मंच-सज्जा तथा लाउडस्पीकर-व्यवस्था

संयोजक — डॉ० जगदीश श्रीवास्तव
सहायक — डॉ० मीरा श्रीवास्तव
सदस्य — कु० स्वप्ना बनर्जी

प्रतिवेदन एवं संवाद-प्रेषण

संयोजक – डॉ० रघुवंश
सहायक – डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी
सदस्य – डॉ० वीरेन्द्र सिंह
डॉ० रमानाथ शर्मा
श्री श्रीराम वर्मा
श्री प्रमोदकुमार सिनहा
श्री गणपति भट्ट
श्री प्रेमकान्त टंडन
सुश्री उर्मिला जैन
सुश्री रक्षा भल्ला

आवास तथा भोजन-व्यवस्था

संयोजक – श्री माताबदल जायसवाल
सहायक – डॉ० केशवचन्द्र सिनहा
सदस्य – डॉ० मोहन अवस्थी
श्री रंगनाथन
श्री कोटेश्वर राव
डॉ० राजेन्द्र कुमार वर्मा
डॉ० केशनी प्रसाद चौरसिया
श्री पूर्णेन्दु त्रिवेदी

स्वयंसेवक-व्यवस्था

संयोजक – डॉ० पारसनाथ तिवारी
सहायक – डॉ० मोहन अवस्थी
सदस्य – डॉ० राजेन्द्र कुमार वर्मा
डॉ० केशनीप्रसाद चौरसिया

संगीत तथा वंदना

संयोजिका – डॉ० शैलकुमारी
सहायक – डॉ० सावित्री श्रीवास्तव
– डॉ० शशि अग्रवाल
– डॉ० आशा गुप्त

सदस्य – सुश्री स्वप्ना बनर्जी
माधुरी वर्मा
मालती तिवारी
मधु शुक्ल
सत्या रानी पांडे
सावित्री त्रिपाठी
निरूपमा पांडे

कार्यालय

निदेशक डॉ० जगदीश गुप्त
सहायक श्री रमाकांत मिश्र
कर्मचारी श्री श्रीनारायण